जुलाई-सितंबर, 2017 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक — डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक — विनोद कुमार आर्य

महत्वपूर्ण निर्णय

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 34 – हत्या – सामान्य आशय – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अभिलेख के संपूर्ण साक्ष्य, चिकित्सक के कथन, क्षति प्रमाणपत्र, मृतक के मृत्युकालिक कथन के परिशीलन और हत्या के हेतु से यदि दो मत संभव हों तो उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किंतु इस मामले में विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त मत अनुचित है, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही उलटा गया है और अभियुक्तों को दोषसिद्ध ठहराया गया है ।

एम. जी. ईश्वरप्पा और अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य** 183

संसद् के अधिनियम

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (13)

पृष्ठ संख्या 1 – 213 [2017] 3 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – जुलाई-सितंबर, 2017 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 213]

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

डा. अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री असलम खान और पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2017 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जुलाई-सितंबर, 2017

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अंजन दास गुप्ता **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य	92
अजय सिंह और एक अन्य तथा इत्यादि **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य और एक अन्य	113
अनिल कुमार **बनाम** पंजाब राज्य	136
एम. जी. ईश्वरप्पा और अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य	183
एसोसिएशन आफ विक्टिम्स आफ उपहार ट्रेजडी **बनाम** सुशील अंसल और एक अन्य	142
देवेन्द्र नाथ श्रीवास्तव **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य	202
बिहार राज्य **बनाम** राज बल्लव प्रसाद **उर्फ** राज बल्लव प्रसाद यादव **उर्फ** राज बल्लव यादव	66
बृज लाल **बनाम** राजस्थान राज्य	14
यू. सी. रमन **बनाम** पी. टी. ए. रहीम और अन्य	1
लुडोविको सगराडो गोविया **बनाम** सिरिला रोसा मारिया पिंटो और अन्य	48
स्वामी शिवशंकरगिरी चेल्ला स्वामी **बनाम** सत्य ज्ञान निकेतन	166

संसद् के अधिनियम

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 13

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 353 – निर्णय – विचारण न्यायाधीश द्वारा अभियुक्तों की दोषमुक्ति का निर्णय सुनाया जाना – अभिलेख पर निर्णय उपलब्ध न पाया जाना – केवल मात्र परिणाम की घोषणा करना निर्णय की कोटि में नहीं आता, अपितु हस्ताक्षरित और तारीख डाला हुआ टंकित निर्णय खुले न्यायालय में सुनाया जाना आवश्यक है, अतः उच्च न्यायालय ने विचारण को लंबित मानते हुए, अपनी प्रशासनिक अधिकारिता के अधीन, मामलों को सुनवाई के लिए अन्य विचारण न्यायाधीश को अंतरित करके ठीक किया है ।

अजय सिंह और एक अन्य तथा इत्यादि बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य और एक अन्य** 113

– धारा 427 [सपठित स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 22 तथा ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धारा 27 और 28] – पहले से कारावास का दंडादेश भोगने वाले व्यक्ति को अन्य पश्चात्वर्ती अपराध के लिए कारावास का दंडादेश दिया जाना – पश्चात्वर्ती कारावास को पूर्ववर्ती कारावास के साथ-साथ चलने का निदेश न दिया जाना – न्यायालय केवल समुचित मामलों में उनके तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् दृढ़ न्यायिक सिद्धांतों के आधार पर दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश कर सकता है, अतः अपीलार्थी के मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् उस पर अधिरोपित दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश देना उचित होगा ।

अनिल कुमार बनाम **पंजाब राज्य** 136

पृष्ठ संख्या

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 63, 64 और 65 – जुर्माने की रकम, जुर्माने का संदाय न किए जाने पर कारावास और जुर्माना, दोनों के द्वारा दंडित किए जाने की स्थिति में जुर्माना का संदाय न किए जाने पर कारावास की अवधि – व्यतिक्रम दंडादेश के बाबत कारावास की सीमा मूल कारावास की अवधि के 1/4 तक हो सकती है जिसके विरुद्ध शिकायत अभियुक्त द्वारा की जा सकती है – इसके विपरीत यदि अभियुक्त को घटाए गए दंडादेश के बदले भारी भरकम जुर्माने के संदाय का विकल्प दिया जाता है तो यह उच्चतर व्यतिक्रम दंडादेश दिए जाने का मामला नहीं है ।

एसोसिएशन आफ विक्टिम्स आफ उपहार ट्रेजडी बनाम **सुशील अंसल और एक अन्य** 142

– धारा 63, 64 और 65 – भारी भरकम जुर्माना किसी अमीर व्यक्ति पर उसका अतिरिक्त लाभ प्रदान किए जाने के रूप में अधिरोपित नहीं किया जाना चाहिए बल्कि उसकी संदाय करने की सक्षमता के कारणवश अधिरोपित किया जाना चाहिए ।

एसोसिएशन आफ विक्टिम्स आफ उपहार ट्रेजडी बनाम **सुशील अंसल और एक अन्य** 142

– धारा 96 – प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार – मामले में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह उपदर्शित हो कि अभियुक्त और सह-अभियुक्त पर वास्तव में हमला किया गया था और ऐसा भी कोई साक्ष्य नहीं है कि यह एक प्रतिरक्षा का मामला है जिसमें उन्होंने अपनी पिस्तौलों से भीड़ पर गोली चलाई, अतः यह प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का मामला नहीं बनता ।

बृज लाल बनाम **राजस्थान राज्य** 14

पृष्ठ संख्या

– धारा 302 – हत्या – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख की सामग्री के गहन परिशीलन और अन्य साक्षियों के परिसाक्ष्य के साथ दो अभियोजन साक्षियों के कथनों से स्पष्टतः और असंदिग्धतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अभियुक्त/अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 302 के अधीन हत्या का अपराध करने का दोषी है ।

बृज लाल बनाम **राजस्थान राज्य** 14

– धारा 302 – हत्या – जहां मामले के संपूर्ण अभियोजन साक्ष्य की संवीक्षा, संबद्ध पक्षकारों की दलीलों और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के पूर्व दिनांकित और समय पूर्व होने के पहलू पर विचार करने से यह साबित होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सही थी और छुटपुट विसंगतियों को छोड़कर प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य विश्वसनीय और विश्वासोत्पादक थे, वहां साक्ष्य के उचित और युक्तियुक्त मूल्यांकन और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सही होने के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध ठहराया जाना न्यायसंगत है ।

अंजन दास गुप्ता बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** 92

– धारा 302 और 34 – हत्या – सामान्य आशय – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अभिलेख के संपूर्ण साक्ष्य, चिकित्सक के कथन, क्षति प्रमाणपत्र, मृतक के मृत्युकालिक कथन के परिशीलन और हत्या के हेतु से यदि दो मत संभव हों तो उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किंतु इस मामले में विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त मत अनुचित है, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही उलटा गया है और अभियुक्तों को दोषसिद्ध ठहराया गया है ।

एम. जी. ईश्वरप्पा और अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य** 183

पृष्ठ संख्या

– धारा 302 और 304 भाग 1 – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अपनी पत्नी की मृत्यु कारित किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा मृत्यु दंडादेश दिया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को हत्या के बजाय आपराधिक मानव वध के लिए दोषसिद्ध करते हुए धारा 304 भाग 1 के अधीन दंडादिष्ट किया जाना – अभिलेख के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होने पर कि अभियुक्त-अपीलार्थी शराबी था और दोनों के बीच झगड़ा होने के पश्चात् गुस्से की तीव्रता में उसने ईंट से क्षतियां कारित करके अपनी पत्नी की मानव वध मृत्यु कारित की थी, जो कि योजनाबद्ध कृत्य नहीं था, अतः उच्च न्यायालय द्वारा धारा 304 के भाग 1 के अधीन की गई उसकी दोषसिद्धि और दिए गए दंडादेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

देवेन्द्र नाथ श्रीवास्तव बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 202

बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 2002 (2002 का 39)

– धारा 126 [सपठित निरसित बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 1984 की धारा 85 तथा माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996] – निरसन और व्यावृत्ति – निरसित अधिनियम, 1984 के अधीन वसूली कार्यवाहियां आरंभ किया जाना – नया अधिनियम, 19 अगस्त, 2002 को प्रवर्तन में आना – उच्च न्यायालय द्वारा 5 अक्तूबर, 2002 के अधिनिर्णय को नए अधिनियम के अनुसार निष्पादित किए जाने के आधार पर अपास्त किया जाना – 1984 के निरसित अधिनियम के अधीन प्रारंभ हुई कार्यवाहियां 2002 के अधिनियम द्वारा इसका निरसन किए जाने के बावजूद पुराने अधिनियम के अधीन ही अबाधित जारी रहेंगी, अतः उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है ।

लुडोविको सगराडो गोविया बनाम **सिरिला रोसा मारिया पिंटो और अन्य** 48

पृष्ठ संख्या

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 136 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439, दंड संहिता, 1860 की धारा 376, 420/34, 366क, 370, 370क, 212 और 120ख, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 4, 6 और 8 तथा अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 की धारा 4, 5 और 6] – बलात्संग – जमानत – जहां अभियुक्त उपरोक्त अधिनियमों की उक्त धाराओं के अधीन आरोपित है वहां इस बात पर ध्यान देते हुए कि अभियोक्त्री के पिता और बहिन सहित अन्य महत्वपूर्ण साक्षियों के साक्ष्य की अभी परीक्षा की जानी है, निष्पक्ष और ऋजु विचारण के लिए अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाना उचित और न्यायसंगत नहीं है ।

बिहार राज्य बनाम **राज बल्लव प्रसाद** उर्फ **राज बल्लव प्रसाद यादव** उर्फ **राज बल्लव यादव** 66

– अनुच्छेद 191(1)(क) और 102(1)(क) – 'लाभ का पद' – अभिप्राय लाभ या धनीय फायदा अर्जित करने में समर्थ होने से है जिसमें हैसियत या प्रभाव आदि को सम्मिलित नहीं किया जा सकता – सरकार के अधीन ऐसे पदधारक जो प्रतिकरात्मक भत्तों के अतिरिक्त लाभ के रूप में धनीय लाभ अर्जित करते हैं, को 'लाभ का पद' धारक कहा जा सकता है, अध्यक्ष का पद राज्य सरकार के अधीन एक पद है किंतु यह 'लाभ का पद' नहीं है ।

यू. सी. रमन बनाम **पी. टी. ए. रहीम और अन्य** 1

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 92 और 115 – उच्च न्यायालय द्वारा अधिकारिता का प्रयोग – अपीलार्थियों को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन आवेदन देने की इजाजत देते समय न्यायालय का यह कानूनी कर्तव्य है कि वह यह

पृष्ठ संख्या

परीक्षा करे कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन आवेदन के साथ ऐसा वादपत्र संलग्न है या नहीं, यदि आवेदन के साथ वादपत्र संलग्न नहीं है तो यह विधि की दृष्टि से संधार्य नहीं है ।

स्वामी शिवशंकरगिरी चेल्ला स्वामी बनाम **सत्य ज्ञान निकेतन** 166

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2017] 3 उम. नि. प.

जुलाई-सितंबर, 2017

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.	ए. आई. आर. (एस. सी.)	एस. सी. सी.
1	2	3	4	5
1.	यू. सी. रमन **बनाम** पी. टी. ए. रहीम और अन्य (1 अगस्त, 2014)	[2017] 3 1	2014 3477	(2014) 8 934
2.	बृज लाल **बनाम** राजस्थान राज्य (17 अगस्त, 2016)	14	2016 3875	(2016) 13 347
3.	लुडोविको सगराडो गोविया **बनाम** सिरिला रोसा मारिया पिंटो और अन्य (6 सितंबर, 2016)	48	4248	9 615
4.	बिहार राज्य **बनाम** राज बल्लव प्रसाद **उर्फ** राज बल्लव प्रसाद यादव **उर्फ** राज बल्लव यादव (24 नवंबर, 2016)	66	2017 630	(2017) 2 178
5.	अंजन दास गुप्ता **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य (25 नवंबर, 2016)	92	-	- -

1	2	3	4	5
6.	अजय सिंह और एक अन्य तथा इत्यादि **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य और एक अन्य (6 जनवरी, 2017)	[2017] 3 113	2017 310	(2017) 3 330
7.	अनिल कुमार **बनाम** पंजाब राज्य (17 जनवरी, 2017)	136	-	- -
8.	एसोसिएशन आफ विक्टिम्स आफ उपहार ट्रेजडी **बनाम** सुशील अंसल और एक अन्य (9 फरवरी, 2017)	142	2017 976	3 788
9.	स्वामी शिवशंकरगिरी चेल्ला स्वामी **बनाम** सत्य ज्ञान निकेतन (23 फरवरी, 2017)	166	1221	4 771
10.	एम. जी. ईश्वरप्पा और अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य (2 मार्च, 2017)	183	1197	4 558
11.	देवेन्द्र नाथ श्रीवास्तव **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (6 अप्रैल, 2017)	202	1812	- -

यू. सी. रमन

बनाम

पी. टी. ए. रहीम और अन्य

1 अगस्त, 2014

मुख्य न्यायमूर्ति आर. एम. लोढ़ा और न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 191(1)(क) और 102(1)(क) – 'लाभ का पद' – अभिप्राय लाभ या धनीय फायदा अर्जित करने में समर्थ होने से है जिसमें हैसियत या प्रभाव आदि को सम्मिलित नहीं किया जा सकता – सरकार के अधीन ऐसे पदधारक जो प्रतिकरात्मक भत्तों के अतिरिक्त लाभ के रूप में धनीय लाभ अर्जित करते हैं, को 'लाभ का पद' धारक कहा जा सकता है, अध्यक्ष का पद राज्य सरकार के अधीन एक पद है किंतु यह 'लाभ का पद' नहीं है ।

हज़ समिति, अधिनियम, 2002 के उपबंधों के अधीन प्रथम प्रत्यर्थी को अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किया गया था और राज्य सरकार द्वारा राजपत्र में तारीख 30 जून, 2009 से उसे अध्यक्ष के रूप में अधिसूचित किया गया था । अपीलार्थी ने प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा राज्य हज़ समिति के अध्यक्ष के रूप में प्राप्त भत्तों के संबंध में जानकारी अभिप्राप्त की और तारीख 27 जून, 2011 को 2011 की निर्वाचन अर्जी सं. 4 फाइल की । अपीलार्थी का पक्षकथन यह है कि प्रथम प्रत्यर्थी का निर्वाचन उसके नामांकन-पत्रों की अनुचित स्वीकृति के कारण दूषित था और यह कि वह राज्य सरकार के अधीन 'लाभ का पद' धारण करने के कारण निर्वाचन लड़ने के लिए पूरी तरह से निरर्हित था । प्रथम प्रत्यर्थी ने निर्वाचन अर्जी में लिखित कथन फाइल किया, जिसमें उसने यह स्वीकार किया कि सुसंगत समय पर वह केरल राज्य हज़ समिति के अध्यक्ष का पद धारण कर रहा था । तथापि, उसने निर्वाचन अर्जी को कायम रखने पर कई आक्षेप किए और यह भी विवाद किया कि केरल राज्य हज़ समिति का अध्यक्ष, राज्य सरकार के अधीन 'लाभ का पद' धारण करता है जो कि भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 191 के उपबंधों के अन्तर्गत आता है । उसने यह भी विवाद किया

कि उसे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया गया था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने संविधान, 1950, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 और अधिनियम, 2002 के सुसंगत उपबंधों पर विचार करने के पश्चात् विचार के लिए मुख्य विवाद्यक के रूप में दो प्रश्न विरचित किए :– (1) क्या प्रथम प्रत्यर्थी ने राज्य सरकार के अधीन पद अभिधारित किया है ? और (2) यदि यह एक पद है, तो क्या वह लाभ के पद का धारक है ? उच्च न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि यदि पूर्वोक्त दोनों प्रश्नों का उत्तर प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध दिया जाता है, तो उसके बाद अगला प्रश्न यह उद्भूत होगा कि क्या उसे केरल विधान सभा (निरर्हता का निराकरण) अधिनियम, 1951 (1951 का अधिनियम सं. 15) के अधीन छूट प्राप्त है । मामले के तथ्यों और इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों के प्रकाश में, उच्च न्यायालय ने प्रथम प्रश्न का उत्तर अपीलार्थी के पक्ष में दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि हज़ समिति के अध्यक्ष का पद राज्य सरकार के अधीन पद है । तथापि, उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के कई पूर्व-निर्णयों के आधार पर द्वितीय प्रश्न का उत्तर अपीलार्थी के विरुद्ध यह अभिनिर्धारित करते हुए, विनिश्चित किया कि अपीलार्थी यह साबित करने में बुरी तरह से असफल रहा है कि प्रथम प्रत्यर्थी, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 191 के अधीन यथा अनुध्यात 'लाभ का पद' धारण कर रहा था और इसलिए उसके नामांकन की स्वीकृति किसी अनौचित्यता या अवैधता से ग्रसित नहीं है । तद्नुसार, अपीलार्थी द्वारा फाइल निर्वाचन अर्जी, अपीलाधीन निर्णय द्वारा खारिज कर दी गई । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – लाभ का पद एक ऐसा पद है जो लाभ या धनीय अभिलाभ उत्पन्न करने के लिए समर्थ होता है । केन्द्रीय या राज्य सरकार के अधीन पद धारण करना, जिसके लिए कुछ अदायगी, वेतन, उपलब्धि, पारिश्रमिक या अप्रतिकरात्मक भत्ता दिया जाता है, 'लाभ का पद' धारण करना है । यह प्रश्न कि क्या कोई व्यक्ति लाभ के पद पर है या नहीं, उसका वास्तविक रूप से निर्वचन किया जाना अपेक्षित है । संदाय की प्रकृति पर विचार करते समय उसकी सारभूत प्रकृति पर विचार किया जाना चाहिए न कि उसके स्वरूप पर । नाम-पद्धति महत्वपूर्ण नहीं है । वास्तव में, 'मानदेय' शब्द का प्रयोग करने से संदाय को लाभ की परिधि से बाहर नहीं किया जा सकता, यदि प्राप्तकर्ता को धनीय अभिलाभ हुआ है । मानदेय का संदाय प्रतिकरात्मक भत्तों की प्रकृति के दैनिक भत्तों के अतिरिक्त, किराया-मुक्त

वास-सुविधा और राज्य के खर्चों पर चालक सहित कार की सुविधा स्पष्ट रूप से पारिश्रमिक प्रकृति की होती है और यह धनीय अभिलाभ का स्रोत है और इस प्रकार इससे लाभ गठित होता है । इस प्रश्न को विनिश्चित करने के लिए कि क्या कोई व्यक्ति लाभ का पद धारण किए हुए है या नहीं, यह सुसंगत होगा कि पद लाभ या धनीय अभिलाभ उत्पन्न करने के लिए समर्थ है या नहीं और इस पर विचार नहीं करना होगा कि व्यक्ति वास्तव में धनीय अभिलाभ प्राप्त करता है या नहीं । यदि पद के संबंध में 'धनीय लाभ' 'प्राप्त किए जाने योग्य' है तो यह लाभ का पद बन जाता है, इस बात को ध्यान में लाए बिना कि क्या ऐसा धनीय लाभ वास्तव में प्राप्त किया गया है या नहीं । यदि पद के साथ जेब खर्च/वास्तविक खर्चों की प्रतिपूर्ति के अतिरिक्त कोई धनीय लाभ जुड़ा हुआ है या जिसके लिए पदधारक हकदार है, तो ऐसा पद अनुच्छेद 102(1)(क) के प्रयोजनार्थ लाभ का पद होगा । उच्च न्यायालय द्वारा उपर्युक्त उपदर्शित विधि का न केवल उल्लेख किया गया है, बल्कि इस विधि का समुचित परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन भी किया गया है । इस प्रकाश में, उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की परीक्षा की और यह निष्कर्ष निकाला कि पद के संबंध में न केवल प्राप्त किया गया धनीय लाभ बल्कि 'प्राप्त किए जाने योग्य' धनीय लाभ भी है जो प्रतिकरात्मक की प्रकृति के हैं जैसे कि यात्रा भत्ता और दैनिक भत्ते इत्यादि । इसलिए, उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय के सामंजस्य में यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत पद केवल 'लाभ का पद' है । उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया उत्तर पूर्णतः इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के अनुसार है क्योंकि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार, प्रथम प्रत्यर्थी ने न तो कोई संदाय, वेतन, परिलब्धि, पारितोषिक या कमीशन प्राप्त किया और न ही इस प्रकृति का कुछ भी उसे संदाय किया गया था । उसने केवल यात्रा भत्ता और दैनिक भत्ता प्राप्त किया था जो प्रतिकरात्मक भत्ते हैं और मात्र ये ही 'प्राप्त किए जाने योग्य' थे । इस न्यायालय की सुविचारित राय में, संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 3 की परिधि के भीतर हज़ समिति अधिनियम, 2002 की धारा 3 के अधीन गठित भारत की हज़ समिति का समावेशन अपीलार्थी के पक्षकथन की सहायता नहीं कर सकते क्योंकि प्रथम प्रत्यर्थी केरल की राज्य हज़ समिति का अध्यक्ष है और भारत की हज़ समिति को स्वीकार्य भत्ते वही भत्ते नहीं हैं जो केरल की राज्य हज़ समिति को स्वीकार्य भत्ते होते हैं । इसके अतिरिक्त, प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से फाइल किए गए उत्तर का ऐसा संशोधन अत्यधिक सावधानी के साथ

प्रस्तुत किया जाना चाहिए था, भी सत्यभाषी है और इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती है । अपीलार्थी की ओर से हाजिर विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री अंध्यार्जुन द्वारा यह अभिवाक् किया गया कि शब्द 'लाभ' में धनीय लाभों के अतिरिक्त हैसियत और प्रभाव इत्यादि को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए, को हम इस न्यायालय द्वारा दिए गए अनेक विनिश्चयों, जिनमें से कुछ को दोनों पक्षों द्वारा उद्धृत किया गया और जिनका उल्लेख ऊपर किया गया, को दृष्टि में रखते हुए स्वीकार्य नहीं पाते हैं । इस न्यायालय ने अनेक अवसरों पर स्पष्ट किया है कि 'लाभ का पद' एक ऐसा पद है जो लाभ या धनीय फायदा अर्जित करने के समर्थ होता है । शब्द 'लाभ' को सदैव 'धनीय लाभ' पद के समतुल्य या स्थानापन्न प्रतीत किया गया है । वह संदर्भ जिसमें शब्द 'लाभ' का प्रयोग किया गया है, दर्शित करता है कि सभी पदों को अनर्हिकृत नहीं किया गया है बल्कि केवल उन्हीं पदों को अनर्हिकृत किया गया है जो पदधारक के लिए मात्र प्रतिकरात्मक भत्तों के अतिरिक्त लाभ के रूप में धनीय लाभ अर्जित करते हैं । इसलिए इस विवाद्यक पर सुस्थिर कई निर्णयज विधियों की अनदेखी करने की कोई आवश्यकता नहीं है । यदि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल के निवेदनों को स्वीकार किया जाता है तो इस प्रश्न को निर्णीत करने में अत्यधिक अनिश्चितता उत्पन्न हो जाएगी कि क्या कोई पद 'लाभ का पद' है या नहीं । (पैरा 11, 12, 14 और 20)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 2 एस. सी. सी. 64 : **गजानन समाधान लांडे** बनाम **संजय श्यामराव धोत्रेय** ।	15

निर्दिष्ट निर्णय

[2006]	(2006) 5 एस. सी. सी. 266 : **जया बच्चन** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	11
[2001]	(2001) 2 एस. सी. सी. 19 : **प्रद्युत बोरडोलोई** बनाम **स्वपन राय** ;	11
[1984]	(1984) 1 एस. सी. सी 551 : **बिहारीलाल डोबरे** बनाम **रोशन लाल डोबरे** ;	11

[1971]	(1971) 3 एस. सी. सी. 870 : **शिवमूर्ति स्वामी ईनामदार इत्यादि** बनाम **अगादीसनगन्ना अन्दानप्पा इत्यादि** ;	15
[1964]	[1964] 4 एस. सी. आर. 311 : **गुरुगोबिन्द बसु** बनाम **शंकरी प्रसाद घोषाल और अन्य** ;	11
[1954]	ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 653 : **रावन्ना सुबन्ना** बनाम **जी. एस. काजीरप्पा** ।	15

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सिविल अपील सं. 5509.

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 116(क) और धारा 116(ख) के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री टी. आर. अंध्यार्जुन ज्येष्ठ अधिवक्ता, जुल्फीकार अली फैसल, एम. अबूबकर, सौमिक ओरंगल और पी. जार्ज गिरि

प्रत्यथी की ओर से — सर्वश्री वी. ए. मोहता, ज्येष्ठ अधिवक्ता (हरि कुमार जी विनयागम गलक के लिए)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह ने दिया ।

न्या. सिंह – लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 116क के साथ पठित धारा 116ख के अधीन फाइल की गई इस अपील में विचार के लिए एकमात्र विवाद्यक यह है कि क्या प्रथम प्रत्यर्थी, भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 191(1)(क) के प्रयोजन के लिए, भारत सरकार के अधीन लाभ का पद धारण कर रहा था और इस कारण से रिटर्निंग अधिकारी द्वारा उसका नामांकन नामंजूर कर देना चाहिए था और उच्च न्यायालय को केरल विधान सभा के सदस्य के रूप में उसके निर्वाचन को अपास्त कर देना चाहिए था, जिसके लिए उसे तारीख 13 मई, 2011 को निर्वाचित घोषित किया गया था ।

2. नामांकन-पत्रों की संवीक्षा के प्रक्रम पर, अपीलार्थी तथा एक अन्य अभ्यर्थी ने प्रथम प्रत्यर्थी के नामांकन को स्वीकृत करने के विरुद्ध रिटर्निंग अधिकारी को यह इंगित करते हुए आक्षेप किए कि प्रथम प्रत्यर्थी, राज्य

सरकार के अधीन 'लाभ का पद' अर्थात् राज्य हज़ समिति के अध्यक्ष का पद धारण करने के कारण केरल विधान सभा का निर्वाचन लड़ने के लिए निरर्हित है । रिटर्निंग अधिकारी ने आक्षेपों को नामंजूर कर दिया । प्रथम प्रत्यर्थी ने निर्वाचन में सर्वाधिक मत प्राप्त किए थे और उसे निर्वाचित घोषित किया गया था तथा अपीलार्थी दूसरे स्थान पर रहा । निर्विवाद रूप से, प्रथम प्रत्यर्थी को राज्य सरकार द्वारा हज़ समिति अधिनियम, 2002 (2002 का केंद्रीय अधिनियम सं. 35) (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) के उपबंधों के अधीन तारीख 18 जून, 2009 को हज़ समिति के सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट किया गया था ।

3. अधिनियम, 2002 के उपबंधों के अधीन प्रथम प्रत्यर्थी को अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित किया गया था और राज्य सरकार द्वारा राजपत्र में तारीख 30 जून, 2009 से उसे अध्यक्ष के रूप में अधिसूचित किया गया था । अपीलार्थी ने प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा राज्य हज़ समिति के अध्यक्ष के रूप में प्राप्त भत्तों के संबंध में जानकारी अभिप्राप्त की और तारीख 27 जून, 2011 को 2011 की निर्वाचन अर्जी सं. 4 फाइल की । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अपीलार्थी का पक्षकथन यह है कि प्रथम प्रत्यर्थी का निर्वाचन उसके नामांकन-पत्रों की अनुचित स्वीकृति के कारण दूषित था और यह कि वह राज्य सरकार के अधीन 'लाभ का पद' धारण करने के कारण निर्वाचन लड़ने के लिए पूरी तरह से निरर्हित था ।

4. प्रथम प्रत्यर्थी ने निर्वाचन अर्जी में लिखित कथन फाइल किया, जिसमें उसने यह स्वीकार किया कि सुसंगत समय पर वह केरल राज्य हज़ समिति के अध्यक्ष का पद धारण कर रहा था । तथापि, उसने निर्वाचन अर्जी को कायम रखने पर कई आक्षेप किए और यह भी विवाद किया कि केरल राज्य हज़ समिति का अध्यक्ष, राज्य सरकार के अधीन 'लाभ का पद' धारण करता है जो कि भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 191 के उपबंधों के अन्तर्गत आता है । उसने यह भी विवाद किया कि उसे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया गया था ।

5. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने संविधान, 1950, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 और अधिनियम, 2002 के सुसंगत उपबंधों पर विचार करने के पश्चात् विचार के लिए मुख्य विवाद्यक के रूप में दो प्रश्न विरचित किए :–

(1) क्या प्रथम प्रत्यर्थी ने राज्य सरकार के अधीन पद अभिधारित किया है ? और

(2) यदि यह एक पद है, तो क्या वह लाभ के पद का धारक है ?

6. उच्च न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि यदि पूर्वोक्त दोनों प्रश्नों का उत्तर प्रथम प्रत्यर्थी के विरुद्ध दिया जाता है, तो उसके बाद अगला प्रश्न यह उद्‌भूत होगा कि क्या उसे केरल विधान सभा (निरर्हता का निराकरण) अधिनियम, 1951 (1951 का अधिनियम सं. 15) के अधीन छूट प्राप्त है ।

7. मामले के तथ्यों और इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों के प्रकाश में, उच्च न्यायालय ने प्रथम प्रश्न का उत्तर अपीलार्थी के पक्ष में दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि हज़ समिति के अध्यक्ष का पद राज्य सरकार के अधीन पद है । तथापि, उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के कई पूर्व-निर्णयों के आधार पर द्वितीय प्रश्न का उत्तर अपीलार्थी के विरुद्ध यह अभिनिर्धारित करते हुए, विनिश्चित किया कि अपीलार्थी यह साबित करने में बुरी तरह से असफल रहा है कि प्रथम प्रत्यर्थी, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 191 के अधीन यथा अनुध्यात 'लाभ का पद' धारण कर रहा था और इसलिए उसके नामांकन की स्वीकृति किसी अनौचित्यता या अवैधता से ग्रसित नहीं है । तद्‌नुसार, अपीलार्थी द्वारा फाइल निर्वाचन अर्जी, अपीलाधीन निर्णय द्वारा खारिज कर दी गई ।

8. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री टी. आर. अंध्यार्जुन ने यह अभिनिर्धारित करने के लिए हमें मनाने का गंभीर प्रयास किया कि अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा द्वितीय प्रश्न का उत्तर भी अपीलार्थी के पक्ष में विनिश्चित किया जाना चाहिए था और यह भी अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए था कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा धारित पद भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 191 के अंतर्गत आने वाला 'लाभ का पद' था और परिणामतः, प्रथम प्रत्यर्थी का निर्वाचन अपास्त किया जाना चाहिए था । दूसरी ओर, प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री वी. ए. मोहता ने अभिलेख पर के उस साक्ष्य को निर्दिष्ट करते हुए जिस पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था साथ ही इस न्यायालय के कई निर्णयों और 1951 के अधिनियम सं. 15 की धारा 2(1) का अवलंब लेते हुए उच्च न्यायालय के निर्णय का बचाव किया ।

9. अपीलार्थी की ओर से यह भी दलील दी गई कि हज़ समिति अधिनियम, 2002 की धारा 37 में, यद्यपि यह उपबंधित है कि समिति या

राज्य समिति के किसी सदस्य का पद 'लाभ का पद' नहीं समझा जाएगा, तो भी इससे प्रथम प्रत्यर्थी को कोई सहायता नहीं मिल सकती है क्योंकि वह राज्य हज़ समिति के अध्यक्ष का पद धारण कर रहा था और इस कारण भी क्योंकि हज़ समिति अधिनियम, 2002 एक केंद्रीय अधिनियम है न कि राज्य के विधान-मंडल द्वारा अधिनियमित की गई विधि है, जैसा कि अनुच्छेद 191(1)(क) में अनुध्यात है । दूसरी ओर, श्री मोहता ने अपनी इन दलीलों की अनुपूर्ति करने के लिए 1951 के अधिनियम सं. 15 की धारा 2 का अवलंब लिया कि पूर्वोक्त राज्य अधिनियम, 2002 के अनुसार, कोई व्यक्ति केवल इस आधार पर केरल राज्य की विधान सभा के सदस्य के रूप में चयनित होने और उसका सदस्य होने के लिए निरर्हित नहीं होगा कि उसने भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार द्वारा गठित किसी समिति या बोर्ड के सदस्य के रूप में सेवा करते हुए यात्रा या दैनिक भत्ता प्राप्त किया है ।

10. हज़ समिति अधिनियम, 2002 की धारा 37 या 1951 के अधिनियम सं. 15 की धारा 2 के अनुसार निरर्हता से छूट पाने का मुद्दा तभी सुसंगत होगा और विनिश्चित किया जाना महत्वपूर्ण होगा यदि अपीलार्थी इस न्यायालय के निर्णयों के आधार पर उच्च न्यायालय के निष्कर्षों और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य को चुनौती देने में सफल हो जाता कि प्रश्नगत पद 'लाभ का पद' नहीं है । इस मुद्दे पर, उच्च न्यायालय द्वारा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर निकाले गए तथ्यों के निष्कर्षों को उनके अनुचित या त्रुटिपूर्ण होने के आधार पर चुनौती नहीं दी गई है । सुसंगत निष्कर्ष ये हैं कि अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य तथा परस्पर विरोधी पक्षकारों के अभिवाकों से यह प्रकट होता है कि अपीलार्थी केवल यह साबित करने में सफल हुआ है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने प्रदर्श पी. 4, पी. 5 और पी. 6 के अनुसार यात्रा भत्ते के रूप में धनीय फायदे प्राप्त किए हैं और इसके अतिरिक्त प्रथम प्रत्यर्थी ने अन्य भत्तों, वेतन या कमीशन के रूप में धनीय फायदे प्राप्त नहीं किए हैं । प्रथम प्रत्यर्थी ने ऐसा कोई भी अभिवाक् नहीं किया है, न ही कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया है और न ही उसने ऐसा कोई सुझाव दिया है कि उसने यात्रा भत्ते के अतिरिक्त कोई भी फायदा प्राप्त किया है जो कि अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सदस्यों को हज़ समिति अधिनियम, 2002 की धारा 44 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केन्द्र सरकार द्वारा बनाए गए हज़ समिति नियम, 2002 के नियम 11 के अनुसार अनुज्ञेय हो । इस नियम के अधीन अध्यक्ष और सदस्य बैठकों में उपस्थित होने के लिए यात्रा भत्तों और दैनिक भत्तों के

अतिरिक्त किसी भी फायदे के लिए हकदार नहीं हैं । यह भी स्वीकृत तथ्य है कि यद्यपि राज्य सरकार को अधिनियम की धारा 20 के अधीन हज़ समिति के सदस्यों को भत्ते विहित करने की शक्ति निहित की गई है किंतु ऐसी शक्ति का प्रयोग अभी तक राज्य सरकार द्वारा नहीं किया गया है । यात्रा भत्ते और दैनिक भत्ते की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा प्राप्त किए गए केवल धनीय फायदे प्रतिकरात्मक प्रकृति के नहीं हैं अपितु वास्तव में इस पद के लिए अन्य ऐसे फायदे उपलब्ध नहीं हैं जिन्हें धनीय फायदों की कोटि में रखा जा सके और जो प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा प्राप्त किए जाने योग्य हो ताकि प्रश्नगत पद को 'लाभ के पद' के रूप में वर्गीकृत किया जा सके ।

11. उपर्युक्त उल्लिखित तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता ने यह निवेदन किया है कि लाभ को धनीय फायदों तक ही सीमित नहीं किया जाना चाहिए अपितु अन्य कारकों जैसे उस पद से संबद्ध हैसियत, शक्ति और प्रभाव को भी विचार में लेना चाहिए । विद्वान् काउंसेल ने निम्न मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लिया है :–

(1) **गुरुगोबिन्द बसु** बनाम **शंकरी प्रसाद घोषाल और अन्य**[1]

(2) **बिहारीलाल डोबरे** बनाम **रोशन लाल डोबरे**[2]

(3) **प्रद्युत बोरडोलोई** बनाम **स्वपन राय**[3]

(4) **जया बच्चन** बनाम **भारत संघ और अन्य**[4]

प्रथम तीन निर्णय विभिन्न परीक्षणों से संबंधित हैं जिनका प्रयोग यह पता लगाने में किया जाना चाहिए कि क्या प्रश्नगत पद सरकार के अधीन पद है या नहीं । चूंकि, वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय द्वारा यह मुद्दा अपीलार्थी के पक्ष में विनिश्चित किया गया है और इस निष्कर्ष को गंभीरता से कोई चुनौती भी नहीं दी गई है, इसलिए, वे निर्णय अधिक संगत नहीं हैं । जहां तक **जया बच्चन** (उपरोक्त) वाले मामले का संबंध है, इस न्यायालय के समक्ष इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए निवेदन किया गया था कि लाभ के पद शब्दों का क्या अर्थ है, यद्यपि, भारत के संविधान, 1950

---

[1] [1964] 4 एस. सी. आर. 311.
[2] (1984) 1 एस. सी. सी 551.
[3] (2001) 2 एस. सी. सी. 19.
[4] (2006) 5 एस. सी. सी. 266.

के अनुच्छेद 102 के संदर्भ में बात कही गई थी जो संसद् के किसी भी सदन के सदस्य की निरर्हता के संबंध में है । फिर भी, 'लाभ के पद' शब्दों का निर्वचन संविधान, 1950 के अनुच्छेद 191 के संदर्भ में की गई शब्द रचना का निर्वचन करने में उसी प्रकार लागू होगा । निर्णय के पैरा 6 को उद्धृत करना लाभप्रद होगा जो निम्न प्रकार है :–

> "6. .... लाभ का पद एक ऐसा पद है जो लाभ या धनीय अभिलाभ उत्पन्न करने के लिए समर्थ होता है । केन्द्रीय या राज्य सरकार के अधीन पद धारण करना, जिसके लिए कुछ अदायगी, वेतन, उपलब्धि, पारिश्रमिक या अप्रतिकरात्मक भत्ता दिया जाता है, 'लाभ का पद' धारण करना है । यह प्रश्न कि क्या कोई व्यक्ति लाभ के पद पर है या नहीं, उसका वास्तविक रूप से निर्वचन किया जाना अपेक्षित है । संदाय की प्रकृति पर विचार करते समय उसकी सारभूत प्रकृति पर विचार किया जाना चाहिए न कि उसके स्वरूप पर । नाम-पद्धति महत्वपूर्ण नहीं है । वास्तव में, 'मानदेय' शब्द का प्रयोग करने से संदाय को लाभ की परिधि से बाहर नहीं किया जा सकता, यदि प्राप्तकर्ता को धनीय अभिलाभ हुआ है । मानदेय का संदाय प्रतिकरात्मक भत्तों की प्रकृति के दैनिक भत्तों के अतिरिक्त, किराया-मुक्त वास-सुविधा और राज्य के खर्चों पर चालक सहित कार की सुविधा स्पष्ट रूप से पारिश्रमिक प्रकृति की होती है और यह धनीय अभिलाभ का स्रोत है और इस प्रकार इससे लाभ गठित होता है । इस प्रश्न को विनिश्चित करने के लिए कि क्या कोई व्यक्ति लाभ का पद धारण किए हुए है या नहीं, यह सुसंगत होगा कि पद लाभ या धनीय अभिलाभ उत्पन्न करने के लिए समर्थ है या नहीं और इस पर विचार नहीं करना होगा कि व्यक्ति वास्तव में धनीय अभिलाभ प्राप्त करता है या नहीं । यदि पद के संबंध में 'धनीय लाभ' 'प्राप्त किए जाने योग्य' है तो यह लाभ का पद बन जाता है, इस बात को ध्यान में लाए बिना कि क्या ऐसा धनीय लाभ वास्तव में प्राप्त किया गया है या नहीं । यदि पद के साथ जेब खर्च/वास्तविक खर्चों की प्रतिपूर्ति के अतिरिक्त कोई धनीय लाभ जुड़ा हुआ है या जिसके लिए पदधारक हकदार है, तो ऐसा पद अनुच्छेद 102(1)(क) के प्रयोजनार्थ लाभ का पद होगा । विधि की यह प्रास्थिति, **रावन्ना सुबन्ना** बनाम **जी. एस. काजीरप्पा,** (ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 653), **शिवमूर्ति स्वामी ईनामदार** बनाम **अगादीसनगन्ना अन्दानप्पा,** [(1971) 3 एस. सी. सी. 870], **शत्रुचारला चंद्रशेखर राजू** बनाम **वाईरीचेरला**

प्रदीप कुमार देव, [(1992) 4 एस. सी. सी. 404] और **शिबु सोरेन** बनाम **प्रदीप कुमार देव**, [(1992) 4 एस. सी. सी. 404] और **शिबु सोरेन** बनाम **दयानंद सहाय,** [(2001) 7 एस. सी. सी. 425] वाले मामलों में पिछली आधी शताब्दी के दौरान सुस्थिर हो चुकी है ।"

12. उच्च न्यायालय द्वारा उपर्युक्त उपदर्शित विधिक उल्लेख न केवल किया गया है, बल्कि इस विधि का समुचित परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन भी किया गया है । इस प्रकाश में, उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की परीक्षा की और यह निष्कर्ष निकाला कि पद के संबंध में न केवल प्राप्त किया गया धनीय लाभ बल्कि 'प्राप्त किए जाने योग्य' धनीय लाभ भी है जो प्रतिकरात्मक की प्रकृति के हैं जैसे कि यात्रा भत्ता और दैनिक भत्ते इत्यादि । इसलिए, उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय के सामंजस्य में यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत पद केवल 'लाभ का पद' है । उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया उत्तर पूर्णतः इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के अनुसार है क्योंकि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार, प्रथम प्रत्यर्थी ने न तो कोई संदाय, वेतन, परिलब्धि, पारितोषिक या कमीशन प्राप्त किया और न ही इस प्रकृति का कुछ भी उसे संदाय किया गया था । उसने केवल यात्रा भत्ता और दैनिक भत्ता प्राप्त किया था जो प्रतिकरात्मक भत्ते हैं और मात्र ये ही 'प्राप्त किए जाने योग्य' थे ।

13. अपीलार्थी की ओर से संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 2006 द्वारा वर्ष 2006 में किए गए संशोधन, जिसके द्वारा धारा 3 का विस्तार कर दिया गया था और संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 में संलग्न तालिका को अनेक समितियां, परिषदों, न्यासों इत्यादि, हज़ समिति अधिनियम, 2002 की धारा 3 के अधीन गठित भारत की हज़ समिति को सम्मिलित करते हुए जोड़े जाने के द्वारा संशोधित कर दिया गया, का लाभ लेने का प्रयास किया गया था । अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल के अनुसार, यद्यपि यह संशोधन केंद्रीय सरकार द्वारा किए गए हैं, इस तथ्य के प्रति स्वीकार्यता है कि भारत की हज़ समिति के उपाध्यक्ष और सदस्य निरर्हता से ग्रसित हैं और इसलिए उनको संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 3 के अधीन इस दृष्टिकोण से सम्मिलित किया गया है ताकि उनको 'लाभ के पद' के धारक के रूप में निरर्हता से बचाया जा सके ।

14. हमारी सुविचारित राय में, संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 3 की परिधि के भीतर हज़ समिति अधिनियम, 2002 की

धारा 3 के अधीन गठित भारत की हज़ समिति का समावेशन अपीलार्थी के पक्षकथन की सहायता नहीं कर सकते क्योंकि प्रथम प्रत्यर्थी केरल की राज्य हज़ समिति का अध्यक्ष है और भारत की हज़ समिति को स्वीकार्य भत्ते वही भत्ते नहीं हैं जो केरल की राज्य हज़ समिति को स्वीकार्य भत्ते होते हैं । इसके अतिरिक्त, प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से फाइल किए गए उत्तर का ऐसा संशोधन अत्यधिक सावधानी के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए था, भी सत्यभाषी है और इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती है ।

15. प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने इस प्रश्न के विनिर्धारण के लिए कि प्रश्नगत पद 'लाभ का पद' है या नहीं, के प्रयोजनार्थ आवश्यक अपेक्षाएं क्या हैं, इस न्यायालय द्वारा दिए गए निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया है :–

1. **गजानन समाधान लांडे** बनाम **संजय श्यामराव धोत्रेय**[1],

2. **शिवमूर्ति स्वामी ईनामदार इत्यादि** बनाम **अगादीसनगन्ना अन्दानप्पा इत्यादि**[2],

3. **रावन्ना सुबन्ना** बनाम **जी. एस. काजीरप्पा**[3],

16. **रावन्ना सुबन्ना** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का पैरा 12 यह प्रकटीकरण करता है कि अध्यक्ष वाली समिति की प्रत्येक बैठक के लिए 6/- रुपए की लघु रकम को जेब खर्च के बाबत समेकित शुल्क के रूप में माना गया है जिसका खर्च अध्यक्ष द्वारा समिति की बैठकों में सम्मिलित होने के लिए किया जाना है और इसे पारितोषिक या लाभ के रूप में संदाय नहीं माना जाएगा ।

17. **शिवमूर्ति स्वामी** (उपरोक्त) वाले मामले में पैरा 17 में भी इसी प्रकार का मत अपनाया गया है और संबद्ध बोर्ड के सदस्य को प्रतिदिन संदेय 16/- रुपए को सदस्यों द्वारा किए गए खर्चों की प्रतिपूर्ति के प्रयोजनार्थ संदाय के रूप में माना गया और इसलिए इसे प्रतिकरात्मक भत्ता अभिनिर्धारित किया गया न कि लाभ ।

18. **गजानन समाधान लांडे** (उपरोक्त) वाले मामले, में जिसकी न्यायपीठ में हम में से एक (न्यायमूर्ति आर. एम. लोढ़ा) (जो माननीय

---

[1] (2012) 2 एस. सी. सी. 64.

[2] (1971) 3 एस. सी. सी. 870.

[3] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 653.

न्यायमूर्ति उस समय थे) एक उसके सदस्य थे, सारगर्भित रूप से यह स्पष्ट किया गया कि :–

> "..........यह प्रश्न कि क्या पद 'लाभ का पद' है या नहीं, को विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ एक आवश्यक अपेक्षा यह है कि क्या ऐसे पद के साथ संदाय या कमीशन की प्रकृति में पारितोषिक संबद्ध है या नहीं । एक निर्वाचित निदेशक के रूप में विवरणी भरने वाले उम्मीदवार को भत्तों के रूप में संदत्त रकम को किसी भी दृष्टिकोण से संदाय या कमीशन की प्रकृति में 'पारितोषिक' नहीं कहा जा सकता है । यह मात्र एक प्रकार की खर्चों की प्रतिपूर्ति है जिसका व्यय विवरणी भरने वाले उम्मीदवार द्वारा किया गया है । आवश्यक शर्त कि पद के साथ संदाय या कमीशन के रूप में पारितोषिक संलग्न है, का भी समाधान नहीं किया गया ।"

19. पूर्वोक्त निर्णयों जिनका अवलंब प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा लिया गया, स्पष्टतः उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार का समर्थन करते हैं और अपीलाधीन निर्णय की पुष्टि करते हैं ।

20. अपीलार्थी की ओर से हाजिर विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री अंध्यार्जुन द्वारा यह अभिवाक् किया गया कि शब्द 'लाभ' में धनीय लाभों के अतिरिक्त हैसियत और प्रभाव इत्यादि को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए, को हम इस न्यायालय द्वारा दिए गए अनेक विनिश्चयों, जिनमें से कुछ को दोनों पक्षों द्वारा उद्धृत किया गया और जिनका उल्लेख ऊपर किया गया, को दृष्टि में रखते हुए स्वीकार्य नहीं पाते हैं । इस न्यायालय ने अनेक अवसरों पर स्पष्ट किया है कि 'लाभ का पद' एक ऐसा पद है जो लाभ या धनीय फायदा अर्जित करने के समर्थ होता है । शब्द 'लाभ' को सदैव 'धनीय लाभ' पद के समतुल्य या स्थानापन्न प्रतीत किया गया है । वह संदर्भ जिसमें शब्द 'लाभ' का प्रयोग किया गया है, दर्शित करता है कि सभी पदों को अनर्हिकृत नहीं किया गया है बल्कि केवल उन्हीं पदों को अनर्हिकृत किया गया है जो पदधारक के लिए मात्र प्रतिकरात्मक भत्तों के अतिरिक्त लाभ के रूप में धनीय लाभ अर्जित करते हैं । इसलिए इस विवाद्यक पर सुस्थिर कई निर्णयज विधियों की अनदेखी करने की कोई आवश्यकता नहीं है । यदि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल के निवेदनों को स्वीकार किया जाता है तो इस प्रश्न को निर्णीत करने में अत्यधिक अनिश्चितता उत्पन्न हो जाएगी कि क्या कोई पद 'लाभ का पद' है या नहीं ।

21. पूर्वोक्त तथ्यात्मक और विधिक परिदृश्यों में, हमारे समक्ष अपील को खारिज करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प शेष नहीं बचता है । हम, तदनुसार, आदेश पारित करते हैं । तथापि, जहां तक इस अपील का संबंध है, पक्षकार अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

अपील खारिज की गई ।

पां.

[2017] 3 उम. नि. प. 14

बृज लाल

बनाम

राजस्थान राज्य

7 अगस्त, 2016

न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर और न्यायमूर्ति अरुण मिश्र

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख की सामग्री के गहन परिशीलन और अन्य साक्षियों के परिसाक्ष्य के साथ दो अभियोजन साक्षियों के कथनों से स्पष्टतः और असंदिग्धतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अभियुक्त/अपीलार्थी दंड संहिता की धारा 302 के अधीन हत्या का अपराध करने का दोषी है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 96 – प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार – मामले में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह उपदर्शित हो कि अभियुक्त और सह-अभियुक्त पर वास्तव में हमला किया गया था और ऐसा भी कोई साक्ष्य नहीं है कि यह एक प्रतिरक्षा का मामला है जिसमें उन्होंने अपनी पिस्तौलों से भीड़ पर गोली चलाई, अतः यह प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का मामला नहीं बनता ।

जिस घटना के आधार पर वर्तमान अपील फाइल की गई है वह तारीख 30 सितंबर, 1983 को लगभग 9.00 बजे अपराह्न में मोहन राम के घर पर अर्थात् वह परिसर जहां पर मोहन लाल अपीलार्थी बृज लाल से दूर रहने के लिए स्थानांतरित हुआ था, घटी थी । घटना के समय, मोहन लाल अपनी पत्नी और बच्चों के साथ उक्त परिसर में मौजूद था । यह

अभिकथन किया गया है अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम ने मोहन राम को गालियां दी थीं जो अपने घर के बाहर बैठा हुआ था । अपीलार्थी और सह-अभियुक्त ने मोहन राम से मोहन लाल को बुलाने को कहा क्योंकि वे मोहन लाल की हत्या करना चाहते थे । मोहन राम का, जिसने शिकायत दर्ज कराई थी, यह प्रकथन है कि उसने अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम से अपने मकान में कोई भी गड़बड़ न करने का निवेदन किया था । मोहन राम ने अपीलार्थी और सह-अभियुक्त से कहा कि वह अपने आशय को अन्य किसी स्थान पर पूरा करें । मोहन राम की सलाह पर ध्यान न देते हुए अपीलार्थी और सह-अभियुक्त उसे गालियां देने लगे । इस समागम पर, मोहन राम को यह अहसास हुआ कि अभियुक्त और सह-अभियुक्त के पास पिस्तौलें हैं । मोहन लाल, अपीलार्थी और सह-अभियुक्त की गालियां और जान से मारने की धमकी सुनकर परिसर की चहार-दीवारी कूद कर भाग गया और मोहन राम के मकान के निकट स्थित मिल्खा सिंह की आटा-चक्की में जाकर छुप गया । मोहन राम और मोहन लाल की कहा-सुनी और फोन-कालों को सुनने के पश्चात् पड़ोसी और सह-ग्रामवासी घटनास्थल पर आ गए । उन्होंने भी अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त का काशी राम से वहां से चले जाने को कहा । अपीलार्थी तथा सह-अभियुक्त ने वहां से चले जाने के बजाय खुले तौर पर धमकी दी कि वे मोहन लाल की हत्या किए बिना नहीं जाएगें । पड़ोसियों और ग्रामवासियों के दबाव में आकर वे मोहन राम के मकान के सामने स्थित सुलतान भट के मकान की ओर चले गए । इस समागम पर पड़ोसी और सह-ग्रामवासी घटनास्थल की ओर गए जिस पर अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम भी वहां पहुंच गए और पड़ोसियों और ग्राम-वासियों ने पुनः अपीलार्थी और सह-अभियुक्त से झगड़ा न करने को कहा । शिकायत में किए गए प्रकथनों के अनुसार काशी राम (सह-अभियुक्त) के कहने पर अपीलार्थी बृज लाल ने वहां एकत्र हुए लोगों पर गोली चलाई । ओम प्रकाश और सुलतान भट को बृज लाल द्वारा चलाई गई गोलियों से क्षतियां पहुंचीं । ओम प्रकाश की मृत्यु घटनास्थल पर ही हो गई । सुलतान भट अचेत हो गया । उसे अस्पताल ले जाया गया और अगले दिन अर्थात् तारीख 1 अक्तूबर, 1983 को उसकी मृत्यु हो गई । काशी राम ने भी अपनी बंदूक से गोली चलाई । इस गोली से मुन्नी देवी नाम की महिला की भी घटनास्थ्ल पर मृत्यु हो गई । इस गोलीबारी के दौरान लाभ सिंह और शेरिया (5 वर्ष का बालक) भी आहत हो गए । उपरोक्त घटना की

रिपोर्ट तारीख 1 अक्तूबर, 1983 को रात्रि 12.05 बजे मोहन राम द्वारा दर्ज कराई गई । सेशन न्यायाधीश, श्रीगंगानगर ने तारीख 22 जनवरी, 1985 को पारित अपने निर्णय द्वारा अपीलार्थी बृज लाल को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन द्वितीय अपवाद का अवलंब लेते हुए उसकी ओर से किए गए आत्म प्रतिरक्षा के अभिवाक् को स्वीकार करते हुए, दोषमुक्त कर दिया । तारीख 22 जनवरी, 1985 को पारित उपर्युक्त निर्णय से व्यथित होकर राजस्थान राज्य ने 1985 की दांडिक अपील सं. 227 उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत की । उच्च न्यायालय ने तारीख 17 नवंबर, 2009 को आक्षेपित निर्णय पारित किया जिसके द्वारा राजस्थान राज्य द्वारा प्रस्तुत की गई अपील स्वीकार की गई । सेशन न्यायाधीश, श्रीगंगानगर द्वारा तारीख 22 जनवरी, 1985 को पारित निर्णय, जिसके अनुसार अपीलार्थी बृज लाल को दोषमुक्त किया गया था, अपास्त कर दिया गया । अपीलार्थी बृज लाल को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने का दोषी पाया गया । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह घटना वर्ष 1983 में घटित हुई है, उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी बृज लाल को आजीवन कारावास का दंड अधिनिर्णीत किया । उच्च न्यायालय ने 1,000/- रुपए का जुर्माना भी अधिरोपित किया जिसके संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर अपीलार्थी को 1 वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया । उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए निर्णयों का परिशीलन करने और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय का यह मत है कि इस न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई विधिक स्थिति के आधार पर अपीलार्थियों को प्रतिरक्षा के अभिवाक् से संबंधित किसी भी लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता । इस मामले में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह उपदर्शित हो कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम पर वास्तव में हमला किया गया था और इस संबंध में भी कोई साक्ष्य नहीं है कि यह एक प्रतिरक्षा का मामला है जिसमें उन्होंने अपनी पिस्तौलों से भीड़ पर गोली चलाई । न्यायालय ने ऊपर उल्लिखित मामले के पहलू से संबंधित सुसंगत साक्ष्य का परिशीलन पहले ही कर लिया है । अतः न्यायालय को अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई पहली दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता

है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दूसरी दलील यह दी गई है कि सम्पूर्ण अभियोजन वृत्तांत से यह प्रकट होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल का अभिकथित आशय मोहन लाल की हत्या करना था । यह दलील दी गई है कि इस बात का कोई कारण नहीं है कि अपीलार्थी गोली चलाकर तीन अज्ञात व्यक्तियों को घातक क्षति पहुंचाए । विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दूसरी दलील भी आधारहीन है जिसमें हमें कोई सार दिखाई नहीं देता है । पड़ोसियों और ग्रामवासियों का घटनास्थल पर एकत्र होने का कारण मोहन लाल को अभियुक्तों के आशयित हमले से बचाना था । ग्रामवासियों के क्रोधित होने के परिणामस्वरूप अभियुक्तों ने भीड़ पर अंधाधुंध गोलियां चलाईं । चूंकि इस पर अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल द्वारा विवाद नहीं किया गया है कि अन्य क्षतियों के साथ घातक क्षतियां अभियुक्त-अपीलार्थी और सह-अभियुक्त द्वारा कारित की गईं थीं, इसलिए अपीलार्थी पर उनके कृत्य को न्यायोचित ठहराने के लिए साबित करने का भार पड़ता है । अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्तों ने एकत्र हुई भीड़ से क्रोधित होकर अंधाधुंध गोलियां चलाई थीं क्योंकि वे लोग अपीलार्थियों को मोहन लाल को क्षति पहुंचाने से रोक रहे थे । इस बात को स्वीकार करके कि अभियुक्त-अपीलार्थी और सह-अभियुक्त ने पड़ोसियों और ग्रामवासियों पर, जो घटनास्थल पर एकत्र हुए थे, वास्तव में गोलियां चलाई थीं, इस तथ्य को असत्य नहीं कहा जा सकता । उपरोक्त कारणों के आधार पर, हमें इस दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा तीसरी दलील यह दी गई है कि बंदूक की बरामदगी, जिससे अभियुक्त अपीलार्थी बृज लाल ने भीड़ पर गोली चलाई थी, के संबंध में यह सबित नहीं किया गया है कि वह अपीलार्थी से ही बरामद की गई थी । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि बरामदगी से संबंधित साक्षियों में से एक साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि जो बंदूक अभियुक्त के कहने पर बरामद की गई थी वह उस समय कपड़े में लिपटी हुई पाई गई थी जब उसे खोद कर निकाला गया था । बरामदगी से संबंधित अन्य साक्षी ने इससे भिन्न साक्ष्य दिया है । जैसाकि इसमें इसके ऊपर देखा गया है, सबसे पहला यह अभिवाक् तब किया जा सकता था जब अपीलार्थी ने इनकार किया होता और उसका यह पक्षकथन होता कि उसने घटना के समय गोली चलाई ही नहीं थी । चूंकि उसने ऐसा अभिवाक् नहीं किया है, इसलिए वर्तमान दलील बिल्कुल भी स्वीकार्य नहीं है । दूसरी बात यह है कि बरामदगी का तथ्य मोहन राम और मोहन लाल के कथनों से

अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किया गया है । यहां तक कि अभियुक्त अपीलार्थी बृज लाल के हस्ताक्षर बरामदगी के समय तैयार किए गए मजहर पर प्राप्त किए गए थे । ऐसी स्थिति में इस बात से किसी भी प्रकार से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल के कहने पर बरामद की गई बंदूक खोद कर निकाले जाने के समय पर कपड़े में लिपटी हुई थी या नहीं । ऊपर अभिलिखित कारणों के आधार पर, हमें इस दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा चौथी दलील यह दी गई है कि सह-अभियुक्त काशी राम को, जिसका विचारण अलग से किया गया था, दोषमुक्त कर दिया गया । इस संबंध में विद्वान् काउंसेल का झुकाव इस ओर था कि अपीलार्थी के अलग से किए गए विचारण में अभियोजन पक्ष द्वारा जिन साक्षियों का अवलंब लिया गया था उन्हीं साक्षियों ने सह-अभियुक्त काशी राम के संबंध में किए गए विचारण के दौरान अभिसाक्ष्य दिया था और इस प्रकार, काशी राम का दोषमुक्ति और अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल की दोषसिद्धि निराधार है । इस मामले में यह उल्लेख करना सुसंगत होगा कि सबसे महत्वपूर्ण अभियोजन साक्षी मोहन लाल है । सभी अभिकथन मोहन लाल पर केन्द्रित हैं । अभियोजन पक्ष की सम्पूर्ण कहानी इस तथ्य के इर्द गिर्द घूमती है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम अपनी पुरानी शत्रुता के कारण किसी भी प्रकार से मोहन लाल को क्षति पहुंचाना चाहते थे । साक्षी मोहन लाल, जो विचारण न्यायालय के समक्ष अभि. सा. 15 के रूप में जिस मामले में पेश हुआ था, उसी मामले से वर्तमान अपील उद्भूत हुई है और उसे बलबीर चन्द्र के पुत्र, जाति मेघवाल, आयु 38 वर्ष निवासी ग्राम घूमन, तहसील नवांशहर, पुलिस थाना बंगा, जिला जालंधर के रूप में दर्शाया गया है । जबकि मोहन लाल जो विचारण न्यायालय में सह-अभियुक्त काशी राम के विचारण के दौरान अभि. सा. 16 के रूप में पेश हुआ था, उसे लेखराम भट के पुत्र के रूप में (1993 के सेशन विचारण मामला सं. 26 में अपर सेशन न्यायाधीश सं. 2, श्रीगंगानगर द्वारा तारीख 18 मार्च, 1994 को पारित किए गए निर्णय में) दर्शाया गया था और इस मामले में काशी राम अभियुक्त था । उपरोक्त निर्णय में अधिकांश अभियोजन साक्षी पक्षद्रोही हो गए थे और वे सह-अभियुक्त काशी राम की शनाख्त इस संबंध में नहीं कर सके थे कि उन्होंने अपराध में भाग लिया था । इस मामले में स्थिति बिल्कुल विपरीत है । सभी सुसंगत अभियोजन साक्षियों ने अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल की सम्यक् रूप से शनाख्त की है । अतः न्यायालय के लिए इस आधार पर यह स्वीकार करना संभव नहीं

है कि अलग से चल रहे विचारण मामले में काशी राम को दोषमुक्त किया गया था इसलिए अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल दोषमुक्त किए जाने योग्य है । अतः, तद्नुसार, वर्तमान दलील अस्वीकार की जाती है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की ओर से पांचवीं दलील यह दी गई है कि पड़ोसियों और सह-ग्रामवासियों, जो घटनास्थल पर एकत्र हुए थे, के आक्रामक व्यवहार के परिणामस्वरूप अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम को मोहन राम के मकान से लगभग 200 फुट दूर पीछे हटा दिया गया । यह दलील दी गई है कि स्वयं उपरोक्त तथ्यात्मक स्थिति यह दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि लोगों का व्यवहार, जो घटनास्थल पर एकत्र हुए थे, अभित्रासी प्रकृति का था । यह भी दलील दी गई है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम द्वारा मात्र आत्मरक्षा के लिए गोली चलाई गई थी । न्यायालय ने पहले ही अपीलार्थी की ओर से उठाए गए प्रतिरक्षा के मुद्दे के संबंध में अपना मत व्यक्त किया है । उपर्युक्त दलील पुनः दिए जाने की ईप्सा की गई है और साथ ही यह तथ्य प्रस्तुत किया गया है कि जब बृज लाल और काशी राम द्वारा गोली चलाई गई थी तब वे मोहन राम के निवास से 200 फुट से अधिक दूरी पर थे । न्यायालय को अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई इस दलील में मुश्किल से ही कोई न्यायौचित्य दिखाई देता है । अभियोजन पक्ष ने स्पष्ट रूप से सशपथ अभिलिखित परिसाक्ष्य के माध्यम से दर्शाया है कि घटनास्थल पर एकत्र हुए व्यक्तियों में कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार से हथियार से लैस नहीं था । यह भी स्पष्ट है कि घटनास्थल पर एकत्र हुई भीड़ में पुरुष, महिलाएं तथा बच्चे थे । यह तथ्य कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और ग्रामवासियों के बीच लगभग 17 से 18 फुट की दूरी थी । इससे यह दर्शित होता है कि उसे वास्तव में कोई खतरा नहीं था जब उसने निहत्थे व्यक्तियों जिनमें महिलाएं और बच्चे भी थे, पर गोली चलाई । यह केवल भीड़ से बदला लेने की भावना से किया गया था जिसके परिणामस्वरूप भीड़ मोहन लाल को बचाने के लिए एकत्र हुई थी और अपीलार्थी द्वारा अंधाधुंध गोली चलाया जाना समाधानप्रद कारण नहीं हो सकता । अतः न्यायालय के लिए अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई पांचवीं दलील को भी स्वीकार करना संभव नहीं है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अंतिम दलील यह दी गई है कि मोहन लाल भी भीड़ में मौजूद था जिसका सामना अभियुक्त-अपीलारार्थी बृज लाल और काशी राम कर रहे थे, और इस प्रकार अभियुक्त को भीड़ के अन्य सदस्यों के बजाय उस पर गोली चलानी चाहिए थी । वर्तमान दलील पूर्णतया सारहीन

है और बिल्कुल चलने योग्य नहीं है । अभियुक्त-अपीलार्थी ने अभियोजन साक्षियों के समक्ष उपरोक्त सुझाव उस समय नहीं रखा है जब उसकी ओर से इन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा की जा रही थी । इसके अतिरिक्त, वास्तव में यह सुझाव दिया गया था कि अभियुक्त किराने की दुकान से बीड़ी खरीदने के लिए आए थे और वे घटनास्थल पर कभी नहीं गए और न ही मोहन लाल को क्षति पहुंचाने का उनका कोई आशय था । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई प्रथम, द्वितीय और पांचवीं दलील के उत्तर में न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय को वर्तमान दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता है और यह दलील भी एतद्द्वारा खारिज की जाती है । न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में अधिकथित मानदंडों पर सूक्ष्मता से विचार किया है । तथापि, न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि उच्च न्यायालय ने अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त करने में तर्कसम्मत साक्ष्य का अवलंब लिया है । यह अभिलिखित करने में न्यायालय का समाधान हो गया है कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष की ओर से अभिलिखित महत्वपूर्ण साक्ष्य, विशेषकर अभियोजन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा के दौरान उद्भूत साक्ष्य, को अनदेखा किया है जिसके आधार पर तथ्यों को दूसरे दृष्टिकोण से देखने का प्रश्न उठता ही नहीं है । न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि अभियोजन साक्षियों अर्थात् मोहन राम और मोहन लाल तथा अन्य साक्षियों के परिसाक्ष्यों से स्पष्ट रूप से केवल यही निष्कर्ष निकलता है कि जहां तक ओम प्रकाश और सुलतान भट की हत्या किए जाने का संबंध है, अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध कारित करने का दोषी है । (पैरा 17, 18, 19, 20, 21, 22 और 24)

अपीलार्थी ने ग्रामवासियों की भीड़ पर आत्मरक्षा के लिए उस समय गोली चलाई थी जब अभियुक्त-अपीलार्थी और सह-अभियुक्त पर हमला किया गया था । इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि विद्वान् काउंसेल द्वारा बताई गई प्रकृति में आत्मरक्षा करने के लिए कोई भी अभियुक्त स्वतंत्र है, तब एक स्पष्ट बात सामने आती है जब अभियुक्त आत्मरक्षा करना चाहता है और इस अभिवाक् से यह बात सिद्ध हो जाती है कि यह घटना घटित हुई थी । ऐसी प्रतिरक्षा करने पर एक और उपधारणा की जा सकती है । यह उपधारणा भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 96 से उद्भूत होती है । वर्तमान मामले में विचार के लिए यह प्रश्न उद्भूत होता है कि इस मामले में अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य है या नहीं जिससे प्राइवेट प्रतिरक्षा का अभिवाक् सिद्ध हो सके । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने इसका सकारात्मक उत्तर दिया है । उपरोक्त

उत्तर का आधार अपीलार्थी को पहुंची क्षतियां हैं जो अपीलार्थी के अनुसार भीड़ द्वारा उस समय कारित की गईं थीं जब अपीलार्थी पर हमला किया गया था । यह दलील दी गई है कि घटनास्थल पर एकत्रित हुए पड़ोसियों और ग्रामवासियों ने उन पर हमला किया था जिसके परिणामस्वरूप उन्हें सुलतान भट के मकान में प्रवेश करना पड़ा । यह दलील दी गई है कि उपरोक्त हमले के प्रत्युत्तर में अभियुक्तों को क्षतियां पहुंची थीं अर्थात् अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल तथा सह-अभियुक्त काशी राम ने भीड़ पर गोलियां चलाई थीं जिस पर भीड़ ने उन पर हमला किया । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर गहराई से विचार करने के पश्चात् न्यायालय का यह मत है कि अभियोजन पक्ष द्वारा ठोस साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है जिससे यह पुष्टि होती है कि घटनास्थल पर मोहन राम के चीख-पुकार करने के परिणामस्वरूप जो भीड़ एकत्र हुई थी, वह निहत्थी थी । अभिलेख पर यह साबित करने के लिए भी साक्ष्य है कि सभी ग्रामवासी केवल अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम से आग्रह कर रहे थे कि वे मोहन लाल की हत्या न करें जिसके लिए इन अभियुक्तों ने धमकी दी थी । अभियोजन साक्षियों के परिसाक्ष्य से यह भी साबित होता है कि ग्रामवासियों और सुलतान भट के मकान के बीच पर्याप्त दूरी थी जिसके सामने अभियुक्त खड़े हुए थे । केवल मोहन राम ने ही नहीं अपितु मोहन लाल ने भी स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि किसी भी पड़ोसी और ग्रामवासी के पास हथियार नहीं थे । इसके अतिरिक्त, साक्षियों ने यह भी दोहराया है कि एकत्र हुई भीड़ में पुरुष, महिलाएं और बच्चे थे, इस बात से पर्याप्त रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि पड़ोसियों और ग्रामवासियों का उद्देश्य अभियुक्त-अपीलार्थी या सह-अभियुक्त को क्षति पहुंचाना नहीं था । इस बात को अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि मृतका मुन्नी देवी एक महिला थी, और 5 वर्ष का बालक अर्थात् शेरिया भी आहत हुआ था । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विशेषकर अपीलार्थी द्वारा इस संबंध में कोई भी सारभूत साक्ष्य प्रस्तुत न किए जाने पर (कि उन्होंने गोलियां आत्मरक्षा के लिए चलाई थीं), पूर्ण रूप से विचार करने के पश्चात् वर्तमान दलील स्वीकार नहीं की जा सकती । (पैरा 13, 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 13 एस. सी. सी. 657 : **सुनील कुमार शंभु दयाल गुप्ता** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	23

[2003]	ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 976 : **रिजान** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य ;**	13
[1992]	(1992) 2 एस. सी. सी. 406 : **भगवान स्वरूप** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य ;**	16
[1991]	(1991) 2 एस. सी. सी. 612 : **बूटा सिंह** बनाम **पंजाब राज्य ।**	16

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 991.

1985 की दांडिक अपील सं. 227 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 17 नवंबर, 2009 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री हुजैफा अहमदी (ज्येष्ठ अधिवक्ता, बी. पी. सारंगी, तेजस्वी कुमार, विनोद कुमार के., (सुश्री) शाहरुख आलम और अम्बर कमरुद्दीन (श्रीमती एम. कमरुद्दीन की ओर से)

प्रत्यर्थी की ओर से — श्री पुनीत परिहार (मिलिन्द कुमार की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर ने दिया ।

न्या. खेहर – शिकायत में किए गए अभिकथनों के अनुसार, अपीलार्थी बृज लाल और मोहन लाल (अभि. सा. 15) दोनों राज्य सरकार के सिंचाई विभाग में कर्मचारी थे । वे दोनों गेज रीडर के पद पर कार्यरत थे । वे सुलेमान कीहिड़ में स्थित एक-दूसरे के निकट सरकारी क्वार्टरों में रहते थे । अपीलार्थी बृज लाल अभिकथित रूप से मोहन लाल (अभि. सा. 15) को शराब के नशे में गालियां दिया करता था । सह-अभियुक्त काशी राम सहित अन्य लोग अपीलार्थी बृज लाल द्वारा मोहन लाल के साथ दुर्व्यवहार किए जाने के मामले में बृज लाल का पक्ष लिया करते थे । इस विवाद को आपस में तय करने के लिए मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने पंचायत बिठाई । मोहन लाल (अभि. सा. 15) की बात इस पंचायत में नहीं मानी गई । परिणामस्वरूप, उसने सिंचाई विभाग के सहायक इंजीनियर को तारीख 18 अगस्त, 1983 को एक संसूचना भेजी जिसमें अपीलार्थी बृज

लाल के दुर्व्यवहार का उल्लेख किया । चूंकि उक्त शिकायत से भी कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकला, इसलिए मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने अपना सरकारी निवास छोड़ दिया और मोहन राम (अभि. सा. 1) के मकान में किराए पर रहने लगा ।

2. जिस घटना के आधार पर वर्तमान अपील फाइल की गई है वह तारीख 30 सितंबर, 1983 को लगभग 9.00 बजे अपराह्न में मोहन राम (अभि. सा. 1) के घर पर अर्थात् वह परिसर जहां पर मोहन लाल (अभि. सा. 15) अपीलार्थी बृज लाल से दूर रहने के लिए स्थानांतरित हुआ था, घटी थी । घटना के समय, मोहन लाल (अभि. सा. 15) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ उक्त परिसर में मौजूद था । यह अभिकथन किया गया है अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम ने मोहन राम (अभि. सा. 1) को गालियां दी थीं जो अपने घर के बाहर बैठा हुआ था । अपीलार्थी और सह-अभियुक्त ने मोहन राम (अभि. सा. 1) से मोहन लाल (अभि. सा. 15) को बुलाने को कहा क्योंकि वे मोहन लाल की हत्या करना चाहते थे । मोहन राम (अभि. सा. 1) का, जिसने शिकायत दर्ज कराई थी, यह प्रकथन है कि उसने अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम से अपने मकान में कोई भी गड़बड़ न करने का निवेदन किया था । मोहन राम ने अपीलार्थी और सह-अभियुक्त से कहा कि वह अपने आशय को अन्य किसी स्थान पर पूरा करें । मोहन राम (अभि. सा. 1) की सलाह पर ध्यान न देते हुए अपीलार्थी और सह-अभियुक्त उसे गालियां देने लगे । इस समागम पर, मोहन राम (अभि. सा. 1) को यह अहसास हुआ कि अभियुक्त और सह-अभियुक्त के पास पिस्तौलें हैं । मोहन लाल (अभि. सा. 15), अपीलार्थी और सह-अभियुक्त की गालियां और जान से मारने की धमकी सुनकर परिसर की चहार-दीवारी कूद कर भाग गया और मोहन राम (अभि. सा. 1) के मकान के निकट स्थित मिल्खा सिंह की आटा-चक्की में जाकर छुप गया ।

3. मोहन राम (अभि. सा. 1) और मोहन लाल (अभि. सा. 15) की कहा-सुनी और फोन-कालों को सुनने के पश्चात् पड़ोसी और सह-ग्रामवासी घटनास्थल पर आ गए । उन्होंने भी अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त का काशी राम से वहां से चले जाने को कहा । अपीलार्थी तथा सह-अभियुक्त ने वहां से चले जाने के बजाय खुले तौर पर धमकी दी कि वे मोहन लाल (अभि. सा. 15) की हत्या किए बिना नहीं जाएंगे । पड़ोसियों और ग्रामवासियों के दबाव में आकर वे मोहन राम (अभि. सा. 1)

के मकान के सामने स्थित सुलतान भट के मकान की ओर चले गए । इस समागम पर पड़ोसी और सह-ग्रामवासी घटनास्थल की ओर गए जिस पर अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम भी वहां पहुंच गए और पड़ोसियों और ग्रामवासियों ने पुनः अपीलार्थी और सह-अभियुक्त से झगड़ा न करने को कहा । शिकायत में किए गए प्रकथनों के अनुसार काशी राम (सह-अभियुक्त) के कहने पर अपीलार्थी बृज लाल ने वहां एकत्र हुए लोगों पर गोली चलाई । ओम प्रकाश और सुलतान भट को बृज लाल द्वारा चलाई गई गोलियों से क्षतियां पहुंचीं । ओम प्रकाश की मृत्यु घटनास्थल पर ही हो गई । सुलतान भट अचेत हो गया । उसे अस्पताल ले जाया गया और अगले दिन अर्थात् तारीख 1 अक्तूबर, 1983 को उसकी मृत्यु हो गई । काशी राम ने भी अपनी बंदूक से गोली चलाई । इस गोली से मुन्नी देवी नाम की महिला की भी घटनास्थल पर मृत्यु हो गई । इस गोलीबारी के दौरान लाभ सिंह और शेरिया (5 वर्ष का बालक) भी आहत हो गए । उपरोक्त घटना की रिपोर्ट तारीख 1 अक्तूबर, 1983 को रात्रि 12.05 बजे मोहन राम (अभि. सा. 1) द्वारा दर्ज कराई गई ।

4. यह उल्लेख करना भी सुसंगत होगा कि अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम अस्पताल में भर्ती हुए थे । जैसे ही उन्होंने सुलतान भट की मृत्यु के बारे में सुना वे अस्पताल से भाग गए । तथापि, अपीलार्थी बृज लाल तारीख 10 अक्तूबर, 1983 को गिरफ्तार किया गया । अपीलार्थी बृज लाल द्वारा दिए गए प्रकटीकरण कथन के आधार पर 12 बोर की एक पिस्तौल और चले हुए कारतूस बरामद किए गए । सह-अभियुक्त काशी राम गिरफ्तारी से बच कर भाग गया । अन्वेषण के पश्चात् अपीलार्थी बृज लाल को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 34 के साथ पठित धारा 302, 307 और 324 तथा भारतीय आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 और 27 के अधीन न्यायिक मजिस्ट्रेट सं. 1, श्रीगंगानगर द्वारा आरोपित किया गया । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने यह मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिया जिसने इसमें इसके ऊपर निर्दिष्ट उपबंधों के अधीन अपीलार्थी बृज लाल के विरुद्ध आरोप विरचित किए ।

5. अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल ने दोषी न होने का अभिवाक् किया । दंड संहिता की धारा 300 के अधीन द्वितीय अपवाद के अंतर्गत प्राइवेट प्रतिरक्षा के अभिवाक् का अवलंब लिया । दंड संहिता की धारा 300 निम्न प्रकार है :–

"**धारा 300. हत्या** – एतस्मिन्पश्चात् अपवादित दशाओं को छोड़कर आपराधिक मानव वध हत्या है, यदि वह कार्य, जिसके द्वारा मृत्यु कारित की गई हो, मृत्यु कारित करने के आशय से किया गया हो, अथवा

दूसरा – यदि वह ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया हो जिससे अपराधी जानता हो कि उस व्यक्ति को मृत्यु कारित करना संभाव्य है जिसको वह अपहानि कारित की गई है, अथवा

तीसरा – यदि वह किसी व्यक्ति को शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया हो और वह शारीरिक क्षति, जिसके कारित करने का आशय हो, प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हो, अथवा

चौथा – यदि कार्य करने वाला व्यक्ति यह जानता है कि वह कार्य इतना आसन्न संकट है कि पूरी अधिसंभाव्यता है कि वह मृत्यु कारित कर ही देगा या ऐसी शारीरिक क्षति कारित कर ही देगा जिससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है और वह मृत्यु कारित करने या पूर्वोक्त रूप की क्षति कारित करने की जोखिम उठाने के लिए किसी प्रतिहेतु के बिना ऐसा कार्य करे ।

दृष्टांत

(क) **य** को मार डालने के आशय से **क** उस पर गोली चलाता है, परिणामस्वरूप **य** मर जाता है । **क** हत्या करता है ।

(ख) **क** यह जानते हुए कि **य** ऐसे रोग से ग्रस्त है कि संभाव्य है कि एक प्रहार उसकी मृत्यु कारित कर दे, शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से उस पर आघात करता है । **य** उस प्रहार के परिणामस्वरूप मर जाता है । **क** हत्या का दोषी है, यद्यपि वह प्रहार किसी अच्छे स्वस्थ व्यक्ति की मृत्यु करने के लिए प्रकृति के मामूली अनुक्रम में पर्याप्त न होता । किंतु यदि **क,** यह न जानते हुए कि **य** किसी रोग से ग्रस्त है उस पर ऐसा प्रहार करता है, जिससे कोई अच्छा स्वस्थ व्यक्ति प्रकृति के मामूली अनुक्रम में न मरता, तो यहां, **क,** यद्यपि शारीरिक क्षति कारित करने का उसका आशय हो, हत्या का दोषी नहीं है, यदि उसका आशय मृत्यु कारित करने का या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने का नहीं था, जिससे प्रकृति के मामूली

अनुक्रम में मृत्यु कारित हो जाए ।

(ग) **य** को तलवार या लाठी से ऐसा घाव **क** साशय करता है, जो प्रकृति के मामूली अनुक्रम में किसी मनुष्य की मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त है, परिणामस्वरूप **य** की मृत्यु कारित हो जाती है, यहां **क** हत्या का दोषी है, यद्यपि उसका आशय **य** की मृत्यु कारित करने का न रहा हो ।

(घ) **क** किसी प्रतिहेतु के बिना व्यक्तियों के एक समूह पर भरी हुई तोप चलाता है और उनमें से एक का वध कर देता है । **क** हत्या का दोषी है, यद्यपि किसी विशिष्ट व्यक्ति की मृत्यु कारित करने की उसकी पूर्वचिंतित परिकल्पना न रही हो ।

अपवाद 1 – * * * * *

अपवाद 2 – आपराधिक मानव वध हत्या नहीं है, यदि अपराधी, शरीर या सम्पत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार को सद्भावपूर्वक प्रयोग में लाते हुए विधि द्वारा उसे दी गई शक्ति को अतिक्रमण कर दे, और पूर्वचिंतन बिना और ऐसी प्रतिरक्षा के प्रयोजन से जितनी अपहानि करना आवश्यक हो उससे अधिक अपहानि करने के किसी आशय के बिना उस व्यक्ति की मृत्यु कारित करे दे जिसके विरुद्ध वह प्रतिरक्षा का ऐसा अधिकार प्रयोग में ला रहा हो ।

दृष्टांत

क को चाबुक मारने का प्रयत्न **य** करता है, किंतु इस प्रकार नहीं कि **क** को घोर उपहति कारित हो । **क** एक पिस्तौल निकाल लेता है । **य** हमले को चालू रखता है । **क** सद्भावपूर्वक यह विश्वास करते हुए कि वह अपने को चाबुक लगाए जाने से किसी अन्य साधन द्वारा नहीं बचा सकता है गोली से **य** का वध कर देता है । **क** ने हत्या नहीं की है, किंतु केवल आपराधिक मानव वध किया है ।

अपवाद 3 – * * * * *

अपवाद 4 – * * * * *

अपवाद 5 – * * * * *”

अभियोजन साक्षियों के कथन अभिलिखित किए जाने और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी का कथन अभिलिखित

किए जाने के पश्चात् अभियुक्त ने अपनी प्रतिरक्षा में कोई भी साक्षी प्रस्तुत करना नहीं चाहा जबकि उसे यह अवसर दिया गया था ।

6. सेशन न्यायाधीश, श्रीगंगानगर ने तारीख 22 जनवरी, 1985 को पारित अपने निर्णय द्वारा अपीलार्थी बृज लाल को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन द्वितीय अपवाद का अवलंब लेते हुए उसकी ओर से किए गए आत्म प्रतिरक्षा के अभिवाक् को स्वीकार करते हुए, दोषमुक्त कर दिया ।

7. तारीख 22 जनवरी, 1985 को पारित उपर्युक्त निर्णय से व्यथित होकर राजस्थान राज्य ने 1985 की दांडिक अपील सं. 227 उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत की । उच्च न्यायालय ने तारीख 17 नवंबर, 2009 को आक्षेपित निर्णय पारित किया जिसके द्वारा राजस्थान राज्य द्वारा प्रस्तुत की गई अपील स्वीकार की गई । सेशन न्यायाधीश, श्रीगंगानगर द्वारा तारीख 22 जनवरी, 1985 को पारित निर्णय, जिसके अनुसार अपीलार्थी बृज लाल को दोषमुक्त किया गया था, अपास्त कर दिया गया । अपीलार्थी बृज लाल को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने का दोषी पाया गया । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह घटना वर्ष 1983 में घटित हुई है, उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी बृज लाल को आजीवन कारावास का दंड अधिनिर्णीत किया । उच्च न्यायालय ने 1,000/- रुपए का जुर्माना भी अधिरोपित किया जिसके संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर अपीलार्थी को 1 वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया ।

8. अपीलार्थी ने तारीख 17 नवंबर, 2009 को उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के समक्ष आवेदन किया है । सुनवाई के दौरान, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने अपीलार्थी की ओर से दी गई दलीलों को संक्षिप्त करते हुए निम्न प्रकार तर्क दिए हैं :–

> "प्रथमतः, यह प्रतिवाद किया गया है कि यह तथ्य कि अपीलार्थी बृज लाल को भी क्षतियां पहुंचीं थीं, यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि भीड़ पर जवाबी कार्यवाही में गोलियां चलाना प्रतिरक्षा में किया गया कार्य है और इसके सिवा कुछ नहीं । द्वितीयतः, यह दलील दी गई है कि अपीलार्थी बृज लाल ने, अभियोजन पक्षकथन के अनुसार, मोहन लाल (अभि. सा. 15) को निशाना बनाया था । इस प्रकार इस बात का कोई प्रश्न नहीं उठता है कि उन्होंने पड़ोसियों और सह-ग्रामवासियों पर साशय गोलियां चलाईं

थीं, अतः उन्हें दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी नहीं ठहराया जा सकता था । तृतीयतः, यह दलील दी गई है कि जिस बंदूक से अभिकथित रूप से अपीलार्थी बृज लाल ने पड़ोसियों और सह-ग्रामवासियों पर गोली चलाई थी और परिणामस्वरूप ओम प्रकाश, सुलतान भट तथा मुन्नी देवी की मृत्यु हो गई थी, अपीलार्थी के कब्जे से उसकी बरामदगी साबित नहीं की गई है । इस प्रकार घटना में प्रयोग किए गए आयुध की अपीलार्थी से बरामदगी का कोई सबूत न होने की स्थिति में उच्च न्यायालय के पास किसी भी प्रकार का कोई भी न्यायौचित्य नहीं था कि वह अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी ठहराता । चतुर्थतः, यह दलील दी गई है कि सह-अभियुक्त काशी राम, जिसका विचारण अलग से किया गया था, अपीलार्थी की तरह अभियोजित किया गया है । यह दलील दी गई है कि अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी बृज लाल के विरुद्ध जिन साक्षियों को प्रस्तुत किया था उन्हीं साक्षियों को अभियुक्त काशी राम के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है । काशी राम के विरुद्ध किए गए विचारण में उसे निर्दोष पाया गया और उसे दोषमुक्त कर दिया गया । यह दलील दी गई है कि राजस्थान राज्य ने सह-अभियुक्त काशी राम की दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की । विद्वान् काउंसेल के अनुसार अभियोजन पक्ष एक मामले में सफल हो जाए और दूसरे मामले में उन्हीं साक्षियों के प्रस्तुत किए जाने पर असफल हो जाए, यह हो नहीं सकता । पंचमतः, यह दलील दी गई कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि घटना मोहन राम (अभि. सा. 1) के मकान से 200 फुट से अधिक दूरी पर घटित हुई थी । विद्वान् काउंसेल के अनुसार उपर्युक्त तथ्य यह साबित करने के लिए पर्याप्त है कि जो भीड़ घटनास्थल पर जमा हुई थी वह अभित्रासपूर्ण कार्य कर रही थी जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम ; मोहन राम (अभि. सा. 1) के मकान से सुलतान भट के मकान की ओर भाग गए । अतः यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम द्वारा प्रतिरक्षा में गोलियां चलाई गईं थीं और इससे अधिक कुछ नहीं हुआ था । अंतिमतः, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने अपने अभिसाक्ष्य में स्पष्ट और समान रूप से यह उल्लेख किया है कि घटना के समय जब अपीलार्थी और

सह-अभियुक्तों ने गोलियां चलाईं, तब वह अपीलार्थी बृज लाल से 20 फुट की दूरी पर था । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि यदि अभियोजन वृत्तांत पर विश्वास कर लिया जाए, तब यह होना चाहिए कि अपीलार्थी ने मोहन लाल (अभि. सा. 15) पर गोली चलाई हो न कि घटनास्थल पर एकत्र हुए व्यक्तियों पर, जैसाकि अभियोजन पक्ष द्वारा अभिकथन किया गया है ।"

9. सुनवाई के दौरान, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों ने अपने-अपने दावे के समर्थन में केवल दो साक्षियों अर्थात् मोहन राम (अभि. सा. 1) और मोहन लाल (अभि. सा. 15) के कथनों का अवलंब लिया है । हमारा यह मत है कि ये दावे दोनों ओर से किए गए हैं और इन पर विचार करने के लिए अभि. सा. 1 और अभि. सा. 15 के परिसाक्ष्य का सूक्ष्मता से परिशीलन करना आवश्यक है । हम निम्न प्रकार विचार कर रहे हैं :–

10. **मोहन राम – अभि. सा. 1**

(i) मोहन राम ने अपने कथन के आरंभ में यह साक्ष्य दिया है कि वह अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और मोहन लाल (अभि. सा. 15) को पहले से जानता था । इस साक्षी ने यह पुष्टि की है कि वह राज्य सरकार के सिंचाई विभाग में उन्हीं की तरह नियोजित था । जब बृज लाल और मोहन लाल उस विभाग में गेज रीडर के पद पर नियोजित थे, तब वह बेलदार के रूप में कार्य करता था । वे सभी सुलेमान कीहिड़ पर तैनात थे । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि मोहन लाल और बृज लाल को एक-दूसरे के निकट सुलेमान कीहिड़ में सरकारी मकान आबंटित किए गए थे । इस तथ्य की भी पुष्टि की गई है कि इस घटना के पूर्व उनके बीच आपस में झगड़ा चल रहा था । यह भी दलील दी गई है कि जब मोहन लाल अपने सरकारी मकान में अपने परिवार के साथ रहता था, तब बृज लाल एक अलग मकान में रहता था । इस साक्षी ने इस बात की पुष्टि की है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल रात में मद्यपान करता था और उसके बाद सदैव हंगामा करता था । इस साक्षी ने इस बात की भी पुष्टि की है कि सह-अभियुक्त काशी राम बृज लाल के साथ मिलकर शराब पीता था और काशी राम लड़ाई-झगड़े में बृज लाल का साथ दिया करता था । इस साक्षी ने यह साक्ष्य दिया है कि मोहन लाल (अभि. सा. 15) उनके इस व्यवहार पर आक्षेप किया करता था, अतः अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम मोहन लाल (अभि. सा. 15) दुश्मनी मानने लगे । इस साक्षी ने यह भी साक्ष्य दिया है कि मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने उससे और अन्य

व्यक्तियों से कई बार इन अभियुक्तों के व्यवहार को लेकर शिकायत की थी और यह कि उसने अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल से ऐसी हरकतों को न करने के लिए कहा । इस साक्षी ने यह इंगित किया है कि बृज लाल अपनी बात पर अड़ा हुआ था और उसने यह सब क्रियाकलाप रोकने से इनकार कर दिया । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने बृज लाल के विरुद्ध एक अभ्यावेदन सिंचाई विभाग के ओवरसीयर को देने के लिए उससे कहा था । मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने आबंटित किए गए अपने मकान में रहना बंद कर दिया और वह अपने परिवार के साथ उसके मकान में किराए पर रहने लगा । इस साक्षी ने यह साक्ष्य दिया है कि मोहन लाल ने इस घटना के लगभग 15 दिन पूर्व स्थानांतरण किया था ।

(ii) इस घटना के संबंध में यह कथन किया गया है कि यह घटना 8.30 बजे अपराह्न से 9.00 बजे अपराह्न के बीच घटित हुई थी । इस साक्षी ने यह साक्ष्य दिया है कि वह चारपाई पर अपने मकान के सामने बैठा हुआ था और मोहन लाल (अभि. सा. 15) और उसकी पत्नी तथा बच्चे घर के अंदर थे । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम उसके घर पर आए जिनके हाथों में पिस्तौलें थीं । अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल ने उससे मोहन लाल (अभि. सा. 15) को बाहर बुलाने को कहा क्योंकि वे मोहन लाल की हत्या करने आए थे । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उसने अभियुक्त-अपीलार्थी से तथा सह-अभियुक्त से भी ऐसा कोई कार्य उसके घर पर न करने को कहा ।

(iii) इस साक्षी ने इस बात की पुष्टि की है कि उसने मोहन लाल (अभि. सा. 15) को अपने घर की दीवार पर चढ़ते हुए और उसके पड़ोसी बद्री राम के मकान में कूदते हुए देखा था और इसके पश्चात् वह मिल्खा सिंह की चक्की की ओर चला गया । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि वह सहायता के लिए चिल्लाया था जिसके पश्चात् उसके पड़ोसी और ग्रामवासी उसकी आवाज सुनकर घटनास्थल पर आ गए । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि घटनास्थल पर एकत्र हुए सभी व्यक्तियों ने अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम से निवेदन किया कि वे घटनास्थल से चले जाएं किंतु बृज लाल और काशी राम वहीं पर अड़े रहे । अभियुक्तों ने जवाब दिया कि वे कहीं भी नहीं जाएंगे क्योंकि वे मोहन लाल (अभि. सा. 15) की हत्या करने आए हैं । इस साक्षी ने यह

भी कथन किया है कि जिस समय अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम उसके मकान से दूर गए और सुलतान भट के मकान के सामने खड़े हो गए थे तब भी वे गालियां देते रहे । इस साक्षी ने यह इंगित किया है कि सभी पड़ोसी और सह-ग्रामवासी बृज लाल और काशी राम के मकान से लगभग 20 फुट की दूरी पर थे और वे उन्हें गालियां देने से रोक रहे थे । किंतु, वे इसी पर अड़े हुए थे । मोहन राम (अभि. सा. 1) ने यह भी साक्ष्य दिया है कि सह-अभियुक्त काशी राम ने बृज लाल को भीड़ पर गोली चलाने के लिए उकसाया क्योंकि भीड़ का हर व्यक्ति मोहन लाल (अभि. सा. 15) का पक्ष ले रहा था । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि बृज लाल ने यह सुनकर एकत्र हुए लोगों पर गोली चलाई । इस साक्षी ने इस बात की पुष्टि की है कि ओम प्रकाश और सुलतान भट को अग्न्यायुध से क्षतियां पहुंचीं । उसने यह प्रकथन किया है कि सह-अभियुक्त काशी राम ने अपनी बंदूक से इसी दौरान गोली चलाई थी जो मुन्नी देवी, लाभ सिंह मिस्त्री और शेरिया को लगी । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि मुन्नी देवी और ओम प्रकाश की मृत्यु घटनास्थल पर ही हो गई थी जबकि सुलतान भट बेहोश हो गया था ।

(iv) इस साक्षी ने यह भी पुष्टि की है कि उसने अर्धरात्रि में पुलिस थाना चूनावर में घटना की रिपोर्ट दर्ज कराई थी । मोहन राम (अभि. सा. 1) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह प्रकथन किया है कि घटनास्थल पर एकत्र हुए व्यक्तियों में पुरुष, महिलाएं और बच्चे थे । इस साक्षी ने इस बात से इनकार किया है कि जो व्यक्ति वहां एकत्र हुए थे उनका आशय अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम को पकड़ना था । इस साक्षी ने यह साक्ष्य दिया है कि भीड़ में से किसी भी व्यक्ति के पास कोई भी लाठी या डंडा नहीं था । इस साक्षी ने इस सुझाव से इनकार किया है कि बृज लाल और काशी राम पर ग्राम वासियों द्वारा लाठियों से हमला किया गया था । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि न तो बृज लाल और न ही काशी राम को घटना के दौरान कोई क्षति पहुंची । इस साक्षी ने इस सुझाव से भी इनकार किया है कि घटनास्थल पर एकत्र हुए लोगों ने अभियुक्त-अपीलार्थी और सह-अभियुक्त का पीछा किया था । इस साक्षी ने इस सुझाव से भी इनकार किया है कि बृज लाल और काशी राम किरयाने की दुकान से बीड़ी खरीदने आए थे और वे उसके निवास स्थान पर मोहन लाल (अभि. सा. 15) को पीटने या उसे क्षति पहुंचाने नहीं आए ।

(v) मोहन राम (अभि. सा. 1) के उपर्युक्त अभिसाक्ष्य से घटना से संबंधित अभियोजन वृत्तांत की पूर्ण रूप से सम्पुष्टि होती है ।

11. मोहन लाल – अभि. सा. 15

(i) मोहन लाल ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह राजस्थान सरकार के सिंचाई विभाग में नियोजित था और गेज रीडर के रूप में सुलेमान हेड पर तैनात था । इस साक्षी ने इस बात की पुष्टि की है कि वह उसे सुलेमान हेड में आबंटित किए गए सरकारी मकान में अपनी पत्नी और तीन बच्चों के साथ रहता था । इस साक्षी ने यह साक्ष्य दिया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल का सरकारी मकान उसके सरकारी मकान के निकट ही था । इस साक्षी ने यह प्रकथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल शराब पीकर उसे गालियां दिया करता था और काशी राम और उसका जीजा अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल के साथ कभी-कभी मौजूद होता था । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उसने अभियुक्त से ऐसी भाषा का प्रयोग करने से मना किया था क्योंकि वह एक पारिवारिक व्यक्ति था । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और उसके बीच इस विवाद को निपटाने के लिए एक पंचायत बैठाई । इस पंचायत में सिंचाई विभाग के सह-कर्मचारी भी उपस्थित हुए । इस साक्षी ने यह साक्ष्य दिया है कि बृज लाल बुलाए जाने पर पंचायत में उपस्थित हुआ । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल ने पंचायत में भी यही बात कही कि वह वैसा ही करेगा जैसा वह चाहेगा और पंचायत के सदस्य जो चाहें कर लें । इस साक्षी ने यह भी साक्ष्य दिया है कि पंचायत के पश्चात् उसने अपने विभाग के ओवरसीयर के समक्ष एक आवेदन (प्रदर्श पी-12) प्रस्तुत किया जिसमें अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल के व्यवहार की शिकायत की । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि इस शिकायत के बावजूद, अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल के व्यवहार में कोई सुधार नहीं आया । इस साक्षी ने यह कथन किया कि उसने अपीलार्थी से बचने के लिए अपने सरकारी मकान को छोड़ दिया और किराए के मकान में आ गया जो मोहन राम (अभि. सा. 1) का था । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि यह घटना मोहन राम (अभि. सा. 1) के मकान में स्थानांतरित होने के 10/15 दिनों के भीतर घटित हुई थी । यह कथन किया गया है कि यह घटना 8.00 बजे अपराह्न और 9.00 बजे अपराह्न के बीच घटित हुई थी । इस साक्षी ने यह प्रकथन किया है कि मोहन राम (अभि. सा. 1) अपने मकान के दरवाजे के बाहर बैठा हुआ था

और वह स्वयं, उसकी पत्नी और बच्चे मकान के अंदर थे । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम उसे घर के बाहर बुला रहे थे । इस साक्षी ने यह पुष्टि की है कि अभियुक्तों के हाथों में पिस्तौलें थीं । अभियुक्त-अपीलार्थी और सह-अभियुक्त द्वारा दबाव डाले जाने पर, मोहन राम (अभि. सा. 1) ने उनसे कहा कि वह उन्हें अपने घर पर मोहन लाल (अभि. सा. 15) की हत्या नहीं करने देगा किंतु अभियुक्तों ने उसकी बात नहीं सुनी और वे गालियां देते रहे ।

(ii) मोहन लाल ने यह प्रकथन किया है कि वह मोहन राम (अभि. सा. 1) के मकान की दीवार कूद कर बद्री राम के मकान से होता हुआ मिल्खा सिंह की चक्की में चला गया । उसने यह भी प्रकथन किया है कि पड़ोसी और सह-ग्रामवासी मोहन राम (अभि. सा. 1) के शोर की आवाज सुनकर घटनास्थल की ओर दौड़े । इस प्रक्रम पर, अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम सुलतान भट की मकान की ओर गए । इस साक्षी ने यह प्रकथन किया है कि जो भीड़ एकत्र हुई थी उसमें पुरुष, महिलाएं और बच्चे थे । इस साक्षी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि ग्रामवासियों ने बृज लाल और काशी राम से वहां से चले जाने का निवेदन किया किंतु वे अपनी बात पर ही अड़े रहे । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि बृज लाल और काशी राम ने अपनी पिस्तौलों से गोलियां चलाईं और बृज लाल द्वारा चलाईं गईं ये गोलियां ओम प्रकाश और सुलतान भट को लगीं जबकि सह-अभियुक्त काशी राम द्वारा चलाई गईं गोलियां मुन्नी देवी, लाभ सिंह और शेरिया राम को लगीं । इस साक्षी ने इस बात की पुष्टि की है कि मुन्नी देवी और ओम प्रकाश की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि सुलतान की हालत गंभीर हो गई थी, अतः ग्रामवासी उसे अस्पताल ले कर गए । इस साक्षी ने यह प्रकथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम घटना के पश्चात् घटनास्थल से भाग गए थे ।

(iii) मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह प्रकथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल ने इस घटना के लगभग 6 मास पूर्व भी झगड़ा किया था । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल से मात्र यह विवाद चल रहा था कि बृज लाल उसे गालियां देता था । इस साक्षी ने इस सुझाव से इनकार किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल ने कभी उसकी पत्नी के साथ छेड़-

खानी की थी । इस साक्षी ने यह दोहराया है कि उसने अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल के विरुद्ध अपने वरिष्ठ अधिकारियों के समक्ष शिकायत दर्ज कराई थी । उसने यह कथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल ने उसे जान से मारने की पहली बार धमकी तब दी थी जब उसे विवाद निपटाने के लिए पंचायत में बुलाया गया था । मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने यह साक्ष्य दिया है कि उसने ऐसी कोई शिकायत पुलिस में कभी दर्ज नहीं कराई थी । इस साक्षी ने यह स्पष्ट किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम, मोहन राम (अभि. सा. 1) को मोहन लाल (अभि. सा. 15) को घर से बाहर बुलाने के लिए दबाव डाल रहे थे । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि जब अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम, मोहन राम (अभि. सा. 1) से बात कर रहे थे तब उस समय घर में अभियुक्त दिखाई दे रहे थे । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि वह भयभीत हो गया था, अतः वह घर से भाग गया था । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह वहां से इसलिए भागा था कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल यह कह रहा था कि वे उसकी हत्या करेंगे । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वे बद्री राम के मकान में कूद कर वहां से भागा था और इसके पश्चात् वहां से मिल्खा सिंह की चक्की की ओर गया । इस साक्षी ने यह साक्ष्य दिया है कि मिल्खा सिंह ने अपनी चक्की में प्रवेश करने के पश्चात्, दरवाजे बंद कर दिए थे क्योंकि इस साक्षी ने मिल्खा सिंह को यह बताया था कि अभियुक्त उसकी हत्या कर देगा । जबकि मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि मिल्खा सिंह की चक्की में उसे मोहन राम (अभि. सा. 1) के मकान की ओर आते हुए लोगों की आवाजें सुनाई दे रही थीं । इस साक्षी ने यह भी साक्ष्य दिया है कि मोहन राम (अभि. सा. 1) के चिल्लाने की आवाज भी आ रही थी । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि जब उसने ग्रामवासियों की आवाज सुनी तो उसका भय दूर हो गया और उसने साहस से काम लिया जिसके पश्चात् वह स्वयं अर्थात् मोहन लाल (अभि. सा. 15) और मिल्खा सिंह चक्की से बाहर आए । चक्की से बाहर आने पर उसने अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम को सुलतान भट के घर के सामने आटा चक्की से लगभग 30-40-45 फुट की दूरी पर देखा । उसने यह कथन किया है कि वह ओम प्रकाश के निकट खड़ा हुआ था जब ओम प्रकाश को गोली मारी गई थी । उसने यह भी कथन किया है कि सुलतान, मुन्नी देवी और शेरिया राम उनकी जगह से लगभग 5 फुट की दूरी पर खड़े हुए थे । इस साक्षी ने यह

भी कथन किया है कि उसको कोई भी गोली नहीं लगी । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि पहली गोली अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल द्वारा चलाई गई थी और अगली गोली सह-अभियुक्त काशी राम द्वारा चलाई गई थी । इस साक्षी ने यह पुष्टि की है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल की मृतक ओम प्रकाश और मुन्नी देवी से कोई भी शत्रुता नहीं थी । उसने यह कथन किया है कि ओम प्रकाश, मुन्नी देवी और अन्य व्यक्ति केवल घटनास्थल पर उसे बचाने आए थे । अपनी प्रतिपरीक्षा में मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि जब अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम सुलतान भट के घर के सामने खड़े हुए थे, तब मृतक और आहत सुलतान भट के मकान से लगभग 20-25 फुट की दूरी पर खड़े हुए थे । अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और ग्रामवासियों के बीच लगभग 17 से 18 फुट की दूरी थी जबकि सह-अभियुक्त काशी राम और मुन्नी देवी के बीच लगभग 8 से 10 फुट की दूरी थी । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि किसी भी व्यक्ति को अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम को पकड़ना संभव नहीं था क्योंकि सब निहत्थे थे । मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह अभिसाक्ष्य दिया है कि घटनास्थल पर जब गोली चल रही थी तब एकत्र हुए लोगों में 20 से 25 पुरुष, 10 से 15 महिलाएं और कुछ बच्चे थे । इस साक्षी (अभि. सा. 15) ने यह भी प्रकथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल ने मोहन राम (अभि. सा. 1) से कहा कि वह मोहन लाल (अभि. सा. 15) को बाहर भेजे क्योंकि वे उसकी हत्या करना चाहते थे । मोहन राम द्वारा इनकार किए जाने पर मोहन लाल ने यह कथन किया कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल चिल्लाया कि वह उन सबकी हत्या कर देगा जो मोहन लाल (अभि. सा. 15) की सहायता करेंगे । मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने यह भी दोहराया कि किसी भी ग्रामवासी के पास कोई भी हथियार नहीं था । इस सुझाव से इनकार किया गया है कि ग्रामवासियों ने अभियुक्त और सह-अभियुक्त का पीछा किया था । इस सुझाव से भी इनकार किया गया है कि जो व्यक्ति घटनास्थल पर एकत्र हुए थे उनके हाथों में लाठियां थीं और उन्होंने अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम को लाठियों से क्षतियां पहुंचाई थीं ।

(iv) मोहन लाल (अभि. सा. 15) के उपर्युक्त अभिसाक्ष्य से घटना से संबंधित अभियोजन वृत्तांत की पूर्ण रूप से पुष्टि होती है ।

12. अब हम अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए वैयक्तिक अभिवाक् पर विचार करेंगे ।

13. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा प्रथम दलील यह दी गई है कि अपीलार्थी ने ग्रामवासियों की भीड़ पर आत्मरक्षा के लिए उस समय गोली चलाई थी जब अभियुक्त-अपीलार्थी और सह-अभियुक्त पर हमला किया गया था । इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि विद्वान् काउंसेल द्वारा बताई गई प्रकृति में आत्मरक्षा करने के लिए कोई भी अभियुक्त स्वतंत्र है, तब एक स्पष्ट बात सामने आती है जब अभियुक्त आत्मरक्षा करना चाहता है और इस अभिवाक् से यह बात सिद्ध हो जाती है कि यह घटना घटित हुई थी । ऐसी प्रतिरक्षा करने पर एक और उपधारणा की जा सकती है । यह उपधारणा भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 96 से उद्भूत होती है जो निम्न प्रकार है :–

> "96. **उस भाषा के लागू होने के बारे में साक्ष्य जो कई व्यक्तियों में से केवल एक को लागू हो सकती है** – जबकि तथ्य ऐसे हैं कि प्रयुक्त भाषा कई व्यक्तियों या चीजों में से किसी एक को लागू होने के लिए अभिप्रेत हो सकती थी तथा एक से अधिक को लागू होने के लिए अभिप्रेत नहीं हो सकती थी, तब उन तथ्यों का साक्ष्य दिया जा सकेगा जो यह दर्शित करते हैं कि उन व्यक्तियों या चीजों में से किसको लागू होने के लिए वह आशयित थी ।"

इस संबंध में **रिजान** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट किया जा सकता है जिसमें इस न्यायालय में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "13. प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अभिकथित रूप से प्रयोग किए जाने के संबंध में किए गए अभिवाक् पर विचार करना है । दंड संहिता की धारा 96 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि कोई बात अपराध नहीं है, जो प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रयोग में की जाती है । इस धारा के अंतर्गत 'प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार' अभिव्यक्ति को परिभाषित नहीं किया गया है । इससे मात्र यह उपदर्शित होता है कि कोई भी बात अपराध नहीं है जो ऐसे अधिकार के प्रयोग में की जाती है । किन्हीं विशेष परिस्थितियों में किसी

[1] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 976.

व्यक्ति ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग किया था या नहीं प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर तय किए जाने वाला प्रश्न है । ऐसे प्रश्न को तय करने के लिए कोई भी संतृप्त कसौटी अधिकथित नहीं की जा सकती है । तथ्य के इस प्रश्न को विनिश्चित करने के लिए न्यायालय को सभी सुसंगत परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए । अभियुक्त के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह इस का अभिवाक् करने के लिए अत्यधिक शब्दों का प्रयोग करे कि उसने आत्मरक्षा के लिए कृत्य किया था । यदि परिस्थितियों से यह दर्शित होता है कि प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग धर्मज रूप से किया गया था, तब न्यायालय ऐसे अभिवाक् को स्वीकार करने के लिए स्वतंत्र है । इस मामले में यदि अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री से प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार धर्मज प्रतीत होता है तब न्यायालय ऐसे अधिकार को उस स्थिति में भी स्वीकार कर सकता है जब अभियुक्त ने इसके लिए अभिवाक् न भी किया हो । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 105 के अधीन सबूत का भार अभियुक्त पर होता है जो प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करता है और ऐसे सबूत के अभाव में न्यायालय के लिए यह संभव नहीं है कि वह प्राइवेट प्रतिरक्षा के अभिवाक् को सत्य उपधारित करे । न्यायालय ऐसी परिस्थितियों के अभाव की उपधारणा करेगा । अभियुक्त का यह कर्तव्य है कि वह अभिलेख पर या तो स्वयं आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करे या अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा किए गए साक्षियों के साक्ष्य से सकारात्मक साक्ष्य प्रस्तुत करे । प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अभिवाक् करने वाले अभियुक्त से यह अपेक्षित नहीं है कि वह साक्षियों को बुलाए ; वह अभियोजन साक्ष्य से ही उद्भूत परिस्थितियों को निर्दिष्ट करते हुए अपना अभिवाक् सिद्ध कर सकता है । ऐसे मामले में जो प्रश्न उठता है वह अभियोजन साक्ष्य के उचित प्रभाव का निर्धारण किए जाने का प्रश्न है, न कि अभियुक्त द्वारा किसी भार वहन किए जाने का प्रश्न हो । जब प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अभिवाक् किया जाता है, तब प्रतिरक्षा युक्तियुक्त होनी चाहिए और प्राइवेट प्रतिरक्षा का वृत्तांत संभावी होना चाहिए जिससे न्यायालय का यह समाधान हो जाए कि अभियुक्त द्वारा पहुंचाई गई क्षति आवश्यक थी और उस पर किया गया हमला इसी प्रकार रोका जा सकता था या अभियुक्त को जो खतरा महसूस हुआ था उससे बचने के लिए उसके द्वारा किया गया हमला युक्तियुक्त था । प्राइवेट

प्रतिरक्षा के अभिवाक् को सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर होता है और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के आधार पर किए गए अभिवाक् के पक्ष में अधिसंभाव्यता की प्रबलता दर्शित करके सबूत के भार का निर्वहन हो जाता है । [मुंशी राम और अन्य **बनाम** दिल्ली प्रशासन (ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 702) ; गुजरात राज्य **बनाम** बाई फातिमा (ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1478) ; उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** मोहम्मद मुशीर खान (ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 2226) और मोहिन्दर पाल जॉली **बनाम** पंजाब राज्य (ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 577) वाले मामले देखें] दंड संहिता की धारा 100 से 101 के अधीन शरीर की प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार की सीमा परिभाषित की है । यदि किसी व्यक्ति को शरीर की प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार धारा 97 के अधीन प्राप्त है, तब वह अधिकार धारा 100 के अधीन मृत्यु कारित करने तक जा सकता है यदि इस बात का युक्तियुक्त कारण हो कि मृत्यु या घोर उपहति हमला किए जाने के परिणामस्वरूप कारित हो सकती है । सलीम जिया **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 391) वाले मामले में की गई इस न्यायालय की मताभिव्यक्ति निम्न प्रकार है –

> 'यह सत्य है कि प्राइवेट प्रतिरक्षा के अभिवाक् को सिद्ध करने के लिए अभियुक्त पर इतना भार नहीं आता है जितना अभियोजन पक्ष पर आता है और यह भी सत्य है जब अभियोजन पक्ष से अपना पक्षकथन संदेह के परे साबित करने की अपेक्षा की जाती है तब अभियुक्त को अपना अभिवाक् सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती और वह अभियोजन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करके या प्रतिरक्षा में कोई साक्ष्य प्रस्तुत करके केवल अधिसंभाव्यता की प्रबलता सिद्ध कर सकता है और अपने ऊपर पड़ने वाले भार का निर्वहन कर सकता है ।'

अभियुक्त को युक्तियुक्त संदेह के परे प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार की विद्यमानता साबित करने की आवश्यकता नहीं है । उसके लिए यह पर्याप्त है कि वह, जैसाकि सिविल मामले में होता है, यह दर्शित करे कि अधिसंभाव्यता की प्रबलता उसके अभिवाक् के पक्ष में है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

14. वर्तमान मामले में विचार के लिए यह प्रश्न उद्भूत होता है कि

इस मामले में अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य है या नहीं जिससे प्राइवेट प्रतिरक्षा का अभिवाक् सिद्ध हो सके । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने इसका सकारात्मक उत्तर दिया है । उपरोक्त उत्तर का आधार अपीलार्थी को पहुंचीं क्षतियां हैं जो अपीलार्थी के अनुसार भीड़ द्वारा उस समय कारित की गईं थीं जब अपीलार्थी पर हमला किया गया था । यह दलील दी गई है कि घटनास्थल पर एकत्रित हुए पड़ोसियों और ग्रामवासियों ने उन पर हमला किया था जिसके परिणामस्वरूप उन्हें सुलतान भट के मकान में प्रवेश करना पड़ा । यह दलील दी गई है कि उपरोक्त हमले के प्रत्युत्तर में अभियुक्तों को क्षतियां पहुंची थीं अर्थात् अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल तथा सह-अभियुक्त काशी राम ने भीड़ पर गोलियां चलाई थीं जिस पर भीड़ ने उन पर हमला किया ।

15. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर गहराई से विचार करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि अभियोजन पक्ष द्वारा ठोस साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है जिससे यह पुष्टि होती है कि घटनास्थल पर मोहन राम (अभि. सा. 1) के चीख-पुकार करने के परिणामस्वरूप जो भीड़ एकत्र हुई थी, वह निहत्थी थी । अभिलेख पर यह साबित करने के लिए भी साक्ष्य है कि सभी ग्रामवासी केवल अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम से आग्रह कर रहे थे कि वे मोहन लाल (अभि. सा. 15) की हत्या न करें जिसके लिए इन अभियुक्तों ने धमकी दी थी । अभियोजन साक्षियों के परिसाक्ष्य से यह भी साबित होता है कि ग्रामवासियों और सुलतान भट के मकान के बीच पर्याप्त दूरी थी जिसके सामने अभियुक्त खड़े हुए थे । केवल मोहन राम (अभि. सा. 1) ने ही नहीं अपितु मोहन लाल (अभि. सा. 15) ने भी स्पष्ट रूप से यह अभिसाक्ष्य दिया है कि किसी भी पड़ोसी और ग्रामवासी के पास हथियार नहीं थे । इसके अतिरिक्त, साक्षियों ने यह भी दोहराया है कि एकत्र हुई भीड़ में पुरुष, महिलाएं और बच्चे थे, इस बात से पर्याप्त रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि पड़ोसियों और ग्रामवासियों का उद्देश्य अभियुक्त-अपीलार्थी या सह-अभियुक्त को क्षति पहुंचाना नहीं था । इस बात को अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि मृतका मुन्नी देवी एक महिला थी, और 5 वर्ष का बालक अर्थात् शेरिया भी आहत हुआ था । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विशेषकर अपीलार्थी द्वारा इस संबंध में कोई भी सारभूत साक्ष्य प्रस्तुत न किए जाने पर (कि उन्होंने गोलियां आत्मरक्षा के लिए चलाईं थीं), पूर्ण रूप से विचार करने के पश्चात् वर्तमान दलील स्वीकार नहीं की जा सकती ।

16. इस प्रक्रम पर, हमारे लिए यह भी आवश्यक हो जाता है कि हम अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए दोनों निर्णयों को निर्दिष्ट करें । **भगवान स्वरूप** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया गया है और हमारा ध्यान निर्णय के जिस भाग की ओर दिलाया गया है वह निम्न प्रकार है :–

> "9. हम निचले न्यायालयों से सहमत नहीं हैं । अभिलेख पर यह साबित हो गया है कि रामस्वरूप पर शिकायतकर्ता पक्ष द्वारा लाठी से वार किए गए थे और ऐसा होने पर अपने पिता को लाठियों की मार से बचाने के लिए भगवान स्वरूप ने गोली चलाई । लाठी से साधारण तथा घातक क्षति कारित हो सकती है । इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि क्षतियां वास्तव में साधारण थीं या गंभीर । इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि एक पिता पर लाठियों से वार किया जा रहा था और हमारा यह मत है कि ऐसी स्थिति में किसी भी पुत्र को युक्तियुक्त रूप से अपने पिता की जान का भय हो सकता है और उसकी जान बचाने के लिए प्रतिरक्षा में गोली चलाना न्यायोचित होगा । अतः हम इस मुद्दे पर निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को अपास्त करते हैं और यह अभिनिर्धारित करते हैं कि भगवान स्वरूप ने अपने पिता की रक्षा के लिए गोली चलाई थी ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

बूटा सिंह बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामले का भी अवलंब लिया गया है जिसके निम्न भाग की ओर विद्वान् काउंसेल द्वारा हमारा ध्यान दिलाया गया है :–

> "8. उपर्युक्त साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि घटना से संबंधित प्रतिरक्षा वृत्तांत अधिसंभाव्य है और उसकी सम्पुष्टि अपीलार्थी के 'डेरे' के निकट स्थित नलकूप पर रक्त पाए जाने से होती है । जब न्यायालय के समक्ष दो वृत्तांत हों तब उस वृत्तांत को त्यक्त नहीं किया जा सकता जिसका समर्थन उद्देश्यात्मक साक्ष्य से होता है जब तक कि उसे समुचित रूप से स्पष्ट न कर दिया जाए । जैसाकि पहले ही कथन किया गया है, अभियोजन पक्ष ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि नलकूप के निकट रक्त कैसे पाया गया और उस जगह पर कोई भी रक्त नहीं पाया गया जहां पर

---

[1] (1992) 2 एस. सी. सी. 406.

[2] (1991) 2 एस. सी. सी. 612.

साक्षियों के अनुसार घटना घटित हुई थी । इसके अतिरिक्त, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलंब और इस संदेह को ध्यान में रखते हुए कि विलंब अभियोजन पक्षकथन में कूटरचना करने के लिए किया गया था, और विशेष रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को भेजने और अन्य दस्तावेज अस्पताल भेजने के कारण हुआ था, इस बात से यह दर्शित होता है कि अन्वेषण ठीक प्रकार नहीं किया गया है । इन परिस्थितियों में, हमारा यह मत है कि निचले न्यायालयों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण न्यायोचित नहीं हो सकता ।

9. तथापि, राज्य के विद्वान् काउंसेल श्री बहल ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि अपीलार्थी ने अपने प्राइवेट प्रतिरक्षा का अतिक्रमण किया है । हम इस दलील से सहमत नहीं हैं । अपीलार्थी और उसकी पत्नी दोनों पर हमला किया गया था । उन्हें क्षतियां पहुंची थीं । उन पर हमला किए जाने के दौरान उन्होंने मृतक और अभियोजन साक्षियों को क्षतियां पहुंचाई थीं । यह सत्य है कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मृतक को कारित हुई सभी क्षतियां अपीलार्थी बूटा सिंह द्वारा पहुंचाई गई थीं । तथापि, अभियोजन का यह पक्षकथन नहीं है । इसके अतिरिक्त, यदि ऐसा होता, घटना का प्रकृति को दृष्टिगत करते हुए, यह कहना कठिन है कि अपीलार्थी ने प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का अतिक्रमण किया है जिसका स्पष्ट कारण यह है कि अपीलार्थी गंभीर परिस्थितियों में आवेश की तीव्रता का आंकलन सूक्ष्मता से नहीं कर सकता था कि उस पर हमला करने वाले उन व्यक्तियों को रोकने के लिए वह कितने बल का प्रयोग करे जो घातक आयुधों से लैस थे । अतः हमारा यह मत है कि राज्य के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में स्वीकार नहीं की जा सकती ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

17. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए निर्णयों का परिशीलन करने और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि इस न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई विधिक स्थिति के आधार पर अपीलार्थियों को प्रतिरक्षा के अभिवाक् से संबंधित किसी भी लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता । इस मामले में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह उपदर्शित हो कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम पर वास्तव में हमला किया गया था और इस संबंध में भी कोई साक्ष्य नहीं है कि यह एक प्रतिरक्षा का मामला है जिसमें

उन्होंने अपनी पिस्तौलों से भीड़ पर गोली चलाई । हमने ऊपर उल्लिखित मामले के पहलू से संबंधित सुसंगत साक्ष्य का परिशीलन पहले ही कर लिया है । अतः हमें अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई पहली दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता है ।

18. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दूसरी दलील यह दी गई है कि सम्पूर्ण अभियोजन वृत्तांत से यह प्रकट होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल का अभिकथित आशय मोहन लाल (अभि. सा. 15) की हत्या करना था । यह दलील दी गई है कि इस बात का कोई कारण नहीं है कि अपीलार्थी गोली चलाकर तीन अज्ञात व्यक्तियों को घातक क्षति पहुंचाए । विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दूसरी दलील भी आधारहीन है जिसमें हमें कोई सार दिखाई नहीं देता है । पड़ोसियों और ग्रामवासियों का घटनास्थल पर एकत्र होने का कारण मोहन लाल (अभि. सा. 15) को अभियुक्तों के आशयित हमले से बचाना था । ग्रामवासियों के क्रोधित होने के परिणामस्वरूप अभियुक्तों ने भीड़ पर अंधाधुंध गोलियां चलाईं । चूंकि इस पर अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल द्वारा विवाद नहीं किया गया है कि अन्य क्षतियों के साथ घातक क्षतियां अभियुक्त-अपीलार्थी और सह-अभियुक्त द्वारा कारित की गई थीं, इसलिए अपीलार्थी पर उनके कृत्य को न्यायोचित ठहराने के लिए साबित करने का भार पड़ता है । अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्तों ने एकत्र हुई भीड़ से क्रोधित होकर अंधाधुंध गोलियां चलाई थीं क्योंकि वे लोग अपीलार्थियों को मोहन लाल (अभि. सा. 15) को क्षति पहुंचाने से रोक रहे थे । इस बात को स्वीकार करके कि अभियुक्त-अपीलार्थी और सह-अभियुक्त ने पड़ोसियों और ग्रामवासियों पर, जो घटनास्थल पर एकत्र हुए थे, वास्तव में गोलियां चलाई थीं, इस तथ्य को असत्य नहीं कहा जा सकता । उपरोक्त कारणों के आधार पर, हमें इस दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता है ।

19. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा तीसरी दलील यह दी गई है कि बंदूक की बरामदगी, जिससे अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल ने भीड़ पर गोली चलाई थी, के संबंध में यह साबित नहीं किया गया है कि वह अपीलार्थी से ही बरामद की गई थी । विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि बरामदगी से संबंधित साक्षियों में से एक साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि जो बंदूक अभियुक्त के कहने पर बरामद की गई थी वह उस समय कपड़े में लिपटी हुई पाई गई थी जब उसे खोद कर निकाला गया था । बरामदगी से संबंधित अन्य साक्षी ने इससे भिन्न साक्ष्य दिया है ।

जैसाकि इसमें इसके ऊपर देखा गया है, सबसे पहला यह अभिवाक् तब किया जा सकता था जब अपीलार्थी ने इनकार किया होता और उसका यह पक्षकथन होता कि उसने घटना के समय गोली चलाई ही नहीं थी । चूंकि उसने ऐसा अभिवाक् नहीं किया है, इसलिए वर्तमान दलील बिल्कुल भी स्वीकार्य नहीं है । दूसरी बात यह है कि बरामदगी का तथ्य मोहन राम (अभि. सा. 1) और मोहन लाल (अभि. सा. 15) के कथनों से अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किया गया है । यहां तक की अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल के हस्ताक्षर बरामदगी के समय तैयार किए गए मजहर पर प्राप्त किए गए थे । ऐसी स्थिति में इस बात से किसी भी प्रकार से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल के कहने पर बरामद की गई बंदूक खोद कर निकाले जाने के समय पर कपड़े में लिपटी हुई थी या नहीं । ऊपर अभिलिखित कारणों के आधार पर, हमें इस दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता है ।

20. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा चौथी दलील यह दी गई है कि सह-अभियुक्त काशी राम को जिसका विचारण अलग से किया गया था, दोषमुक्त कर दिया गया । इस संबंध में विद्वान् काउंसेल का झुकाव इस ओर था कि अपीलार्थी के अलग से किए गए विचारण में अभियोजन पक्ष द्वारा जिन साक्षियों का अवलंब लिया गया था उन्हीं साक्षियों ने सह-अभियुक्त काशी राम के संबंध में किए गए विचारण के दौरान अभिसाक्ष्य दिया था और इस प्रकार, काशी राम की दोषमुक्ति और अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल की दोषसिद्धि निराधार है । इस मामले में यह उल्लेख करना सुसंगत होगा कि सबसे महत्वपूर्ण अभियोजन साक्षी मोहन लाल (अभि. सा. 15) है । सभी अभिकथन मोहन लाल (अभि. सा. 15) पर केन्द्रित हैं । अभियोजन पक्ष की सम्पूर्ण कहानी इस तथ्य के इर्द-गिर्द घूमती है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम अपनी पुरानी शत्रुता के कारण किसी भी प्रकार से मोहन लाल (अभि. सा. 15) को क्षति पहुंचाना चाहते थे । साक्षी मोहन लाल जो विचारण न्यायालय के समक्ष अभि. सा. 15 के रूप में जिस मामले में पेश हुआ था, उसी मामले से वर्तमान अपील उद्भूत हुई है और उसे बलबीर चन्द्र के पुत्र, जाति मेघवाल, आयु 38 वर्ष निवासी ग्राम घूमन, तहसील नवांशहर, पुलिस थाना बंगा, जिला जालंधर के रूप में दर्शाया गया है । जबकि मोहन लाल जो विचारण न्यायालय में सह-अभियुक्त काशी राम के विचारण के दौरान अभि. सा. 15 के रूप में पेश हुआ था उसे लेखराम भट के पुत्र के रूप में

(1993 के सेशन विचारण मामला सं. 26 में अपर सेशन न्यायाधीश सं. 2, श्रीगंगानगर द्वारा तारीख 18 मार्च, 1994 को पारित किए गए निर्णय में) दर्शाया गया था और इस मामले में काशी राम अभियुक्त था । उपरोक्त निर्णय में अधिकांश अभियोजन साक्षी पक्षद्रोही हो गए थे और वे सह-अभियुक्त काशी राम की शनाख्त इस संबंध में नहीं कर सके थे कि उन्होंने अपराध में भाग लिया था । इस मामले में स्थिति बिल्कुल विपरीत है । सभी सुसंगत अभियोजन साक्षियों ने अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल की सम्यक् रूप से शनाख्त की है । अतः हमारे लिए इस आधार पर यह स्वीकार करना संभव नहीं है कि अलग से चल रहे विचारण मामले में काशी राम को दोषमुक्त किया गया था इसलिए अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल दोषमुक्त किए जाने योग्य है । अतः, तद्नुसार, वर्तमान दलील अस्वीकार की जाती है ।

21. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की ओर से पांचवीं दलील यह दी गई है कि पड़ोसियों और सह-ग्रामवासियों, जो घटनास्थल पर एकत्र हुए थे, के आक्रामक व्यवहार के परिणामस्वरूप अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम को मोहन राम (अभि. सा. 1) के मकान से लगभग 200 फुट दूर पीछे हटा दिया गया । यह दलील दी गई है कि स्वयं उपरोक्त तथ्यात्मक स्थिति यह दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि लोगों का व्यवहार, जो घटनास्थल पर एकत्र हुए थे, अभित्रासी प्रकृति का था । यह भी दलील दी गई है कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और सह-अभियुक्त काशी राम द्वारा मात्र आत्मरक्षा के लिए गोली चलाई गई थी । हमने पहले ही अपीलार्थी की ओर से उठाए गए प्रतिरक्षा के मुद्दे के संबंध में अपना मत व्यक्त किया है । उपर्युक्त दलील पुनः दिए जाने की ईप्सा की गई है और साथ ही यह तथ्य प्रस्तुत किया गया है कि जब बृज लाल और काशी राम द्वारा गोली चलाई गई थी तब वे मोहन राम (अभि. सा. 1) के निवास से 200 फुट से अधिक दूरी पर थे । हमें अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई इस दलील में मुश्किल से ही कोई न्यायौचित्य दिखाई देता है । अभियोजन पक्ष ने स्पष्ट रूप से सशपथ अभिलिखित परिसाक्ष्य के माध्यम से दर्शाया है कि घटनास्थल पर एकत्र हुए व्यक्तियों में कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार से हथियार से लैस नहीं था । यह भी स्पष्ट है कि घटनास्थल पर एकत्र हुई भीड़ में पुरुष, महिलाएं तथा बच्चे थे । यह तथ्य कि अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और ग्रामवासियों के बीच लगभग 17 से 18 फुट की दूरी थी । इससे यह दर्शित होता है कि उसे

वास्तव में कोई खतरा नहीं था जब उसने निहत्थे व्यक्तियों जिनमें महिलाएं और बच्चे भी थे, पर गोली चलाई । यह केवल भीड़ से बदला लेने की भावना से किया गया था जिसके परिणामस्वरूप भीड़ मोहन लाल (अभि. सा. 15) को बचाने के लिए एकत्र हुई थी और अपीलार्थी द्वारा अंधाधुंध गोली चलाया जाना समाधानप्रद कारण नहीं हो सकता । अतः हमारे लिए अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई पांचवीं दलील को भी स्वीकार करना संभव नहीं है ।

22. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अंतिम दलील यह दी गई है कि मोहन लाल (अभि. सा. 15) भी भीड़ में मौजूद था जिसका सामना अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल और काशी राम कर रहे थे, और इस प्रकार अभियुक्त को भीड़ के अन्य सदस्यों के बजाए उस पर गोली चलानी चाहिए थी । वर्तमान दलील पूर्णतया सारहीन है और बिल्कुल चलने योग्य नहीं है । अभियुक्त-अपीलार्थी ने अभियोजन साक्षियों के समक्ष उपरोक्त सुझाव उस समय नहीं रखा है जब उसकी ओर से इन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा की जा रही थी । इसके अतिरिक्त, वास्तव में यह सुझाव दिया गया था कि अभियुक्त किराने की दुकान से बीड़ी खरीदने के लिए आए थे और वे घटनास्थल पर कभी नहीं गए और न ही मोहन लाल (अभि. सा. 15) को क्षति पहुंचाने का उनका कोई आशय था । अपीलार्थी की विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई प्रथम, द्वितीय और पांचवीं दलील के उत्तर में हमारे द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए, हमें वर्तमान दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता है और यह दलील भी एतद्द्वारा खारिज की जाती है ।

23. हम, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा प्रस्तुत किए गए निर्णय अर्थात् **सुनील कुमार शंभु दयाल गुप्ता** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले को निष्पक्ष रूप से निम्न प्रकार निर्दिष्ट कर रहे हैं :–

> 38. यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है जिसे इस न्यायालय द्वारा निरन्तर रूप से दोहराया गया है और अनुसरण किया गया है कि दोषमुक्ति के निर्णयों पर विचार करते समय अपील न्यायालय को अभिलेख पर प्रस्तुत सम्पूर्ण साक्ष्य पर विचार करना चाहिए ताकि इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत अनुचित या न चलने योग्य है । अपील न्यायालय इस पर विचार करने का हकदार है कि तथ्यों के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए

[1] (2010) 13 एस. सी. सी. 657.

विचारण न्यायालय ने सबूत का भार अनुचित रूप से रखा है या नहीं या वह किसी भी ग्राह्य साक्ष्य पर विचार करने में असफल रहा है या नहीं और/या उसने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य पर विधि के प्रतिकूल विचार किया है या नहीं ; अपील न्यायालय को दोषमुक्ति के ऐसे मामले में जहां दो मत दिए जाने संभव हो, दोषमुक्ति के निर्णय को सामान्य रूप से अपास्त नहीं करना चाहिए चाहे अपील न्यायालय का मत विचारण न्यायालय के मत से अधिक संभावी क्यों न हो । विचारण न्यायालय, जिसको साक्षियों के हाव-भाव देखने का अवसर प्राप्त होता है, वह साक्षियों की विश्वसनीयता का पता लगाने के लिए एक उत्तम न्यायाधीश होता है ।

39. यह उपधारणा की जाती है कि जब तक अभियुक्त का दोष साबित न कर दिया जाए तब तक वह निर्दोष होता है । कानूनी अपवादों के अध्यधीन उक्त सिद्धांत भारत में दांडिक न्यायशास्त्र का आधार है । अपराध की प्रकृति, उसकी गंभीरता और उग्रता पर विचार किया जाना चाहिए । अपील न्यायालय को अभियुक्त के निर्दोष होने की उपधारणा ध्यान में रखनी चाहिए और इसके अतिरिक्त विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषमुक्ति अभियुक्त की निर्दोषिता की उपधारणा को और प्रबलित कर देती है । विचारण न्यायालय के विनिश्चय में औपचारिक या सामान्य रीति में हस्तक्षेप ऐसी स्थिति में नहीं करना चाहिए जब अन्य मत भी संभव हो और हस्तक्षेप केवल तब किया जा सकता है जब उसके लिए ठोस कारण उपलब्ध हों ।

40. ऐसे आपवादिक मामलों में जिनमें आबद्धकारी परिस्थितियां हों और अपीलाधीन निर्णय अनुचित पाया जाए, तब अपील न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है । न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित अभिनिर्धारित किए जा सकते हैं यदि वे निष्कर्ष सुसंगत सामग्री को अनदेखा करते हुए या उसका अपवर्जन करते हुए या असंगत/अग्राह्य सामग्री पर विचार करते हुए निकाला गया है । न्यायालय के निष्कर्ष को अनुचित कहा जा सकता है यदि वह निष्कर्ष साक्ष्य के महत्व के प्रतिकूल हो या ऐसे निष्कर्ष से तर्कणा का अतिलंघन होता हो या वह निष्कर्ष बुद्धिशून्यता से ग्रसित हो । [बालकराम **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (1975) 3 एस. सी. सी. 219, शेलेन्द्र प्रताप **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (2003) 1 एस. सी. सी. 761, बुद्ध सिंह **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (2006) 9 एस. सी. सी. 731, एस.

रामकृष्ण **बनाम** एस. रामी रेड्डी (2008) 5 एस. सी. सी. 535, अरुलवेलू **बनाम** राज्य (2009) 10 एस. सी. सी. 206, राम सिंह **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य (2010) 2 एस. सी. सी. 445 और बाबू **बनाम** केरल राज्य (2010) 9 एस .सी. सी. 189 वाले मामले देखिए]

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

24. हमने उपरोक्त निर्णय में अधिकथित मानदंडों पर सूक्ष्मता से विचार किया है । तथापि, हमारी यह सुविचारित राय है कि उच्च न्यायालय ने अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त करने में तर्कसम्मत साक्ष्य का अवलंब लिया है । यह अभिलिखित करने में हमारा समाधान हो गया है कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष की ओर से अभिलिखित महत्वपूर्ण साक्ष्य, विशेषकर अभियोजन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा के दौरान उद्भूत साक्ष्य, को अनदेखा किया है जिसके आधार पर तथ्यों को दूसरे दृष्टिकोण से देखने का प्रश्न उठता ही नहीं है । हमारा यह सुविचारित मत है कि अभियोजन साक्षियों अर्थात् मोहन राम (अभि. सा. 1) और मोहन लाल (अभि. सा. 15) तथा अन्य साक्षियों के परिसाक्ष्यों से स्पष्ट रूप से केवल यही निष्कर्ष निकलता है कि जहां तक ओम प्रकाश और सुलतान भट की हत्या किए जाने का संबंध है, अभियुक्त-अपीलार्थी बृज लाल दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध कारित करने का दोषी है ।

25. ऊपर अभिलिखित कारणों के आधार पर, हमें इस अपील में कोई सार दिखाई नहीं देता है, तद्नुसार यह खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

[2017] 3 उम. नि. प. 48

लुडोविको सगराडो गोविया

बनाम

सिरिला रोसा मारिया पिंटो और अन्य

6 सितंबर, 2016

न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति रोहिंटन फाली नरीमन

बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 2002 (2002 का 39) – धारा 126 [सपठित निरसित बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 1984 की धारा 85 तथा माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996] – निरसन और व्यावृत्ति – निरसित अधिनियम, 1984 के अधीन वसूली कार्यवाहियां आरंभ किया जाना – नया अधिनियम, 19 अगस्त, 2002 को प्रवर्तन में आना – उच्च न्यायालय द्वारा 5 अक्तूबर, 2002 के अधिनिर्णय को नए अधिनियम के अनुसार निष्पादित किए जाने के आधार पर अपास्त किया जाना – 1984 के निरसित अधिनियम के अधीन प्रारंभ हुई कार्यवाहियां 2002 के अधिनियम द्वारा इसका निरसन किए जाने के बावजूद पुराने अधिनियम के अधीन ही अबाधित जारी रहेंगी, अतः उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है ।

प्रत्यर्थी सं. 3 ने गोवा राज्य सहकारी बैंक लिमिटेड से एक बंगले के निर्माण के लिए 40 लाख रुपए का उधार लिया गया था जिसे बंधक विलेख द्वारा प्रत्याभूत किया गया था । मूल उधारकर्ता उधार की किस्तों का प्रतिसंदाय करने में असफल रहा । बैंक द्वारा मूल उधारकर्ता और उधार के प्रतिभुओं के विरुद्ध बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 1984 के अधीन वसूली कार्यवाहियां की । सहायक रजिस्ट्रार, सहकारी सोसाइटी ने अपने अधिनिर्णय द्वारा यह पाया कि विरोधकर्ता समन तामील होने के बावजूद गैर-हाजिर रहे हैं, परिणामस्वरूप एकपक्षीय अधिनिर्णय पारित किया गया । बैंक द्वारा मूल रकम ब्याज सहित संदाय करने के लिए एक मांग सूचना जारी की गई । उक्त सूचना के बावजूद व्यतिक्रमी बैंक के शोध्यों की किसी भी रकम का संदाय करने में असफल रहे । उसके पश्चात् उक्त अधिनिर्णय को निष्पादन के लिए विक्रय और वसूली अधिकारी को निर्दिष्ट किया । नीलामी द्वारा बंधक संपत्ति का विक्रय न होने के कारण मुहरबंद

निविदा द्वारा संपत्ति का विक्रय करने का विनिश्चय किया गया । अपीलार्थी की निविदा द्वारा संपत्ति का विक्रय करने का विनिश्चय किया गया । अपीलार्थी की निविदा बोली सबसे ऊंची पाए जाने पर उसके पक्ष में विक्रय प्रमाणपत्र जारी किया गया । प्रत्यर्थी सं. 34 ने अधिनिर्णय तथा अपीलार्थी के पक्ष में जारी किए गए विक्रय प्रमाणपत्र को अभिखंडित करने के लिए बम्बई उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते हुए नीलामी-कार्यवाहियां अपास्त कर दी कि अधिनिर्णय केवल नए अधिनियम, 2002 के अनुसार निष्पादित किया जाना चाहिए था । अपीलार्थी ने व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 2002 जो बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 1984 को प्रतिस्थापित करता है, की स्कीम में थोड़ा-सा अन्तर है । अधिनियम, 2002 की धारा 84 अधिनियम, 1984 की धारा 74 और 76 के समरूप है । वे विवाद, जो माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किए गए हैं, अब केन्द्रीय रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त किए गए मध्यस्थ द्वारा निपटाए और विनिश्चित किए जाएंगे, इसलिए ऐसे माध्यस्थम् पर माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के उपबंध ऐसी रीति में लागू होंगे मानो माध्यस्थम् के लिए कार्यवाहियां उक्त अधिनियम के उपबंधों के अधीन समझौते या विनिश्चय के लिए निर्दिष्ट की गई हैं । इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि नए अधिनियम की धारा 84(4) और (5) में एक भिन्न स्कीम उपबंधित है । समान रूप से, धारा 94, जिसमें अधिनियम, 2002 के अधीन किए गए कतिपय विनिश्चयों और आदेशों के निष्पादन के लिए उपबंध किया गया है, में विभिन्न धाराओं का उल्लेख किया गया है, किंतु धारा 84 मौजूद न होते हुए भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है । स्पष्ट रूप से, इसका कारण यह है कि अब समस्त कार्यवाहियां अधिनियम, 1996 के अधीन संचालित की जाएंगी और इसमें उक्त अधिनियम के अधीन किए गए माध्यस्थम् अधिनिर्णय भी सम्मिलित हैं । उच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या पुराने अधिनियम के अधीन आरंभ की गई कार्यवाहियां उक्त अधिनियम के अधीन ही जारी रहेंगी या नहीं । इसके लिए धारा 126(6) पर विचार करना महत्वपूर्ण है, जिस पर उच्च न्यायालय द्वारा कतई विचार नहीं किया गया है । इस धारा के द्वारा, अधिनियम, 2002 के प्रारंभ के समय किसी प्राधिकारी के समक्ष लंबित

कोई विधिक कार्यवाही उस प्राधिकारी के समक्ष ऐसे जारी रहेगी मानो यह अधिनियम पारित ही न हुआ हो । इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि अधिनियम, 1984 की धारा 85(ग) के अधीन आरंभ की गई और तारीख 19 अगस्त, 2002 से पूर्व उक्त अधिनियम के अधीन लंबित निष्पादन की कार्यवाही अधिनियम, 2002 द्वारा अधिनियम, 1984 का निरसन होने पर भी अबाधित जारी रहेंगी । ऐसी स्थिति होने पर, यह स्पष्ट है कि अपीलाधीन निर्णय गलत है और अपास्त करना होगा । (पैरा 12, 13, 14 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1987]	(1987) 3 एस. सी. सी. 99 : **बिनोद मिल्स कंपनी लिमिटेड, उज्जैन (मध्य प्रदेश)** बनाम **सुरेश चन्द्र महावीर प्रसाद मंत्री, बम्बई** ;	17
[1946]	ए. आई. आर. 1946 एफ. सी. 16 : **गवर्नर-जनरल इन कौंसिल** बनाम **शिरोमणि शुगर मिल्स लि.** ।	15

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील सं. 8756.

2007 की रिट याचिका सं. 325 में बम्बई उच्च न्यायालय, गोवा, न्यायपीठ के तारीख 23 दिसंबर, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	श्री यशराज सिंह, (सुश्री) प्रियदर्शनी सिंह और (सुश्री) अस्मिता सिंह
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री अरविंद कुमार शर्मा, देव प्रकाश भारद्वाज, (सुश्री) बीनू टमटा और धूर्व टमटा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रोहिंटन फाली नरीमन ने दिया ।

न्या. नरीमन – यह अपील सहायक रजिस्ट्रार, सहकारी सोसाइटी द्वारा बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 1984 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम 1984" कहा गया है) की धारा 76 के अधीन तारीख 5 अक्तूबर, 2010 को पारित आदेश के निष्पादन के लिए आयोजित नीलामी में सफल क्रेता द्वारा फाइल की गई है । इस अपील के तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित हैं ।

2. उच्च न्यायालय में प्रत्यर्थी सं. 3 ने मैसर्स गाबले बिल्डर्स के स्वत्वधारी के रूप में गोवा राज्य सहकारी बैंक लिमिटेड की मापुसा शाखा से 40 लाख रुपए का उधार अभिप्राप्त किया था । उक्त उधार 8,000/- रुपए वर्गमीटर माप की अनुसूचित संपत्ति के पश्चिम भाग को बंधक करते हुए तारीख 2 दिसंबर, 1997 को निष्पादित एक बंधक-विलेख द्वारा प्रत्याभूत किया गया था । मूल उधारकर्ता उधार की किस्तों का प्रतिसंदाय करने में असफल रहा । ऐसा होने पर बैंक द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 और उक्त उधार के दो प्रतिभुओं के विरुद्ध उक्त अधिनियम की धारा 74 और 76 के अधीन वसूली कार्यवाहियां आरंभ की गईं । सहायक रजिस्ट्रार, सहकारी सोसाइटी ने तारीख 5 अक्तूबर, 2007 के अधिनिर्णय द्वारा यह पाया कि पावती सहित पंजीकृत डाक द्वारा सम्यक् रूप से समन तामील होने के बावजूद सभी तीनों विरोधकर्ता गैर-हाजिर रहे । परिणामस्वरूप, सभी तीनों विरोधकर्ताओं को 55,04,583/- रुपए के बकाया उधार का संदाय करने के लिए संयुक्त रूप से अलग-अलग दायी ठहराते हुए एकपक्षीय अधिनिर्णय पारित किया गया । यह उल्लेखनीय है कि तारीख 2 दिसंबर, 1997 के उक्त बंधक-विलेख के अधीन 21 प्रतिशत चक्रवृद्धि ब्याज संदेय था ।

3. इसके पश्चात् बैंक द्वारा तारीख 12 जून, 2001 को बहुराज्य सहकारी सोसाइटी नियम, 1985 के नियम 22 के अधीन उक्त सभी तीनों व्यक्तियों के विरुद्ध 60,59,646/- रुपए की मूल रकम का संदाय तारीख 1 अप्रैल, 2001 से संदाय की तारीख तक 19 प्रतिशत अतिरिक्त ब्याज के साथ करने के लिए एक मांग सूचना जारी की गई ।

4. उक्त सूचना प्राप्त करने के बावजूद, व्यतिक्रमी बैंक शोध्यों की किसी भी रकम का संदाय करने में असफल रहे और इसके पश्चात् बैंक ने उक्त अधिनिर्णय को निष्पादन के लिए विक्रय और वसूली अधिकारी, क्षेत्रीय कार्यालय, बेरम, गोवा को निर्दिष्ट किया । उक्त वसूली अधिकारी ने बंधक संपत्ति का लोक नीलामी द्वारा विक्रय करने के लिए तारीख 2 जनवरी, 2002 की एक सूचना प्रकाशित करके एक उद्घोषणा सूचना जारी की, जो तारीख 5 जनवरी, 2002 के दैनिक हेराल्ड में सम्यक् रूप से प्रकाशित हुई । उक्त सूचना के उत्तर में कोई भी व्यक्ति आगे नहीं आया । जनवरी, 2002 और फरवरी, 2002 के बीच कई उद्घोषणा सूचनाएं – कुल मिलाकर छह उक्त बंधक संपत्ति का विक्रय करने के लिए जारी की गईं, किंतु उक्त संपत्ति को क्रय करने के लिए कोई बोलीदाता आगे नहीं

आया । इसके पश्चात् बैंक ने मुहरबंद निविदा द्वारा संपत्ति विक्रय करने की रीति अपनाकर उक्त बंधक संपत्ति का विक्रय करने का विनिश्चय किया । तद्नुसार, विक्रय और वसूली अधिकारी ने मुहरबंद निविदाएं आमंत्रित करते हुए तारीख 18 मार्च, 2007 को एक निविदा सूचना जारी की । उक्त सूचना एक स्थानीय समाचारपत्र "द तरुण भगत" में भी उसी तारीख को प्रकाशित हुई । उक्त निविदा सूचना के अनुसार, जनता से मुहरबंद निविदा तारीख 23 मार्च, 2007 या इससे पूर्व आमंत्रित की गई थी ।

5. मुहरबंद निविदाएं तारीख 20 मार्च, 2007 को प्राप्त हुईं । इस अपील में अपीलार्थी से प्राप्त 86,00,000/- रुपए की बोली सबसे ऊंची पाई गई और तद्नुसार तारीख 23 अप्रैल, 2007 को अपीलार्थी के पक्ष में विक्रय प्रमाणपत्र जारी किया गया, चूंकि अपीलार्थी ने बोली की संपूर्ण 86,00,000/- रुपए की रकम संदत्त कर दी थी ।

6. बहुराज्य सहकारी सोसाइटी नियम, 2002 के नियम 37(13), जिसके द्वारा व्यतिक्रमी/उधार लेने वाला विक्रय की पुष्टि के 30 दिन के भीतर बकाया उधार की संपूर्ण रकम, ब्याज सहित और कुर्की तथा विक्रय पर हुए डिक्री-धारी के खर्चों के साथ-साथ नीलाम-क्रेता को संदत्त की जाने वाली 5 प्रतिशत रकम के साथ प्राधिकारियों के पास समावेदन कर सकता है और यदि ऐसा किया जाता है तो उक्त विक्रय अपास्त किया जा सकता है, का उपभोग किए बिना चूंकि उधार लेने वाले ने उसके द्वारा उधार लिए गए धन का किसी प्रक्रम पर प्रतिसंदाय नहीं किया और उसने अधिनिर्णय तथा अपीलार्थी के पक्ष में दिए गए विक्रय प्रमाणपत्र, दोनों को, अभिखंडित करने के लिए बम्बई उच्च न्यायालय, गोवा के समक्ष तारीख 21 जून, 2007 को 2007 की रिट याचिका सं. 325 फाइल की ।

7. उच्च न्यायालय ने तारीख 23 दिसंबर, 2013 के आक्षेपित निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 1984 को बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 2002 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम 2002" कहा गया है) द्वारा निरसित किया गया था और यह अधिनियम तारीख 19 अगस्त, 2002 को प्रवृत्त हुआ । उच्च न्यायालय के अनुसार, नए अधिनियम में सहायक रजिस्ट्रार द्वारा पारित अधिनिर्णय को माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम 1996" कहा गया है) के अधीन निष्पादनीय है और ऐसी स्थिति होने पर उच्च न्यायालय द्वारा नीलामी-कार्यवाहियां यह मत व्यक्त करते हुए

अपास्त कर दी गई कि तारीख 5 अक्तूबर, 2002 का अधिनिर्णय केवल अधिनियम, 1996 द्वारा उपबंधित रीति में निष्पादित किया जाना चाहिए था । इस अपील में इस निर्णय की शुद्धता की जांच की जानी है ।

8. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अधिनियम, 1984 और अधिनियम, 2002 दोनों के सुसंगत उपबंधों को प्रस्तुत किया और विशिष्ट रूप से अधिनियम, 2002 की धारा 126 का यह दलील लेने के लिए अवलंब लिया कि सभी विधिक कार्यवाहियां, जो अधिनियम, 1984 के अधीन आरंभ की गई थीं, वे उसी अधिनियम के अधीन जारी रहेंगी । ऐसी स्थिति होने पर, यह स्पष्ट है कि क्योंकि निष्पादन कार्यवाहियां 19 अगस्त, 2002 जो अधिनियम, 2002 के प्रवृत्त होने की तारीख है, से पूर्व आरंभ की गई थी, इसलिए उक्त कार्यवाहियां अधिनियम, 1984 का अधिनियम, 2002 द्वारा निरसन होने के बावजूद बची रहेंगी ।

9. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि अधिनियम, 2002 के अधीन केवल अधिनियम, 1996 लागू होगा और इसलिए उच्च न्यायालय का निर्णय सही है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि यदि आक्षेपित निर्णय अपास्त भी किया जाए, तो भी अन्य मुद्दे रिट याचिका में बहस किए जाने के लिए बचे रहें, जिससे कि इसके पश्चात् मामला इन अन्य मुद्दों पर आगे विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जा सके ।

10. हमने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना । हमारे समक्ष दी गई दलीलों पर विचार करने से पूर्व कुछ सुसंगत कानूनी उपबंधों को उपवर्णित करना महत्वपूर्ण होगा :–

> "74. (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, यदि कोई विवाद (किसी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी द्वारा वेतन पाने वाले अपने कर्मचारी के विरुद्ध की गई अनुशासनिक कार्रवाई की बाबत किसी विवाद से या औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14) की धारा 2 के खण्ड (ट) में परिभाषित किसी औद्योगिक विवाद से भिन्न) किसी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के गठन, प्रबन्ध या कारबार के संबंध में –
>
> (क) सदस्यों, भूतपूर्व सदस्यों और सदस्यों, भूतपूर्व सदस्यों और मूल सदस्यों की मार्फत दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच, या

(ख) किसी सदस्य, भूतपूर्व सदस्य अथवा किसी सदस्य, भूतपूर्व सदस्य या मूल सदस्य की मार्फत दावा करने वाला व्यक्ति और बहुराज्य सहकारी सोसाइटी, उसके बोर्ड या बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के किसी अधिकारी, अभिकर्ता या कर्मचारी अथवा भूतपूर्व या वर्तमान समापक के बीच, या

(ग) बहुराज्य सहकारी सोसाइटी या उसके बोर्ड और बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के किसी भूतपूर्व बोर्ड, किसी अधिकारी, अभिकर्ता या कर्मचारी या किसी भूतपूर्व अधिकारी, भूतपूर्व अभिकर्ता या भूतपूर्व कर्मचारी या किसी मृत अधिकारी, मृत अभिकर्ता या मृत कर्मचारी के वारिस या विधि प्रतिनिधि के बीच, या

(घ) बहुराज्य सहकारी सोसाइटी और किसी अन्य बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के बीच, किसी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी और दूसरी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के समापक के बीच अथवा एक बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के समापक और दूसरी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के समापक के बीच, उद्‌भूत होता है, तो ऐसे विवाद को विनिश्चय के लिए केन्द्रीय रजिस्ट्रार को निर्दिष्ट किया जाएगा और किसी न्यायालय को ऐसे विवाद की बाबत किसी वाद या अन्य कार्यवाही को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं होगी :

परन्तु ऐसे सभी विवाद, जिनमें कोई राष्ट्रीय सहकारी सोसाइटी एक पक्षकार है, केन्द्रीय रजिस्ट्रार या केन्द्रीय रजिस्ट्रार की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत किसी अधिकारी को निर्दिष्ट किए जाएंगे ।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए, निम्नलिखित विवादों को किसी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के गठन, प्रबन्ध या कारबार से संबंधित विवाद समझा जाएगा, अर्थात् –

(क) बहुराज्य सहकारी सोसाइटी द्वारा, किसी सदस्य या मृत सदस्य के नामनिर्देशिती, वारिस या विधिक प्रतिनिधि से किसी ऐसे शोध्य ऋण या मांग के लिए कोई दावा, चाहे ऐसा ऋण या ऐसी मांग स्वीकार की गई हो या नहीं ;

(ख) किसी प्रतिभूति द्वारा मूल ऋणी के विरुद्ध कोई दावा,

जहां बहुराज्य सहकारी सोसाइटी ने प्रतिभू से मूल ऋण के व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप मूल ऋणी से उसे शोध्य किसी ऋण या मांग के संबंध में कोई रकम वसूल कर ली है, चाहे ऐसा ऋण या ऐसी मांग स्वीकार की गई हो या नहीं ;

(3) यदि कोई प्रश्न उठता है कि इस धारा के अधीन केन्द्रीय रजिस्ट्रार को निर्दिष्ट कोई विवाद किसी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के गठन, प्रबन्ध या कारबार से संबंधित विवाद है या नहीं, तो उस प्रश्न पर केन्द्रीय रजिस्ट्रार का विनिश्चय अंतिम होगा और किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जाएगा ।

76. **विवादों का निपटारा** – (1) केन्द्रीय रजिस्ट्रार धारा 74 के अधीन विवाद का निर्देश प्राप्त होने पर –

(क) स्वयं विवाद का विनिश्चय करेगा, या

(ख) विवाद को किसी ऐसे अन्य व्यक्ति को निपटारा करने के लिए अंतरित करेगा, जिसे केन्द्रीय सरकार द्वारा निमित्त शक्तियां निहित की गई हैं ।

(2) केन्द्रीय रजिस्ट्रार उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन अंतरित किसी निर्देश को व्यपहृत कर सकेगा और स्वयं इसका विनिश्चय कर सकेगा या किसी ऐसे अन्य व्यक्ति को इसका विनिश्चय करने के लिए निर्दिष्ट कर सकेगा, जिसमें केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त शक्तियां निहित की गई हैं ।

(3) केन्द्रीय रजिस्ट्रार या कोई अन्य व्यक्ति जिसे इस धारा के अधीन विवाद विनिश्चय के लिए निर्दिष्ट किया जाता है, विवाद का विनिश्चय लंबित रहते हुए, ऐसे अंतर्वर्ती आदेश कर सकेगा, जो वह न्याय के हित में आवश्यक समझे ।

85. **विनिश्चयों, आदि का निष्पादन** – धारा 30, धारा 31, धारा 73, धारा 76, धारा 90, 92 या धारा 93 के अधीन किया गया प्रत्येक विनिश्चय या आदेश, यदि क्रियान्वित न किया गया हो तो,–

(क) केन्द्रीय रजिस्ट्रार या इस निमित्त उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा, हस्ताक्षरित प्रमाणपत्र पर सिविल न्यायालय की डिक्री समझा जाएगा और उसी रीति से निष्पादित

किया जाएगा मानो वह ऐसे न्यायालय की डिक्री है ; या

(ख) जहां विनिश्चय या आदेश में धन की वसूली के लिए उपबंध है, वहां वह भू-राजस्व की बकाया की वसूली के लिए तत्समय प्रवृत्त विधि के अनुसार, निष्पादित किया जाएगा :

परंतु किसी राशि की वसूली के लिए कोई आवेदन ऐसी रीति में –

(i) कलक्टर को किया जाएगा और उसके साथ केन्द्रीय रजिस्ट्रार या इस निमित्त लिखित रूप में उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित प्रमाणपत्र होगा ;

(ii) उस तारीख से जो उस विनिश्चय या आदेश में नियत की गई हो और यदि ऐसी कोई तारीख नियत नहीं की गई है तो, यथास्थिति, उस विनिश्चय या आदेश की तारीख से बारह वर्ष के भीतर किया जाएगा ; या

(ग) केन्द्रीय रजिस्ट्रार द्वारा अथवा इस निमित्त उसके द्वारा लिखित रूप से प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा उस व्यक्ति की या उस बहुराज्य सहकारी सोसाइटी की जिसके विरुद्ध विनिश्चय या आदेश किया गया है, किसी संपत्ति की कुर्की और विक्रय द्वारा या कुर्की के बिना विक्रय द्वारा, निष्पादित किया जाएगा ।

बहुराज्य सहकारी सोसायटी अधिनियम, 2002

84. **विवादों का निर्देश** – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, यदि कोई विवाद (किसी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी द्वारा वेतन पाने वाले अपने कर्मचारी के विरुद्ध की गई अनुशासनिक कार्रवाई की बाबत किसी विवाद से या औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14) की धारा 2 के खण्ड (ट) में परिभाषित किसी औद्योगिक विवाद से भिन्न) किसी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के गठन, प्रबन्ध या कारबार के संबंध में –

(क) सदस्यों, भूतपूर्व सदस्यों और सदस्यों, भूतपूर्व सदस्यों और मृत सदस्यों की मार्फत दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच, या

(ख) किसी सदस्य, भूतपूर्व सदस्य अथवा किसी सदस्य, भूतपूर्व सदस्य या मृत सदस्य की मार्फत दावा करने वाला

व्यक्ति और बहुराज्य सहकारी सोसाइटी, उसके बोर्ड या बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के किसी अधिकारी, अभिकर्ता या कर्मचारी अथवा भूतपूर्व या वर्तमान समापक के बीच, या

(ग) बहुराज्य सहकारी सोसाइटी या उसके बोर्ड और बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के किसी भूतपूर्व बोर्ड, किसी अधिकारी, अभिकर्ता या कर्मचारी या किसी भूतपूर्व अधिकारी, भूतपूर्व अभिकर्ता या भूतपूर्व कर्मचारी या किसी मृत अधिकारी, मृत अभिकर्ता या मृत कर्मचारी के वारिस या विधिक प्रतिनिधि के बीच, या

(घ) बहुराज्य सहकारी सोसाइटी और किसी अन्य बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के बीच, किसी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी और दूसरी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के समापक के बीच अथवा एक बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के समापक और दूसरी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के समापक के बीच,

उद्‌भूत होता है, तो ऐसे विवाद को मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए, निम्नलिखित विवादों को किसी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के गठन, प्रबन्ध या कारबार से संबंधित विवाद समझा जाएगा, अर्थात् –

(क) बहुराज्य सहकारी सोसाइटी द्वारा किसी सदस्य या मूल सदस्य के नामनिर्देशिती, वारिस या विधिक प्रतिनिधि से किसी ऐसे शोध्य ऋण या मांग के लिए कोई दावा, चाहे ऐसा ऋण या ऐसी मांग स्वीकार की गई हो या नहीं ;

(ख) किसी प्रतिभूति द्वारा मूल ऋणी के विरुद्ध कोई दावा, जहां बहुराज्य सहकारी सोसाइटी ने प्रतिभू से मूल ऋणी के व्यतिक्रम के परिणामस्वरूप मूल ऋणी से उसे शोध्य किसी ऋण या मांग के संबंध में कोई रकम वसूल कर ली है, चाहे ऐसा ऋण या ऐसी मांग स्वीकार की गई हो या नहीं ;

(3) यदि कोई प्रश्न उठता है कि इस धारा के अधीन मध्यस्थ को निर्दिष्ट कोई विवाद किसी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के गठन, प्रबन्ध या कारबार से संबंधित विवाद है या नहीं, तो उस प्रश्न पर

मध्यस्थ का विनिश्चय अंतिम होगा और किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जाएगा ।

(4) जहां उपधारा (1) के अधीन कोई विवाद माध्यस्थम् को निर्दिष्ट किया गया है, जहां उसे केन्द्रीय रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले मध्यस्थ द्वारा निपटाया जाएगा या विनिश्चित किया जाएगा ।

(5) इस अधिनियम के अधीन जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के उपबंध इस अधिनियम के अधीन सभी माध्यस्थम् को इस प्रकार लागू होंगे मानो माध्यस्थम् के लिए कार्यवाहियां माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के उपबंधों के अधीन समझौते या विनिश्चय के लिए निर्दिष्ट की गई हैं ।

94. **विनिश्चयों, आदि का निष्पादन** – धारा 39 या धारा 40 या धारा 83 या धारा 99 या धारा 101 के अधीन किया गया प्रत्येक विनिश्चय या आदेश, यदि क्रियान्वित न किया गया हो तो, –

(क) केन्द्रीय रजिस्ट्रार या इस निमित्त उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा, हस्ताक्षरित प्रमाणपत्र पर सिविल न्यायालय की डिक्री समझा जाएगा और उसी रीति से निष्पादित किया जाएगा मानो वह ऐसे न्यायालय की डिक्री है और ऐसी डिक्री का केन्द्रीय रजिस्ट्रार या उसके द्वारा लिखित में इस निमित्त प्राधिकृत किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा बहुराज्य सहकारी सोसाइटी की, जिसके विरुद्ध विनिश्चय या आदेश किया गया है, किसी संपत्ति की कुर्की और विक्रय द्वारा या किसी कुर्की के विक्रय द्वारा निष्पादन किया जा सकेगा ; या

(ख) जहां विनिश्चय या आदेश में धन की वसूली के लिए उपबंध है, वहां वह भू-राजस्व की बकाया की वसूली के लिए तत्समय प्रवृत्त विधि के अनुसार, निष्पादित किया जाएगा ;

परंतु किसी राशि की वसूली के लिए कोई आवेदन ऐसी रीति में–

(i) कलक्टर को किया जाएगा और उसके साथ केन्द्रीय रजिस्ट्रार या प्राधिकरण द्वारा या इस निमित्त लिखित रूप में उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित प्रमाणपत्र होगा ;

(ii) उस तारीख से जो उस विनिश्चय या आदेश में नियत की गई हो, और यदि ऐसी कोई तारीख नियत नहीं की गई है तो, यथास्थिति, उस विनिश्चय या आदेश की तारीख से बारह वर्ष के भीतर किया जाएगा ; या

(ग) केन्द्रीय रजिस्ट्रार द्वारा अथवा इस निमित्त उसके द्वारा लिखित रूप से प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा उस व्यक्ति की या उस बहुराज्य सहकारी सोसाइटी की, जिसके विरुद्ध विनिश्चय या आदेश किया गया है, किसी संपत्ति की कुर्की और विक्रय द्वारा या कुर्की के बिना विक्रय द्वारा, निष्पादित किया जाएगा ।

126. **निरसन और व्यावृत्ति** – (1) बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 1984 (1984 का 51) इसके द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) निरसन के संबंध में साधारण खंड अधिनियम, 1897 (1897 का 10) में अंतर्विष्ट उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कोई अधिसूचना नियम, आदेश, अपेक्षा, रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र, सूचना, विनिश्चय, निदेश, अनुमोदन, प्राधिकार, सहमति, आवेदन, अनुरोध या बात, जो बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 1984 (1984 का 51) के अधीन जारी की गई/किया गया, दिया गया या की गई हो, यदि इस अधिनियम के प्रारंभ के समय प्रवृत्त है तो उसी प्रकार प्रवृत्त बनी रहेगी और प्रभावी होगी मानो वह इस अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन जारी की गई/किया गया, दिया गया या की गई है ।

(3) इस अधिनियम के प्रारंभ के ठीक पूर्व विद्यमान प्रत्येक बहुराज्य सहकारी सोसाइटी, जो सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 1912 (1912 का 2) के अधीन या किसी राज्य में प्रवृत्त सहकारी सोसाइटियों से संबंधित किसी अन्य अधिनियम के अधीन या बहु एकक सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 1942 (1942 का 6) के या बहुराज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम, 1984 (1984 का 51) के उपबंधों के अनुसरण में रजिस्ट्रीकृत रही हैं, इस अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन रजिस्टर की गई समझी जाएगी और ऐसी सोसाइटी की उपविधियां, जहां तक वे इस अधिनियम या नियमों के उपबंधों से असंगत नहीं हैं तब तक प्रवृत्त नहीं रहेंगी जब तक कि वे परिवर्तित या विखंडित नहीं की जातीं ।

(4) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिनियमों में से किसी अधिनियम के अधीन की गई सभी नियुक्तियां, बनाए गए नियम और किए गए आदेश, जारी की गई सभी अधिसूचनाएं और सूचनाएं और संस्थित किए गए सभी वाद और अन्य कार्यवाहियां, जहां तक वे इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत नहीं हैं, क्रमशः इस अधिनियम के अधीन की गई, बनाए गए, किए गए, जारी की गई या संस्थित किए गए समझे जाएंगे सिवाय इसके कि किसी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के रजिस्ट्रीकरण को रद्द करने के लिए किया गया आदेश, जब तक कि सोसाइटी पहले से ही अंतिम रूप से समाप्त न कर दी गई हो, उसके परिसमापन के लिए धारा 86 के अधीन किया गया आदेश समझा जाएगा ।

(5) इस अधिनियम के उपबंध इस अधिनियम के प्रारंभ के समय लंबित –

(क) बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के रजिस्ट्रीकरण के लिए किसी आवेदन को ;

(ख) किसी बहुराज्य सहकारी सोसाइटी की उपविधियों के संशोधन के रजिस्ट्रीकरण के लिए किसी आवेदन को,

और उनके परिणामस्वरूप कार्यवाहियों को तथा उनके अनुसरण में अनुदत्त किसी रजिस्ट्रीकरण को लागू होंगे ।

(6) इस अधिनियम में जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, इस अधिनियम के प्रारंभ के समय किसी न्यायालय में या केन्द्रीय रजिस्ट्रार या किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष लंबित कोई विधिक कार्यवाही उस न्यायालय में या केन्द्रीय रजिस्ट्रार या उस प्राधिकारी के समक्ष ऐसे जारी रहेगी मानो यह अधिनियम पारित ही न हुआ हो ।"

11. पहली बात जिसकी अवेक्षा की जा सकती है, यह है कि अधिनियम, 1984 की धारा 74 और 76 के अधीन किए गए न्यायनिर्णयन का निष्पादन अधिनियम, 1984 की धारा 85 द्वारा उपबंधित रीति में किया जा सकता है । हमारा सरोकार, विशिष्ट रूप से, उपखंड (ग) से है क्योंकि, वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर, निष्पादन के लिए आवेदन उन व्यक्तियों की संपत्ति कुर्क और विक्रय करने के लिए किया गया था, जिनके विरुद्ध उक्त आदेश किया गया था ।

12. अधिनियम, 2002 जो अधिनियम, 1984 को प्रतिस्थापित करता है, की स्कीम में थोड़ा-सा अन्तर है । अधिनियम, 2002 की धारा 84 अधिनियम, 1984 की धारा 74 और 76 के समरूप है । वे विवाद, जो माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किए गए हैं, अब केन्द्रीय रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त किए गए मध्यस्थ द्वारा निपटाए और विनिश्चित किए जाएंगे, इसलिए ऐसे माध्यस्थम् पर माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के उपबंध ऐसी रीति में लागू होंगे मानो माध्यस्थम् के लिए कार्यवाहियां उक्त अधिनियम के उपबंधों के अधीन समझौते या विनिश्चय के लिए निर्दिष्ट की गई हैं ।

13. इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि नए अधिनियम की धारा 84(4) और (5) में एक भिन्न स्कीम उपबंधित है । समान रूप से, धारा 94, जिसमें अधिनियम, 2002 के अधीन किए गए कतिपय विनिश्चयों और आदेशों के निष्पादन के लिए उपबंध किया गया है, में विभिन्न धाराओं का उल्लेख किया गया है, किंतु धारा 84 मौजूद न होते हुए भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है । स्पष्ट रूप से, इसका कारण यह है कि अब समस्त कार्यवाहियां अधिनियम, 1996 के अधीन संचालित की जाएंगी और इसमें उक्त अधिनियम के अधीन किए गए माध्यस्थम् अधिनिर्णय भी सम्मिलित हैं । उच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या पुराने अधिनियम के अधीन आरंभ की गई कार्यवाहियां उक्त अधिनियम के अधीन ही जारी रहेंगी या नहीं ।

14. इसके लिए धारा 126(6) पर विचार करना महत्वपूर्ण है, जिस पर उच्च न्यायालय द्वारा कतई विचार नहीं किया गया । इस धारा के द्वारा, अधिनियम, 2002 के प्रारंभ के समय किसी प्राधिकारी के समक्ष लंबित कोई विधिक कार्यवाही उस प्राधिकारी के समक्ष ऐसे जारी रहेगी मानो यह अधिनियम पारित ही न हुआ हो ।

15. **गवर्नर-जनरल इन कौंसिल** बनाम **शिरोमणि शुगर मिल्स लि.**[1] वाले मामले में फेडरल न्यायालय के विनिश्चय में "विधिक कार्यवाही" अभिव्यक्ति विचार की विषय-वस्तु थी । उस विनिश्चय में भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 की धारा 171 पर विचार किया जाना था । वह धारा निम्नलिखित है :–

> "जब कोई समापन आदेश किया गया है या अंतरिम समापक नियुक्त किया गया है, तब कंपनी के विरुद्ध कोई वाद या अन्य

[1] ए. आई. आर. 1946 एफ. सी. 16.

विधिक कार्यवाही न्यायालय की इजाजत के सिवाय और ऐसे निबंधनों के अध्यधीन जो न्यायालय अधिरोपित करे, अग्रसर नहीं होगी ।"

16. फेडरल न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 की धारा 171 में "अन्य विधिक कार्यवाहियां" अभिव्यक्ति के अंतर्गत भारतीय आयकर अधिनियम के अधीन शोध्य कर की वसूली का 'केवल न्यायालय में कार्यवाहियां' के रूप में अर्थ लगाकर संकीर्ण अर्थान्वयन करने की आवश्यकता नहीं है । फेडरल न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि प्राधिकारियों द्वारा आयकर अधिनियम के अधीन आयकर के बकाया के लिए भू-राजस्व के बकाया के रूप में कार्यवाही आरंभ करना और संग्रहण करना एक "विधिक कार्यवाही" होगी ।

17. **बिनोद मिल्स कंपनी लिमिटेड, उज्जैन (मध्य प्रदेश)** बनाम **सुरेश चन्द्र महावीर प्रसाद मंत्री, बम्बई**[1] वाले मामले में इस न्यायालय को मध्य प्रदेश सहायता उपक्रम (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1978 की धारा 5 का अर्थान्वयन करना था । उक्त अधिनियम की धारा 5 निम्नलिखित है :–

> "5. **सहायता उपक्रमों के विरुद्ध वादों या अन्य विधिक कार्यवाहियों का निलंबन** – धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना में विनिर्दिष्ट तारीख से औद्योगिक उपक्रम के विरुद्ध कोई वाद या अन्य विधिक कार्यवाही, उस अवधि के दौरान जिसमें वह एक सहायता उपक्रम रहता है, किसी विधि, रूढ़ि, प्रथा, संविदा, लिखत, डिक्री, आदेश, पंचाट, समझौता या अन्य उपबंधों, जो भी हों, होते हुए भी संस्थित या आरंभ नहीं की जाएगी या यदि लंबित है तो अग्रसर नहीं की जाएगी ।"

18. इस न्यायालय ने पूर्वोक्त फेडरल न्यायालय के विनिश्चय को विस्तार से निर्दिष्ट किया और फिर यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 5 के अंतर्गत ऐसे निष्पादन आवेदन भी आएंगे जो सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन डिक्रियों के निष्पादन के लिए फाइल किए गए हैं ।

19. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि अधिनियम, 1984 की धारा 85(ग) के अधीन आरंभ की गई और तारीख 19 अगस्त, 2002 से पूर्व उक्त अधिनियम के अधीन लंबित निष्पादन की कार्यवाही अधिनियम, 2002 द्वारा

---

[1] (1987) 3 एस. सी. सी. 99.

अधिनियम, 1984 का निरसन होने पर भी अबाधित जारी रहेंगी । ऐसी स्थिति होने पर, यह स्पष्ट है कि अपीलाधीन निर्णय गलत है और अपास्त करना होगा ।

20. बैंक द्वारा रिट याचिका के उत्तर में फाइल किए गए शपथपत्र में, बैंक ने यह कथन किया कि उसने नीलाम कार्यवाहियों में प्राप्त 86 लाख रुपए के मुकाबले 85,31,175/- रुपए का संपूर्ण उधार ब्याज सहित वसूल कर लिया है और यह स्वीकार किया कि उधार की शोध्य रकम से 74,66,825/- रुपए अधिक की बकाया रकम अपीलार्थी को संदेय है । ऐसी स्थिति होने पर और पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए यह आदेश किया जाता है कि बैंक द्वारा अपीलार्थी को 74,66,825/- रुपए की रकम तारीख 1 अप्रैल, 2007 से 19 प्रतिशत वार्षिक चक्रवृद्धि ब्याज सहित यह निर्णय सुनाए जाने की तारीख से चार सप्ताह के भीतर संदत्त की जाए ।

21. प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने हमें रिट याचिका के आधार (V) और (VI) पर विनिश्चय करने के लिए मामला वापस भेजने के लिए प्रेरित किया । ये आधार निम्नलिखित हैं :–

> "(V) याची ने आगे यह दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा तारीख 17 मार्च, 2007 की सूचना के अनुसरण में जारी किया गया उक्त विक्रय प्रमाणपत्र शक्ति होने का बहाना करके पारित करने के कारण शून्य है, क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 2 बहुराज्य सहकारी सोसाइटी के नियम 36 की आज्ञा की अवज्ञा नहीं कर सकता था और नीलामी आयोजित करने और/या 15 दिन पहले निविदाएं खोलने का विनिश्चय नहीं कर सकता था, क्योंकि उक्त नियम में शिथिलता का उपबंध नहीं है । दूसरी ओर, इस नियम में यह आज्ञापक है कि सूचना की अवधि 15 दिन की होगी ।
>
> (VI) प्रत्यर्थी सं. 2 की संपूर्ण नीलामी असद्‌भाविक है और प्रत्यर्थी सं. 3 का समर्थन करने के लिए थी, क्योंकि ऊपर उल्लिखित तथ्यों से, इसके अतिरिक्त यह स्पष्ट हो जाता है कि जब याची संपत्ति की स्वामिनी है और उसे कार्यवाहियों की प्रमाणित प्रतियां उपलब्ध न कराने और उसे अंधेरे में रखना तथा कानूनी अपेक्षाओं की अवहेलना करके गुप्त रूप से नीलामी आयोजित कराने में प्रत्यर्थियों का आचरण दिखाई पड़ता है और इससे यह स्पष्ट होता है कि

प्रत्यर्थी सं. 2 का इस बाबत कार्य असद्भाविक था और उस कार्य से संपूर्ण कार्यवाहियां दूषित हो जाती हैं ।"

22. हमारा यह निष्कर्ष है कि संपत्ति को विक्रय करने के लिए किए गए छह असफल प्रयासों के पश्चात् हम एक सुसंगत समय पर यह अनुरोध स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं । इस मामले के तथ्यों के आधार पर हम यह पाते हैं कि प्रत्यर्थी-उधार लेने वाले बहुत पहले वर्ष 1997 में उनके द्वारा उधार लिए गए संपूर्ण धन का किसी भी प्रक्रम पर वापस करने के लिए तैयार नहीं थे । हम यह भी पाते हैं कि बहुराज्य सहकारी सोसाइटी नियम, 2002[1] के नियम 37(13) या (14) के अधीन अनुदत्त विक्रय प्रमाणपत्र को अपास्त कराने का कोई प्रयत्न किए बिना 2007 में रिट याचिका फाइल की गई । यह बात भी थोड़ी महत्वपूर्ण है कि अपीलार्थी का यह पक्षकथन नहीं है कि संपत्ति न्यून मूल्य पर बेची गई है । साथ ही, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, नियम 37(13) के अधीन विक्रय प्रमाणपत्र को अपास्त कराने के अवसर का उपभोग नहीं किया गया । रिट याचिका का आधार-V नियम 37(14) से संबंधित है क्योंकि, याची के

---

[1] (13)(क). जहां विक्रय अधिकारी द्वारा स्थावर संपत्ति का विक्रय किया गया है, वहां कोई व्यक्ति, चाहे संपत्ति का स्वामी है या ऐसे विक्रय से पूर्व किसी हक के आधार पर इसमें हित अर्जित किया है, वसूली अधिकारी के पास –

(i) क्रय धन के पांच प्रतिशत के बराबर राशि क्रेता को संदाय करने के लिए ; और

(ii) विक्रय उद्घोषणा में विनिर्दिष्ट बकाया की राशि, जिसकी वसूली के लिए विक्रय करने का आदेश किया गया है, उस पर ब्याज और कुर्की, यदि कोई हो, के खर्चे और विक्रय तथा उस रकम की बाबत देय अन्य लागतों सहित, उतनी रकम कम करके जो ऐसी उद्घोषणा की तारीख तक डिक्री-धारी द्वारा प्राप्त की गई हो, डिक्री-धारी को संदाय करने के लिए,

उसके द्वारा जमा करने पर विक्रय को अपास्त कराने के लिए आवेदन कर सकता है । ऐसी अनियमितता के कारण सारभूत क्षति पहुंची है । रिट याचिका को आधार V में सारभूत क्षति की बात का जिक्र तक नहीं है और इसका कारण यह है कि अपीलार्थी का यह पक्षकथन नहीं है कि संपत्ति पूरी तरह से न्यून मूल्य पर बेची गई थी ।

(ख). यदि ऐसा निक्षेप या आवेदन विक्रय की तारीख से तीस दिन के अंदर किए जाते हैं, तो विक्रय अधिकारी विक्रय को अपास्त करते हुए आदेश पारित करेगा और क्रेता को इतना क्रय धन जो जमा कराया गया है, आवेदक द्वारा जमा पांच प्रतिशत सहित, प्रतिसंदाय करेगा :

परंतु यदि इस उप-नियम के अधीन निक्षेप और आवेदन एक से अधिक व्यक्ति द्वारा किया गया है, तो विक्रय को अपास्त करने के लिए प्राधिकृत अधिकारी के पास पहले जमा कराने वाले जमाकर्ता का आवेदन स्वीकार किया जाएगा ।

अनुसार, विक्रय का संचालन करने में तात्विक अनियमितता हुई है । याची द्वारा ऐसा आधार बनाने के लिए उसे पहले विक्रय की तारीख से 30 दिन के अंदर वसूली अधिकारी को आवेदन करना चाहिए था और फिर अपीलार्थी को यह पक्षकथन करना चाहिए था कि उसे ऐसी अनियमितता के कारण सारभूत क्षति पहुंची है । रिट याचिका के आधार-V में सारभूत क्षति की बात का जिक्र तक नहीं है और इसका कारण यह है कि अपीलार्थी का यह पक्षकथन नहीं है कि संपत्ति पूरी तरह से न्यून मूल्य पर बेची गई थी । रिट याचिका में कोई अनुतोष नहीं दिया जा सकता है जिससे कि नियम 37(13) और (14) में अंतर्विष्ट उपबंधों की परिवंचना हो सके । आधार-V पूरी तरह से अस्पष्ट है और विशिष्टियों की कमी है । असद्भाविका का आरोप अत्यधिक स्पष्टता और विशिष्टता से बनाया जाना चाहिए । साथ ही, अपीलार्थी यह दावा नहीं कर सकती कि उसे अंधेरे में रखा गया, क्योंकि प्रत्येक नीलाम विक्रय को समाचारपत्रों में प्रकाशित किया गया था । इसलिए हम काउंसेल के इस जोरदार अभिवाक् को स्वीकार नहीं कर सकते कि शेष रिट याचिका को सुनवाई के लिए उच्च न्यायालय के पास भेजा जाए ।

23. अत: हम अपीलाधीन निर्णय को समग्र रूप में अपास्त करते हैं । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2017] 3 उम. नि. प. 66

बिहार राज्य

बनाम

राज बल्लव प्रसाद उर्फ राज बल्लव प्रसाद यादव उर्फ राज बल्लव यादव

24 नवंबर, 2016

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 136 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439, दंड संहिता, 1860 की धारा 376, 420/34, 366क, 370, 370क, 212 और 120ख, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 4, 6 और 8 तथा अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 की धारा 4, 5 और 6] – बलात्संग – जमानत – जहां अभियुक्त उपरोक्त अधिनियमों की उक्त धाराओं के अधीन आरोपित है वहां इस बात पर ध्यान देते हुए कि अभियोक्त्री के पिता और बहिन सहित अन्य महत्वपूर्ण साक्षियों के साक्ष्य की अभी परीक्षा की जानी है, निष्पक्ष और ऋजु विचारण के लिए अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाना उचित और न्यायसंगत नहीं है ।

प्रत्यर्थी का महिला पुलिस थाने में दर्ज कराए गए मामला सं. 15/2016 के अन्तर्गत विचारण चल रहा है जिसमें उसे भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 376, 420/34, 366क, 370, 370क, 212 और 120ख तथा लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 4, 6 और 8 और अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 की धारा 4, 5 और 6 के अधीन अपराध कारित करने के लिए आरोपित किया गया है । प्रत्यर्थी उक्त विचारण में एक सह-अभियुक्त है । इस संबंध में तारीख 9 फरवरी, 2016 को अभियोक्त्री प्रीति कुमारी (अप्राप्तवय) की लिखत शिकायत के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई । अन्वेषण के दौरान प्रत्यर्थी की मुख्य अभियुक्त के रूप में शनाख्त की गई जिसने उक्त अप्राप्तवय के साथ बलात्संग कारित किया था । तथापि, चूंकि उस समय प्रत्यर्थी अभिकथित रूप से फरार हो गया था, इसलिए विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 82 और उसके पश्चात् तारीख 27 जुलाई, 2006 को संहिता की धारा 83 के अधीन कार्यवाही की गई । उस प्रक्रम पर, प्रत्यर्थी ने अपनी

गिरफ्तारी की आशंका से तारीख 10 मार्च, 2016 को विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण किया और उसे अभिरक्षा में ले लिया गया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, तारीख 20 अप्रैल, 2016 को इस मामले में आरोप पत्र फाइल किया गया और तारीख 6 अगस्त, 2016 को आरोप विरचित किए गए । विचारण के लंबित रहने के दौरान, प्रत्यर्थी विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष जमानत आवेदन फाइल किया जिसकी विचारण न्यायालय द्वारा सुनवाई की गई और उसे तारीख 30 मई, 2016 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया । इस आवेदन के खारिज किए जाने से व्यथित होकर प्रत्यर्थी ने जमानत के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन किया जिसकी सुनवाई 27 जुलाई, 2016 को उच्च न्यायालय द्वारा की गई । तथापि, उक्त जमानत आवेदन को वापस लेने के लिए अनुमति की ईप्सा की गई और इस निवेदन को स्वीकार करते हुए जमानत आवेदन तारीख 27 जुलाई, 2016 को वापस लिए जाने के आधार पर खारिज कर दिया गया । इसके 3 सप्ताह के भीतर अर्थात् तारीख 19 अगस्त, 2016 को प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक अन्य जमानत आवेदन प्रस्तुत किया । इस बार प्रत्यर्थी अपने प्रयास में सफल हो गया क्योंकि उच्च न्यायालय ने तारीख 30 सितंबर, 2016 को दिए गए निर्णय के अनुसार यह निदेश दिया गया कि प्रत्यर्थी को जमानत पर छोड़ा जाए । प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के समय कतिपय शर्तें अधिरोपित की गईं । प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के आदेश से व्यथित होकर राज्य ने उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल करके इस आदेश को चुनौती दी । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख पर यह उपलब्ध है कि जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रत्यर्थी के विरुद्ध दर्ज कराई गई थी और अन्वेषण के आधार पर उसे गिरफ्तार किए जाने की ईप्सा की गई थी, तब प्रत्यर्थी उक्त गिरफ्तारी से बच रहा था । इतना ही नहीं, अभियोजन पक्ष को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 82 के अधीन विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल करना पड़ा और विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 83 के अधीन भी कार्यवाही की । मामले का इस प्रक्रम पर पहुंचने के बाद ही प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण किया और उसको गिरफ्तार किया गया । प्रत्यर्थी का आवेदन अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा तारीख 30 मई, 2016 को खारिज कर दिया गया । जमानत खारिज किए जाने के इस आदेश को पारित करते समय विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजक द्वारा यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध सीधे और

विशिष्ट अभिकथन किए गए हैं कि उसने अप्राप्तवय कन्या के साथ बलात्संग किया है और अन्वेषण के दौरान जब अभियुक्त पी. ओ. हाउस में टहल रहा था, आहत ने उसे पहचान लिया था । यह भी विचार किया गया है कि सह-अभियुक्त संदीप सुमन **उर्फ** पुष्पांजय की जमानत की प्रार्थना भी पहले ही खारिज कर दी गई है और प्रत्यर्थी का मामला इससे अधिक गंभीर स्थिति में है और प्रत्यर्थी का आपराधिक इतिहास है जैसा कि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई केस डायरी से स्पष्ट है । अभिलेख पर यह भी उपलब्ध है कि अभियोक्त्री के परिवार के सदस्यों ने यह दावा करते हुए अभ्यावेदन दिए थे कि प्रत्यर्थी अभियोक्त्री के परिवार के सदस्यों को धमकी देता है । इसके अतिरिक्त अभियोक्त्री की ओर से साक्षियों और उसके परिवार के सदस्यों को धमकी देने की अनेक शिकायतों पर विचार करने पर राज्य प्रशासन ने अभियोक्त्री और उसके परिवार की सुरक्षा और संरक्षा के लिए 1 + 4 के रूप में पुलिसकर्मियों को तैनात किया । अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के बावजूद उच्च न्यायालय ने औपचारिक और सरसरी टिप्पणी की है कि ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह प्रदर्शित हो कि अभियुक्त ने साक्ष्य में छेड़छाड़ करके विचारण की प्रक्रिया में हस्तक्षेप किया है । दूसरी ओर, उच्च न्यायालय ने मामले के गुणागुणों/साक्ष्य पर चर्चा की है जिसकी इस प्रक्रम पर कोई आवश्यकता नहीं थी । निःसंदेह, यदि किसी मामले में न्यायालय को यह प्रतीत होता हो कि अभियुक्त के विरुद्ध मामला पूर्णतया मिथ्या है तब जमानत आवेदन पर विचार करने के लिए यह एक सुसंगत कारक हो सकता है । तथापि, इस प्रक्रम पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान मामला इस श्रेणी के अन्तर्गत आता है । इस पर विचारण के दौरान ही विचार किया जाना चाहिए । अतः, विशेष रूप से, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए था कि अभियुक्त के न्याय से दूर भागने की कोई संभावना है या नहीं या इस बात की कोई युक्तियुक्त आशंका है या नहीं कि जमानत पर छोड़े जाने के पश्चात् विचारण में कोई छेड़छाड़ करेगा । इन पहलुओं पर उच्च न्यायालय द्वारा समुचित रूप से उतनी गंभीरता के साथ विचार नहीं किया गया है जितना किया जाना चाहिए था । ऐसा किए जाने पर उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किए गए विवेकाधिकार में हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त आधार बन जाता है । उच्च न्यायालय ने एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू को अनदेखा किया है अर्थात् सह-अभियुक्त के जमानत आवेदन को खारिज करते समय उसने जल्दबाजी में आदेश पारित किया है बल्कि दिन प्रतिदिन विचारण करके यह सुनिश्चित किया है कि विचारण की प्रक्रिया अतिशीघ्र पूर्ण हो जाए । जब

फास्ट ट्रैक विचारण का आदेश पहले ही पारित कर दिया गया था और सह-अभियुक्त संदीप सुमन **उर्फ** पुष्पांजय की ओर से फाइल किए गए जमानत आवेदन को खारिज भी कर दिया गया था तब उच्च न्यायालय से, प्रत्यर्थी के आवेदन पर विचार करते समय, यह प्रत्याशा की जाती है कि वह इस महत्वपूर्ण तथ्य को भी ध्यान में रखे । इसके अतिरिक्त, विधि का एक सामान्य कथन देते हुए कि अभियुक्त निर्दोष है जब तक कि उसे दोषी साबित न किया जाए, बालक संरक्षण अधिनियम की धारा 29 के उपबंधों को विचार में नहीं लिया गया है । उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए हमारी यह राय है कि इस प्रक्रम पर प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के लिए यह उचित मामला नहीं है और इस संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा गंभीर रूप से त्रुटि की गई है । पूर्वगामी कारणों के आधार पर हम एतद्द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हुए यह अपील मंजूर करते हैं । यदि प्रत्यर्थी को पहले ही छोड़ दिया गया है, तब वह अभ्यर्पण करेगा और/या उसे तत्काल अभिरक्षा में लिया जाएगा । यदि वह अभी तक जेल में है तब वह इस निर्णय के परिणामस्वरूप जेल में ही रहेगा । (पैरा 16, 17, 18, 19, 20, 21 और 28)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	2014 की दांडिक अपील सं. 25-26, निर्णय की तारीख 22.11.2016 : **रमेश और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	26
[2014]	(2014) 16 एस. सी. सी. 508 : **नीरू यादव** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ;	25
[2009]	(2009) 14 एस. सी. सी. 286 : **मसरूर** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ;	24
[2001]	(2001) 6 एस. सी. सी. 338 : **पूरन** बनाम **रामबिलास और एक अन्य** ;	13
[1964]	[1964] 3 एस. सी. आर. 480 : **राजाभाई अब्दुल रहमान मुंशी** बनाम **वसुदेव धनजीभाई मोदी** ;	7
[1958]	[1958] एस. सी. आर. 1226 : **तलब हाजी हुसैन** बनाम **मधुकर पुरुषोत्तम मोंडकर और अन्य** ।	23

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 1141.

2016 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 35951 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 30 सितंबर, 2016 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री गोपाल सुब्रह्मण्यम (ज्येष्ठ अधिवक्ता), गोपाल सिंह और मनीष कुमार
प्रत्यर्थी की ओर से	दुष्यंत दवे, सिद्धार्थ लूथरा (ज्येष्ठ अधिवक्ता, फर्रुख रशीद और संजीव के. सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी ने दिया ।

न्या. सीकरी – इस मामले में के प्रत्यर्थी का विचारण महिला पुलिस थाने में दर्ज कराए गए मामला सं. 15/2016 के अन्तर्गत चल रहा है जिसमें प्रत्यर्थी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 376, 420/34, 366क, 370, 370क, 212 और 120ख तथा लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 4, 6 और 8 और अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 की धारा 4, 5 और 6 के अधीन अपराध कारित करने के लिए आरोपित किया गया है । प्रत्यर्थी उक्त विचारण में एक सह-अभियुक्त है । इस संबंध में तारीख 9 फरवरी, 2016 को अभियोक्त्री प्रीति कुमारी (अप्राप्तवय) की लिखित शिकायत के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई है । अन्वेषण के दौरान प्रत्यर्थी की शनाख्त मुख्य अभियुक्त के रूप में की गई जिसने उक्त अप्राप्तवय के साथ बलात्संग किया है । तथापि, चूंकि उस समय प्रत्यर्थी अभिकथित रूप से फरार हो गया था, इसलिए विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संहिता" कहा गया है) की धारा 82 के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध कार्रवाई की और उसके पश्चात् तारीख 27 जुलाई, 2006 को प्रत्यर्थी के विरुद्ध संहिता की धारा 83 के अधीन कार्यवाही की गई । उस प्रक्रम पर, प्रत्यर्थी ने अपनी गिरफ्तारी की आशंका से तारीख 10 मार्च, 2016 को विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण किया और उसे अभिरक्षा में ले लिया गया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, तारीख 20 अप्रैल, 2016 को इस मामले में आरोप पत्र फाइल किया गया और

तारीख 6 अगस्त, 2016 को आरोप विरचित किए गए ।

2. विचारण के लंबित रहने के दौरान, प्रत्यर्थी विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश के समक्ष जमानत आवेदन फाइल किया जिसकी विचारण न्यायालय द्वारा सुनवाई की गई और उसे तारीख 30 मई, 2016 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया । इस आवेदन के खारिज किए जाने से व्यथित होकर प्रत्यर्थी ने जमानत के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन किया जिसकी सुनवाई 27 जुलाई, 2016 को उच्च न्यायालय द्वारा की गई । तथापि, उक्त जमानत आवेदन को वापस लेने के लिए अनुमति की ईप्सा की गई और इस निवेदन को स्वीकार करते हुए जमानत आवेदन तारीख 27 जुलाई, 2016 को वापस लिए जाने के आधार पर खारिज कर दिया गया । इसके 3 सप्ताह के भीतर अर्थात् तारीख 19 अगस्त, 2016 को प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक अन्य जमानत आवेदन प्रस्तुत किया । इस बार प्रत्यर्थी अपने प्रयास में सफल हो गया क्योंकि उच्च न्यायालय ने तारीख 30 सितंबर, 2016 को दिए गए निर्णय के अनुसार यह निदेश दिया कि प्रत्यर्थी को जमानत पर छोड़ा जाए । प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के समय कतिपय शर्तें अधिरोपित की गईं । प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के आक्षेपित आदेश से व्यथित होकर राज्य ने वर्तमान कार्रवाइयों में इस आदेश को चुनौती दी है । तारीख 7 अक्तूबर, 2016 को विशेष इजाजत याचिका में नोटिस जारी किया गया और अगली तारीख 17 अक्तूबर, 2016 को नियत की गई । इसके पश्चात्, सुनवाई की प्रभावी तारीख 8 नवंबर, 2016 नियत की गई है और निम्न आदेश पारित किया गया है :–

> हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है ।
>
> वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने इस मामले के प्रत्यर्थी को उसके विरुद्ध दंड संहिता की धारा 376, 420/34, 366क, 370, 370क, 212, 120ख, बालक संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 4, 6 और 8 के अधीन आरोप के संबंध में चल रहे विचारण के लंबित रहने के दौरान जमानत मंजूर की है । प्रत्यर्थी का विचारण अनैतिक व्यापार अधिनियम, 1956 की धारा 4, 5 और 6 के अधीन अपराध के लिए भी किया जा रहा है । यह मामला अपर सेशन (प्रथम) सह-विशेष न्यायाधीश, नालंदा, बिहार शरीफ के समक्ष लंबित है । अभियोक्त्री का अभिसाक्ष्य अभिलिखित किया जाना शेष है । इस प्रक्रम पर कोई भी विचार किए बिना हमारी यह राय है कि

अभियोक्त्री को बिना किसी भय और दबाव के कथन करने योग्य बनाने के लिए यह आवश्यक होगा कि अभियोक्त्री उस समय अपना अभिसाक्ष्य दे जब प्रत्यर्थी अभिरक्षा में हो । इसी कारण हम इस मामले में के प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 3 सितंबर, 2016 के निर्णय और आदेश को प्रत्यर्थी को अभिरक्षा में लेने की तारीख से 2 सप्ताह के लिए निलंबित करते हैं । हम यह निदेश देते हैं कि प्रत्यर्थी कल अर्थात् 9 नवंबर, 2016 को विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करेगा और उसे उसी प्रकार अभिरक्षा में रखा जाएगा जिस प्रकार वह उच्च न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर किए जाने के पूर्व 2 सप्ताह के लिए कारावास में रखा गया था ।

विचारण न्यायालय को अभियोक्त्री का साक्ष्य तत्काल अभिलिखित करना है और 2 सप्ताह की उक्त अवधि के भीतर उसे पूरा करने का प्रयास करना है ।

हमें यह भी आशा और प्रत्याशा है कि प्रत्यर्थी अभियोक्त्री या अन्य किसी अभियोजन साक्षी पर किसी भी प्रकार का प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः दबाव नहीं डालेगा ।

इस मामले में, आगे निदेश दिए जाने के लिए, तारीख 13 नवंबर, 2016 नियत की जाती है । इस आदेश की एक प्रति दस्ती दिए जाने की अनुमति दी जाती है ।

3. उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में प्रत्यर्थी ने अभ्यर्पण किया और 2 सप्ताह का समय कल अर्थात् तारीख 23 नवंबर, 2016 को समाप्त हो गया और उसी समय इस अपील की अंतिम सुनवाई की गई । इस अवधि के दौरान, अभियोक्त्री का कथन अभिलिखित किया गया और उसकी प्रतिपरीक्षा भी कराई गई ।

4. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री गोपाल सुब्रह्मण्यम ने यह दलील दी है कि चूंकि अन्य साक्षियों की परीक्षा होनी शेष है जो कि महत्वपूर्ण साक्षी हैं, इसलिए न्याय के हित के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्यर्थी को अभी विचारण के दौरान जेल में रखा जाए । अतः, विद्वान् काउंसेल ने न्यायालय को अपीलार्थी के अनुसार गुणता के आधार पर अपील की सुनवाई किए जाने के लिए सहमत किया, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जमानत का आदेश उच्च न्यायालय द्वारा पारित

नहीं किया जाना चाहिए और उच्च न्यायालय ने ऐसा आदेश पारित करने में घोर अवैधता कारित की है । इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए हमने मामले की अंतिम रूप से सुनवाई की और दोनों पक्षों द्वारा दी गई विस्तृत दलीलों पर भी विचार किया है ।

5. श्री सुब्रह्मण्यम द्वारा यह दलील दी गई है कि आक्षेपित निर्णय अनुचित है क्योंकि इसमें सुसंगत कारकों पर विचार नहीं किया गया है जिन्हें जमानत आवेदन विनिश्चित किए जाने के समय पर ध्यान में रखना चाहिए था और ऐसे सुसंगत कारकों को ध्यान नहीं रखा गया है । यह भी दलील दी गई है कि उच्च न्यायालय ने आरंभ में ही यह मत व्यक्त किया है कि निर्दोषिता की उपधारणा अभियुक्त (इस मामले में का प्रत्यर्थी) के पक्ष में तब तक की जानी चाहिए जब तक उसे दोषी साबित न कर दिया जाए । इसके पश्चात् न्यायालय ने मामले की गुणता पर विचार किया है । इस प्रक्रिया में, अपीलार्थी के अनुसार, न्यायालय जमानत आवेदन मंजूर किए जाने या खारिज किए जाने से संबंधित सुसंगत तथ्यों पर समाधानप्रद रूप में विचार करने में असफल रहा है अर्थात् यदि प्रत्यर्थी को जमानत पर छोड़ दिया जाए तब वह वास्तव में साक्षियों या विचारण की प्रक्रिया को प्रभावित करेगा या नहीं या जमानत मंजूर किए जाने के पश्चात् प्रत्यर्थी फरार हो जाएगा और विचारण के लिए उपलब्ध नहीं रहेगा । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह तर्क दिया है कि इस मामले की पृष्ठभूमि पर विचार करने पर स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस बात की युक्तियुक्त आशंका है कि प्रत्यर्थी द्वारा साक्षियों को अभित्रस्त किया जाएगा या उन पर दबाव डाला जाएगा क्योंकि प्रत्यर्थी ही विधायक होने के नाते प्रभावशाली व्यक्ति नहीं है अपितु उसने इस घटना से पहले भी ऐसे कई प्रयास किए हैं । शिकायतें अभियोक्त्री और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा की गई हैं । यह भी इंगित किया गया है कि न्यायालय यह भी विचार करने में असफल रहा है कि एक पूर्ववर्ती अवसर पर प्रत्यर्थी को न्यायालय ने उपस्थित कराने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अधीन कार्यवाही की गई थी । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने एक अन्य दलील यह भी दी है कि जब उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 27 जुलाई, 2016 को अर्थात् मुश्किल से तीन सप्ताह पूर्व जमानत आवेदन खारिज किया गया था, तब से लेकर अब तक अर्थात् द्वितीय जमानत आवेदन तारीख 19 अगस्त, 2016 को फाइल किए जाने तक परिस्थितियों में कोई भी परिवर्तन नहीं आया है जिनमें आक्षेपित आदेश पारित किया जाए । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह भी इंगित किया है कि सह-अभियुक्त का जमानत आवेदन तारीख

20 अगस्त, 2016 को उच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया है और ऐसा करने में उच्च न्यायालय ने यह निदेश दिया है कि विचारण लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम के निबंधनों में बिना किसी विलंब दिन प्रतिदिन कार्यवाही करके पूरा करना है । अपीलार्थी के अनुसार इन सभी पहलुओं को उच्च न्यायालय द्वारा अनदेखा किया गया है, इसलिए यह आदेश चुनौती दिए जाने योग्य है । इस प्रतिपादना के समर्थन में कुछ निर्णयों को उद्धृत किया है जिन पर जमानत मंजूर किए जाने का आदेश पारित करते समय विचार किया जा सकता है ।

6. इस प्रक्रम पर यह भी इंगित किया जा सकता है कि विशेष इजाजत याचिका में आक्षेपित आदेश को चुनौती देने के लिए यह आधार लिया गया है कि जब तारीख 27 जुलाई, 2016 को उच्च न्यायालय के विशेष न्यायाधीश द्वारा पूर्ववर्ती आवेदन खारिज कर दिया गया था, तब इस न्यायालय के निदेशानुसार द्वितीय आवेदन उसी न्यायाधीश के समक्ष सूचीबद्ध किया जाना चाहिए था । तथापि, द्वितीय आवेदन स्वयं मुख्य न्यायाधीश द्वारा विचार किया गया जिसे उस न्यायाधीश को समनुदेशित करने के बजाय जिसने तारीख 27 जुलाई, 2016 को आदेश पारित किया था, उसमें आक्षेपित आदेश पारित कर दिया गया । तथापि, श्री सुब्रह्मण्यम ने इस आधार पर अधिक बल नहीं दिया है सिवाय इसके कि उन्होंने यह निवेदन किया है कि मामला उसी न्यायाधीश के समक्ष सूचीबद्ध किया जाए जिसने तारीख 27 जुलाई, 2016 को आदेश पारित किया था और जिनके समक्ष सुनवाई के लिए जमानत का प्रथम आवेदन प्रस्तुत किया गया था ।

7. प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री दुष्यंत दवे ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि यह विशेष इजाजत याचिका मात्र इस आधार पर खारिज की जानी चाहिए कि अपीलार्थी ने उसी न्यायाधीश के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किए जाने के बजाय, जिसने उस पर पूर्व में सुनवाई की थी, स्वयं उक्त न्यायालय द्वारा जमानत आवेदन पर सुनवाई किए जाने के संबंध में मिथ्या अभिवाक् किया है । उन्होंने यह इंगित किया है कि स्वयं आक्षेपित आदेश में यह मत अभिव्यक्त किया गया है कि प्रथम जमानत आवेदन में गुणागुण के आधार पर विनिश्चय नहीं किया गया था और वह तारीख 27 जुलाई, 2016 को वापस लिए जाने के कारण खारिज कर दिया गया था, इसलिए इन कार्यवाहियों में द्वितीय जमानत आवेदन की कार्यवाही को लेकर कोई भी विधिक अड़चन नहीं है और अपर महाधिवक्ता का कथन जो उच्च न्यायालय में राज्य की ओर से हाजिर हुए थे, विशेषकर इस संबंध

में अभिलिखित किया गया है कि उन्हें उक्त न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी के आवेदन पर विचार करने को लेकर कोई आपत्ति नहीं है । यह अभिलिखित किए जाने के पश्चात् ही जमानत आवेदन पर सुनवाई की गई और आदेश पारित किया गया । इस प्रकार यह दलील दी गई है कि राज्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह किसी व्यक्ति विशेष की तुलना में अधिक जिम्मेदार होता है और राज्य का ही पक्षकथन स्पष्ट और ठोस नहीं है और उसने उपर्युक्त तथ्य को दबाकर ऐसा अभिवाक् करते हुए न्यायालय के समक्ष प्रतिकूल प्रयास किया है । **राजाभाई अब्दुल रहमान मुंशी** बनाम **वसुदेव धनजीभाई मोदी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया गया है और यह अभिवाक् किया गया है कि अपीलार्थी/राज्य का यह आचरण इस प्रकार का है कि यह याचिका ग्रहण नहीं की जानी चाहिए ।

8. निःसंदेह, इस तथ्य को लेकर श्री दवे के उपर्युक्त अभिवाक् में कुछ सार हो सकता है कि प्रधान अपर महाधिवक्ता ने स्वयं उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी है कि राज्य को संबंधित न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी के जमानत आवेदन पर विचार किए जाने पर कोई भी आपत्ति नहीं है । इस पृष्ठभूमि में राज्य ने इस आधार पर आदेश को चुनौती देने में न्यायोचित नहीं किया है कि मामले पर मुख्य न्यायाधीश द्वारा विचार नहीं किया जाना चाहिए था अपितु इस आवेदन को उसी न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए था जिन्होंने प्रथम जमानत आवेदन पर तारीख 27 जुलाई, 2016 को आदेश पारित किया था । इस कारण से यह हो सकता है कि चुनौती में जो आधार लिया गया है उस पर श्री सुब्रह्मण्यम द्वारा गंभीरता से बल न दिया गया हो । किसी भी स्थिति में, हमारी यह राय है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, हम श्री दवे के इस तर्क से सहमत नहीं हैं कि ऐसा किए जाने के परिणामस्वरूप विशेष इजाजत याचिका खारिज कर दी जाए । इस संप्रेक्षण के दो कारण हैं जो निम्न प्रकार हैं :—

(i) प्रधान अपर महाधिवक्ता का यह कथन कि राज्य को इस पर कोई आपत्ति नहीं है कि उक्त न्यायालय द्वारा आवेदन पर विचार किया जाए और उनके इस कथन को स्वयं आदेश के आरंभ में ही अभिलिखित किया गया है, अतः, तथ्य को दबाने का प्रश्न ही नहीं उठता है । जब विशेष इजाजत याचिका ग्रहण की गई थी तभी यह तथ्य न्यायालय की जानकारी में था और उसके पश्चात् ही नोटिस

---

[1] [1964] 3 एस. सी. आर. 480.

जारी किया गया था । अतः, इस आधार पर न्यायालय को भ्रमित करने का प्रश्न ही नहीं उठता है ।

(ii) मुख्य बात यह है कि विशेष इजाजत याचिका में नोटिस जारी करने के लिए मुख्य कारण यह दिया गया था कि यह न्यायालय गुणता के आधार पर इस पर विचार करना चाहता है कि क्या इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग समुचित रूप से किया गया है या नहीं और ऐसे प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के लिए यह एक उचित मामला है या नहीं जिसका अभी विचारण किया जा रहा है । हमें दांडिक विचारण पर विचार करना है और इस न्यायालय को विशेष रूप से इस पर विचार करना है कि विचारण की कार्यवाही निष्पक्ष रूप से की गई है या नहीं । न्यायालय की ये भावनाएं सुनवाई के समय पर श्री दवे के समक्ष स्पष्ट कर दी गईं थीं ।

9. इस प्रकार श्री दवे ने मामले पर गुणता के आधार पर तर्क दिया और साथ ही यह अभिवाक् किया कि जब एक बार उच्च न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर कर दी जाती है तब इस न्यायालय को उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जाने में हस्तक्षेप नहीं कर सकता । यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी के पास द्वितीय जमानत आवेदन फाइल करने का एक विधिमान्य कारण था क्योंकि इसी दौरान तारीख 6 अगस्त, 2016 को आरोप विरचित किए गए थे जोकि परिस्थितियों में आने वाला एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है ।

10. श्री सुब्रह्मण्यम की ओर से किए गए प्रकथनों का खंडन करते हुए श्री दवे ने यह भी तर्क दिया कि जमानत मंजूर किए जाने के पश्चात्, प्रत्यर्थी ने किसी भी प्रकार से उसका दुरुपयोग नहीं किया और ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह साबित हो सके कि प्रत्यर्थी ने साक्षियों को प्रभावित करने या अभिलेख के साथ छेड़छाड़ करने का प्रयास किया है और इस संबंध में आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत पूर्णतया न्यायोचित है । श्री दवे ने यह भी दलील दी है कि जब एक बार यह पाया जाए कि उच्च न्यायालय ने विस्तृत आदेश पारित करने में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया है और उसके पश्चात् ही जमानत मंजूर की है, तब ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग किए जाने में संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए । इस प्रतिपादना के समर्थन में, विद्वान् काउंसेल ने कई निर्णय निर्दिष्ट किए हैं जिनका सार निम्न प्रकार है :–

(i) राज्य (दिल्ली प्रशासन) **बनाम** संजय गांधी (1978) 2 एस. सी. सी. 411) –

> "13. जब जमानत का आवेदन किया जाता है और जमानत खारिज कर दी जाती है, यह बात इस स्थिति से भिन्न है जब जमानत मंजूर कर दी गई हो और तत्पश्चात् वह खारिज कर दी जाए । अजमानतीय मामले में जमानत आवेदन खारिज करना अपेक्षाकृत ऐसे मामले से सरल है जिसमें पहले जमानत मंजूर कर दी गई हो और बाद में खारिज कर दी जाए । जमानत का रद्द किया जाना आवश्यक रूप से उस विनिश्चय पर पुनर्विचार करना है जो पहले दिया जा चुका है और कुल मिलाकर तभी अनुध्यात किया जा सकता है यदि परिस्थितियों के आधार पर यह कहा जा सके निष्पक्ष विचारण के लिए अभियुक्त को विचारण के दौरान जमानत पर बने रहने से सही परिणाम नहीं निकलेगा । यह तथ्य कि अभियोजन साक्षी पक्षद्रोही हो गए हैं, स्वयं में ऐसा आधार नहीं है कि यह कहा जा सके कि अभियुक्त ने इन साक्षियों पर दबाव डाला है ...."

(ii) भागीरथ सिंह **बनाम** गुजरात राज्य (1984) 1 एस. सी. सी. 284 –

> "7. हमारी राय में, विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए वैवेकिक आदेश में हस्तक्षेप करके जमानत रद्द किए जाने का निदेश दिए जाने के प्रश्न पर विचार करते समय विद्वान् न्यायाधीश स्वयं भ्रमित प्रतीत होते हैं । कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश की चिन्ता का मूल्यांकन कर सकता था कि उन्होंने इन परिस्थितियों पर विचार किया है कि आहत पर हमला किया गया और वह सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्ता था और इसीलिए अभियुक्त को जमानत प्रदान नहीं की जानी चाहिए, किन्तु हम यह समझने में असफल रहे हैं कि कैसे ऐसी परिस्थिति पर जमानत मंजूर करने वाले विद्वान् सेशन न्यायाधीश के वैवेकिक आदेश में हस्तक्षेप किए जाने को अनुज्ञात करें । उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को पूर्णतया अनदेखा किया है कि उसे यह विरचित नहीं करना था कि जमानत प्रदान की जानी चाहिए या नहीं अपितु आवेदन

जमानत रद्द किए जाने के लिए प्रस्तुत किया गया था । अत्यंत तर्कसम्मत और प्रभावशाली परिस्थितियां आकर्षक होती हैं और उसके पश्चात् ही जमानत रद्द किए जाने पर विचार किया जा सकता है और आजकल जमानत मंजूर किए जाने का प्रचलन है क्योंकि इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों द्वारा यह सुस्थापित है कि जमानत मंजूर करने की शक्ति का प्रयोग ऐसी स्थिति में नहीं किया जाना चाहिए जब विचारण के पूर्व दंड अधिरोपित किया जा रहा हो । ऐसी स्थिति में विचार के लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि अभियुक्त अपने विचारण के लिए तत्परता से उपलब्ध है या नहीं और वह जमानत मंजूर किए जाने पर उसका दुरुपयोग साक्ष्य में छेड़छाड़ करके अपने पक्ष में करेगा या नहीं । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आदेश इन दोनों सुसंगत विचारों के आधार पर पूर्णतया मूक है । इन्हीं कारणों के आधार पर हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश में हस्तक्षेप करना न्याय के हित में उचित समझते हैं ।"

(iii) बिहार विधिक सहायता समिति **बनाम** भारत का मुख्य न्यायाधीश और एक अन्य (1986) 4 एस. सी. सी. 767 –

"3. यह प्रश्न कि जमानत खारिज किए जाने या अग्रिम जमानत के विरुद्ध फाइल की गई विशेष इजाजत याचिका तत्काल सूचीबद्ध की जानी चाहिए या नहीं, एक ऐसा प्रश्न है जो मुख्य न्यायाधीश के प्रशासनिक अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आता है और इस संबंध में हम कोई भी निदेश नहीं दे सकते । किंतु, हम यह इंगित कर सकते हैं कि प्रत्येक ऐसे याची को जो जमानत या अग्रिम जमानत से इनकारी के विरुद्ध विशेष इजाजत याचिका फाइल करता है, अपना मामला उनकी प्रशासनिक हैसियत में विद्वान् मुख्य न्यायाधीश के समक्ष इसे तत्काल सूचीबद्ध करने का उल्लेख करते हुए प्रस्तुत करने का अवसर होता है और जहां कहीं भी कोई मामला तत्काल सूचीबद्ध किया जाना हो वहां मुख्य न्यायाधीश उसे तत्काल सूचीबद्ध किए जाने के लिए समुचित आदेश पारित करता है । तथापि, यह इंगित किया जा सकता है कि उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय या मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए गए आदेशों के विरुद्ध अपील न्यायालय बनना कभी भी इस न्यायालय का

आशय नहीं था । इसका सृजन सर्वोच्च न्यायालय के रूप में सम्पूर्ण देश के लिए विधि का अनुपालन किए जाने और विशेष इजाजत मंजूर किए जाने के लिए असाधारण अधिकारिता संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन प्रदत्त किए जाने के लिए किया गया है ताकि यह न्यायालय जब कभी यह देखे कि निचले न्यायालयों या अभिकरणों द्वारा विधि ठीक प्रकार प्रयोग नहीं किया गया है और उस विषय पर विधि की सही घोषणा करना आवश्यक है, तब हस्तक्षेप कर सकता है । यह असाधारण अधिकारिता का प्रयोग सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोर अन्याय से बचने के लिए भी किया जा सकता है किंतु ऐसे मामले अपनी प्रकृति के आधार पर आपवादिक मामले होंगे ।"

11. हमने दोनों ओर के विद्वान् काउंसेलों की दलीलों पर गहराई से विचार किया है ।

12. हम प्रारंभ में ही यह मत व्यक्त कर सकते हैं कि हमें उन परिसीमाओं का भान है जिनसे हम निचले न्यायालय और वह भी उच्च न्यायालय जैसे उच्चतर न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर किए जाने के विरुद्ध किए गए अभिवाक् पर सुनवाई करते समय आबद्ध हैं । यह प्रत्याशा की जाती है कि जब एक बार उच्च न्यायालय द्वारा सुसंगत बातों के आधार पर विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाता है और जमानत मंजूर की जाती है तब ऐसी स्थिति में यह न्यायालय प्रसामान्यतः ऐसे विवेकाधिकार के प्रयोग में तब तक हस्तक्षेप नहीं करता है जब तक कि यह न पाया जाए कि स्वयं विवेकाधिकार का प्रयोग असंगत बातों के आधार पर किया गया है और/या ऐसे सुसंगत कारकों की अनदेखी या उपेक्षा की गई है जिन पर विचार किया जाना चाहिए था । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए निर्णयों में, जैसे कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, इस न्यायालय ने उन बातों का उल्लेख किया है जिन्हें यह परखने के लिए ध्यान में रखना चाहिए कि निचले न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया जमानत आदेश न्यायोचित है या नहीं । जमानत मंजूर करने से संबंधित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए अत्यंत तर्कसंगत और प्रभावी परिस्थितियां होनी चाहिएं । उपरोक्त निर्णयों में इन्हीं महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया गया है अर्थात् अभियुक्त वास्तव में अपने विचारण के लिए उपलब्ध रहेगा या नहीं और यह कि वह अपने पक्ष में साक्ष्य में छेड़छाड़ करके जमानत मंजूर किए जाने का दुरुपयोग करेगा या नहीं । हमने इन बातों को ध्यान में रखते हुए

आक्षेपित आदेश की शुद्धता पर विचार किया है ।

13. इस प्रक्रम पर हम **पूरन** बनाम **रामविलास और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिसमें जमानत के आवेदन तथा जमानत रद्द किए जाने के लिए फाइल किए गए आवेदन पर विचार करते समय जिन सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिए उनका उल्लेख विस्तार से किया गया है । जहां तक जमानत के आवेदन को ग्रहण किए जाने का संबंध है, न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि जमानत मंजूर किए जाने के समय कारण अभिलिखित किए जाने चाहिएं किंतु साक्ष्य के गुणों और अवगुणों की चर्चा किए बिना ही ऐसा करना चाहिए । यह स्पष्ट किया गया है कि साक्ष्य पर चर्चा करना पूर्णतया विनिश्चय के लिए दिए गए कारणों से भिन्न होता है । इस न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि जब जमानत मंजूर किए जाने का आदेश अभिलेख पर उपलब्ध महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा करके और कारण दिए बिना पारित किया जाता है तब ऐसा करना अनुचित होगा तथा विधि के सिद्धांतों के प्रतिकूल होगा । ऐसे आदेश के अन्तर्गत ही जमानत रद्द किए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत करने हेतु आधार का उपबंध किया जाता है । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जमानत रद्द किए जाने का यह आधार उस आधार से भिन्न है जो अभियुक्त के दुराचरण से या कुछ नए तथ्यों से उद्‌भूत होता है ।

14. वर्तमान मामला पहले वाली श्रेणी के अन्तर्गत आता है क्योंकि अपीलार्थी इस आधार पर जमानत रद्द किए जाने की ईप्सा नहीं कर रहा है कि प्रत्यर्थी ने जमानत मंजूर किए जाने के पश्चात् दुर्व्यवहार किया है या कुछ ऐसे नए तथ्य सामने आए हैं जिनके आधार पर जमानत रद्द किया जाना आवश्यक है । ऐसा मामला भी हो सकता है जिसमें अभियुक्त के आचरण या जमानत मंजूर किए जाने के बाद की घटनाओं पर विचार किया जाना चाहिए । दूसरी ओर जब जमानत मंजूर किए जाने के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी जाती है कि स्वयं जमानत मंजूर किया जाना विधि के सिद्धांत के प्रतिकूल है, ऐसे आदेश का न्यायिक पुनर्विलोकन करते हुए इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि जमानत मंजूर करने में न्यायालय द्वारा अधिकारिता का दुरुपयोग या मनमाना कृत्य किया गया है या नहीं । यदि ऐसा किया गया है, तब भी इस न्यायालय को ऐसे आदेश में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है ।

---

[1] (2001) 6 एस. सी. सी. 338.

15. उपर्युक्त मत को ध्यान में रखते हुए हम इस मामले में चर्चा करेंगे ।

16. अभिलेख पर यह उपलब्ध है कि जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रत्यर्थी के विरुद्ध दर्ज कराई गई थी और अन्वेषण के आधार पर उसे गिरफ्तार किए जाने की ईप्सा की गई थी, तब प्रत्यर्थी उक्त गिरफ्तारी से बच रहा था । इतना ही नहीं, अभियोजन पक्ष को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 82 के अधीन विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन फाइल करना पड़ा और विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 83 के अधीन भी कार्यवाही की । मामले का इस प्रक्रम पर पहुंचने के बाद ही प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण किया और उसको गिरफ्तार किया गया ।

17. प्रत्यर्थी का आवेदन अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा तारीख 30 मई, 2016 को खारिज कर दिया गया । जमानत खारिज किए जाने के इस आदेश को पारित करते समय विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजक द्वारा यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध सीधे और विशिष्ट अभिकथन किए गए हैं कि उसने अप्राप्तवय कन्या के साथ बलात्संग किया है और अन्वेषण के दौरान जब अभियुक्त पी. ओ. हाउस में टहल रहा था, आहत ने उसे पहचान लिया था । यह भी विचार किया गया है कि सह-अभियुक्त संदीप सुमन **उर्फ** पुष्पांजय की जमानत की प्रार्थना भी पहले ही खारिज कर दी गई है और प्रत्यर्थी का मामला इससे अधिक गंभीर स्थिति में है और प्रत्यर्थी का आपराधिक इतिहास है जैसा कि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई केस डायरी से स्पष्ट है ।

18. अभिलेख पर यह भी उपलब्ध है कि अभियोक्त्री के परिवार के सदस्यों ने यह दावा करते हुए अभ्यावेदन दिए थे कि प्रत्यर्थी अभियोक्त्री के परिवार के सदस्यों को धमकी देता है । इसके अतिरिक्त अभियोक्त्री की ओर से साक्षियों और उसके परिवार के सदस्यों को धमकी देने की अनेक शिकायतों पर विचार करने पर राज्य प्रशासन ने अभियोक्त्री और उसके परिवार की सुरक्षा और संरक्षा के लिए 1 + 4 के रूप में पुलिसकर्मियों को तैनात किया ।

19. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के बावजूद उच्च न्यायालय ने औपचारिक और सरसरी टिप्पणी की है कि ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह प्रदर्शित हो कि अभियुक्त ने साक्ष्य में छेड़छाड़ करके विचारण की प्रक्रिया में हस्तक्षेप किया है । दूसरी ओर, उच्च न्यायालय ने मामले के

गुणागुणों/साक्ष्य पर चर्चा की है जिसकी इस प्रक्रम पर कोई आवश्यकता नहीं थी । निःसंदेह, यदि किसी मामले में न्यायालय को यह प्रतीत होता हो कि अभियुक्त के विरुद्ध मामला पूर्णतया मिथ्या है तब जमानत आवेदन पर विचार करने के लिए यह एक सुसंगत कारक हो सकता है । तथापि, इस प्रक्रम पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान मामला इस श्रेणी के अन्तर्गत आता है । इस पर विचारण के दौरान ही विचार किया जाना चाहिए । अतः, विशेष रूप से, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए था कि अभियुक्त के न्याय से दूर भागने की कोई संभावना है या नहीं या इस बात की कोई युक्तियुक्त आशंका है या नहीं कि जमानत पर छोड़े जाने के पश्चात् विचारण में कोई छेड़छाड़ करेगा । इन पहलुओं पर उच्च न्यायालय द्वारा समुचित रूप से उतनी गंभीरता के साथ विचार नहीं किया गया है जितना किया जाना चाहिए था । ऐसा किए जाने पर उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग किए गए विवेकाधिकार में हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त आधार बन जाता है ।

20. उच्च न्यायालय ने एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू को अनदेखा किया है अर्थात् सह-अभियुक्त के जमानत आवेदन को खारिज करते समय उसने जल्दबाजी में आदेश पारित किया है बल्कि दिन-प्रतिदिन विचारण करके यह सुनिश्चित किया है कि विचारण की प्रक्रिया अतिशीघ्र पूर्ण हो जाए । जब फास्ट ट्रैक विचारण का आदेश पहले ही पारित कर दिया गया था और सह-अभियुक्त संदीप सुमन **उर्फ** पुष्पांजय की ओर से फाइल किए गए जमानत आवेदन को खारिज भी कर दिया गया था तब उच्च न्यायालय से, प्रत्यर्थी के आवेदन पर विचार करते समय, यह प्रत्याशा की जाती है कि वह इस महत्वपूर्ण तथ्य को भी ध्यान में रखे । इसके अतिरिक्त, विधि का एक सामान्य कथन देते हुए कि अभियुक्त निर्दोष है जब तक कि उसे दोषी साबित न किया जाए, बालक संरक्षण अधिनियम की धारा 29 के उपबंधों को विचार में नहीं लिया गया है जो कि निम्न प्रकार हैं :–

> "**29. कतिपय अपराधों के बारे में उपधारणा :** जहां किसी व्यक्ति को इस अधिनियम की धारा 3, धारा 5, धारा 7 और धारा 9 के अधीन किसी अपराध को करने या दुष्प्रेरण करने या उसको करने का प्रयत्न करने के लिए अभियोजित किया गया है वहां विशेष न्यायालय तब तक यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने, यथास्थिति, वह अपराध किया है, दुष्प्रेरण किया है या उसको करने का प्रयत्न किया है जब तक कि इसके विरुद्ध साबित नहीं कर दिया

जाता है ।"

21. उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए हमारी यह राय है कि इस प्रक्रम पर प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर किए जाने के लिए यह उचित मामला नहीं है और इस संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा गंभीर रूप से त्रुटि की गई है । हम **कंवर सिंह मीणा** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले को उद्धृत करना चाहेंगे :—

"10........ दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439 (2) के अधीन आवेदन रद्द करते समय मुख्य रूप से न्यायालय द्वारा इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि अभियुक्त साक्ष्य में छेड़छाड़ कर सकता है या नहीं या न्याय की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने का प्रयास कर सकता है या नहीं या न्याय की प्रक्रिया में हस्तक्षेप कर सकता है या नहीं । किंतु, इतना काफी नहीं है । उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय ऐसे मामलों में भी जमानत रद्द कर सकते हैं जिनमें जमानत मंजूर किए जाने का आदेश गंभीर शिथिलताओं से ग्रसित हो और उनसे अन्याय होता हो । यदि जमानत मंजूर करने वाला न्यायालय उन सुसंगत तथ्यों को अनदेखा करता है जिनसे अभियुक्त का अपराध में आलिप्त होना प्रथमदृष्ट्या उपदर्शित होता हो या न्यायालय ऐसे असंगत तथ्यों पर विचार करता हो जिनका अभियुक्त को जमानत मंजूर किए जाने के प्रश्न से कोई संबंध न हो, तब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय जमानत रद्द करने में न्यायोचित होगा । ऐसे आदेश जमानत मंजूर किए जाने की शक्ति से संबंधित सुस्थापित सिद्धांतों के विरुद्ध होते हैं । ऐसे आदेश विधिक रूप से शिथिल और असाध्य होते हैं जिनसे अन्याय होता है और उन प्रभावी परिस्थितियों को ध्यान में रखे बिना पारित किए जाते हैं जैसे अभियुक्त का साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करना, उसका न्याय से भाग जाना आदि, ऐसी स्थिति में न्यायालय को जमानत रद्द करने से रोका नहीं जा सकता । उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय ऐसे आदेशों को रद्द करने के लिए आबद्ध है विशेषकर ऐसी स्थिति में जब ऐसे अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जाए जो जघन्य अपराध में आलिप्त हो क्योंकि परिणामस्वरूप, ऐसा करना अभियोजन पक्षकथन को निर्बल बनाना होता है और इसका समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । यह कहने

---

[1] (2012) 12 एस. सी. सी. 180.

की आवश्यकता नहीं है कि यद्यपि इस न्यायालय को व्यापक शक्ति प्राप्त है, इस न्यायालय को जमानत मंजूर किए जाने और रद्द किए जाने दोनों ही के लिए ये सिद्धांत बराबर-बराबर लागू होते हैं ।

18........... मामले पर कुल मिलाकर विचार करते हुए हमारी यह राय है कि न्याय के हित के लिए अभियुक्त को जमानत मंजूर करने का आक्षेपित आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है और पुलिस को अभियुक्त् को अभिरक्षा में लेने का निदेश दिया जाना आवश्यक है ...... ।"

22. जैसा कि हमने प्रारंभ में ही उपदर्शित किया है कि हमारे समक्ष विचार के लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि विचारण निष्पक्ष होना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि न्याय किया गया है । यह केवल तब हो सकता है जब साक्षी बिना किसी भय के स्वतंत्रतापूर्वक सत्यता के साथ अभिसाक्ष्य दें और इस न्यायालय का समाधान हो गया है कि वर्तमान मामले में ऐसा तभी हो सकता है जब प्रत्यर्थी को जमानत पर न छोड़ा जाए । निष्पक्ष विचारण के महत्व पर **पंचानन मिश्रा** बनाम **दिगम्बर मिश्रा और अन्य**[1] वाले मामले में विचार किया गया है और उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर किए गए जमानत के आदेश को निम्न निबंधनों में अपास्त किया गया है :–

"13. हमने दोनों पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई पारस्परिक विरोधी दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है । जमानत रद्द किए जाने का उद्देश्य निष्पक्ष विचारण बनाए रखना है और समाज के साथ यह न्याय करना है कि अभियुक्त जघन्य अपराध से संबंधित साक्ष्य में छेड़छाड़ करने से रुका रहे और यदि ऐसे मामले में विलंब किया जाता है तब जमानत रद्द किए जाने का उद्देश्य पूरा नहीं होगा और इससे अभियोजन पक्षकथन तथा उसके हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जब ऐसे जघन्य अपराध में किसी व्यक्ति को जमानत पर छोड़ दिया जाता है जिनमें दंड अत्यधिक होता है, तब अभियुक्त ऐसे दंड से बचने के लिए अभियोजन साक्षियों पर दबाव डालने जैसे क्रियाकलाप में आलिप्त हो जाता है, आहत के परिवार के सदस्यों को धमकी देता है और कानून और व्यवस्था बनाए रखने में बाधा उत्पन्न करता है ।"

---

[1] (2005) 3 एस. सी. सी. 143.

23. ऐसा मत **तलब हाजी हुसैन** बनाम **मधुकर पुरुषोत्तम मोंडकर और अन्य**[1] वाले मामले में भी निम्न प्रकार व्यक्त किया है :–

> "6...... न्याय के हित के लिए इससे महत्वपूर्ण अपेक्षा कोई और नहीं हो सकती कि निष्पक्ष बाधा रहित विचारण किया जाए और ऐसे निरन्तर निष्पक्ष विचारण के लिए उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों की ईप्सा की जाती है जिसका अवलंब अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसे मामलों में लिया जाता है जिनमें यह अभिकथन किया गया हो कि अभियुक्त साक्षियों को धमकी देकर निष्पक्ष विचारण किए जाने में रुकावट पैदा कर रहे हैं । इसी प्रकार जब कोई अभियुक्त, जिसे जमानत पर छोड़ा गया है, जमानत आदेश का उल्लंघन करता है और विचारण से बचने के लिए विदेश भागने का प्रयास करता है, तब यह ऐसा मामला कहलाएगा जिसमें अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जाना अभियुक्त को निष्पक्ष विचारण के लिए न्यायालय में पेश करने का आदेश जारी करने हेतु न्यायोचित होगा ताकि अभियुक्त यह लाभ न ले सके कि उसे जमानत पर छोड़ा गया है और वह अन्य किसी देश के लिए फरार हो सकता है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है, यदि जमानत पर छोड़े जाने पर, अभियुक्त का पश्चात्वर्ती आचरण निष्पक्ष विचारण के प्रतिकूल दिखाई देता है और यदि अभियुक्त के विरुद्ध अन्य कोई उपचार उपलब्ध नहीं है तब ऐसे मामले में उच्च न्यायालय द्वारा अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जाना विधिसम्मत कहा जा सकता है .... ।"

24. हमने इस तथ्य पर पूरी तरह विचार किया है कि प्रत्यर्थी विचारणाधीन है और उसकी स्वतंत्रता भी एक सुसंगत परिस्थिति है । तथापि, महत्वपूर्ण परिस्थिति समाज का हित और मामले का निष्पक्ष विचारण है । इस प्रकार, निःसंदेह न्यायालयों को अभियुक्तों के जमानत आवेदन पर विचार करते समय रियायती दृष्टिकोण अपनाना चाहिए । तथापि, वर्तमान मामले में, यदि यह पाया जाता है कि निष्पक्ष विचारण में अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने पर उसके द्वारा बाधा उत्पन्न करने की संभावना है तब समाज के हित में निष्पक्ष विचारण अभियुक्त के निजी हित से अधिक महत्वपूर्ण होगा जिसमें एक ओर अभियुक्त की स्वतंत्रता और दूसरी ओर समाज के हित में निष्पक्ष विचारण का संतुलन बनाना होगा ।

---

[1] [1958] एस. सी. आर. 1226.

जब साक्षी न्यायालय में ठीक प्रकार अभिसाक्ष्य देने योग्य नहीं होते हैं तब दोषसिद्धि की दर कम हो जाती है और बहुत बार घोर अपराधी दोषसिद्धि से बच निकलते हैं । इससे समाज का दांडिक न्याय तंत्र से विश्वास उठने लगता है । न्याय के हित के लिए यह आवश्यक है कि यह सुनिश्चित किया जाए कि दांडिक न्याय तंत्र प्रभावी रूप से ठीक प्रकार और निष्पक्ष रीति में कार्य कर रहा है और इसे ऐसी स्थितियों में अत्यधिक महत्व दिया जाना चाहिए । कुल मिलाकर, यदि साक्षियों को धमकी दिए जाने से निष्पक्ष विचारण प्रभावित होता है तब यही कहा जाएगा कि ऐसा अभियुक्त के दुर्व्यवहार से हो रहा है और अभियुक्त को उसके परिणाम भुगतने चाहिए । इस स्थिति को बहुत स्पष्ट शब्दों में इस न्यायालय द्वारा **मसरूर** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में व्यक्त किया गया है :–

> "15. इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता अत्यधिक महत्वपूर्ण है और न्यायालय द्वारा उसकी गंभीरता के साथ संरक्षा की जानी चाहिए । फिर भी, ऐसी संरक्षा प्रत्येक स्थिति में मान्य नहीं हो सकती । किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता के महत्वपूर्ण अधिकार और समाज के हित के बीच संतुलन होना चाहिए । किसी अपराध के अभियुक्त की स्वतंत्रता मामले की संवेदनशीलता पर निर्भर करती है । यह संभव है कि किसी स्थिति में समाज का संचयी हित किसी व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता के अधिकार से अधिक महत्वपूर्ण हो सकता है । इस संदर्भ में, इस न्यायालय द्वारा सहजाद हसन खान **बनाम** इश्तियाक हसन खान [(1987) 2 एस. सी. सी. 684] वाले मामले के पृष्ठ 691 पर पैरा 6 में निम्न मत व्यक्त किया गया है –
>
>> '6.... स्वतंत्रता की संरक्षा विधि की प्रक्रिया के अनुसार की जानी चाहिए जिसमें अभियुक्त के हित, आहत के उन निकट संबंधियों को ध्यान में रखना चाहिए जिन्होंने अपने सदस्य का जीवन गंवाया है और स्वयं को असहाय महसूस करते हैं और उनका यह विश्वास है कि संसार में कोई न्याय नहीं है तथा समाज के संचय हित को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ताकि पक्षकारों का विश्वास न्यायालयों आदि से न उठे और वे निजी प्रतिशोध की भावना न रखें ।'

---

[1] (2009) 14 एस. सी. सी. 286.

25. इन दोनों हितों के बीच संतुलन बनाए रखने के इस पहलू पर इस न्यायालय द्वारा **नीरू यादव** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में भी निम्न शब्दों में मत व्यक्त किया गया है :–

> "16. हमारे समक्ष यह मुद्दा प्रस्तुत किया गया है कि यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को बातिल कर सकता है या नहीं और द्वितीय प्रत्यर्थी की स्वतंत्रता को न्यून कर सकती है या नहीं । हम इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं कि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता अमूल्य है । यह संवैधानिक अधिकार पर आधारित है और मानव अधिकार के सिद्धांत पर निर्भर करती है । मूल रूप से स्वतंत्रता नैसर्गिक अधिकार है । वास्तव में, कुछ लोग इसे जीवन की व्याकरण भी कहते हैं । कोई भी व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता को खोना या नष्ट करना नहीं चाहेगा चाहे उसे पूरे संसार की संपत्ति क्यों न दे दी जाए । कई शताब्दियों से लोग स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, स्वतंत्रता न मिलने पर हीन भावना का अहसास होता है । किसी भी सभ्य समाज का आधार स्वतंत्रता का भाव है । कोई भी सभ्यता स्वतंत्रता के महत्व पर ही चलती है । इसे शिथिल और निश्चल नहीं किया जा सकता । किसी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता से वंचित करना उसके मन और तन पर दुष्प्रभाव डालना है । लोकतांत्रिक निकाय जो विधि के नियम से संबद्ध है, स्वतंत्रता की गंभीरतापूर्वक रक्षा करता है । किंतु आपातकालीन और महत्वपूर्ण परिस्थिति में किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता आत्यंतिक नहीं है । समाज अपने संचयी विवेक द्वारा विधि की प्रक्रिया के माध्यम से स्वतंत्रता प्रत्याहृत कर सकता है जो उसने किसी व्यक्ति को उस समय मंजूर की होती है जब वह व्यक्ति समाज के लिए खतरा बन जाए । किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमा इतनी नहीं बढ़ाई जा सकती कि उससे समाज में अनुशासनहीनता पैदा हो जाए । समाज अपने सदस्यों से जिम्मेदारी और जवाबदेही की प्रत्याशा करता है और उसके द्वारा यह वांछित है कि नागरिकों को विधि का पालन सामाजिक नियम के अनुसार करना चाहिए । कोई भी व्यक्ति समाज के प्रचलन में रुकावट पैदा करने का प्रयास नहीं कर सकता । यह अननुज्ञेय है । अतः, जब कोई व्यक्ति अनुशासनहीनता के आधार पर कार्य करता है जिसकी समाज निन्दा करता है, तब विधि के आधार पर कार्यवाही

---

[1] (2014) 16 एस. सी. सी. 508.

करनी ही चाहिए । इस प्रक्रम पर, न्यायालय का कर्तव्य बन जाता है । न्यायालय अपनी जिम्मेदारी से नहीं बच सकता और वह अपने तरीके से आदेश पारित नहीं कर सकता । न्यायालय को विधि के सुस्थापित मानदंडों का पालन करना ही होगा ।

17. वर्तमान मामले पर विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि जब यह आधार लिया गया था कि द्वितीय प्रत्यर्थी का आपराधिक इतिहास रहा है, तब उच्च न्यायालय के लिए यह आवश्यक था कि प्रत्येक पहलू की संवीक्षा करे और सरसरी तौर पर यह अभिलिखित न करे कि द्वितीय प्रत्यर्थी समता के आधार पर जमानत पाने का हकदार है । पूरी प्रमाणिकता के साथ यह मत व्यक्त किया जा सकता है कि यह समता का मामला नहीं है, अतः, आक्षेपित आदेश [मिठ्ठन यादव **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य, दांडिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन सं. 31078/ 2014, तारीख 22 सितंबर, 2014 को विनिश्चित (इलाहाबाद)] से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त, वास्तव में अभिलेख पर यह उपलब्ध है कि द्वितीय प्रत्यर्थी को अन्य जघन्य अपराधों के लिए आरोपित किया गया है । उच्च न्यायालय इस पर विचार करने में असफल रहा है । अतः, यह आदेश निष्क्रिय हो जाता है क्योंकि इस न्यायालय द्वारा इस आदेश का अनुमोदन किया जाना अन्याय की कोटि में आएगा, तद्नुसार हम इसे अपास्त करते हैं ।"

26. **रमेश और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में जो दो दिन पहले ही अर्थात् तारीख 22 नवंबर, 2016 को विनिश्चित किया गया था, इस न्यायालय ने पक्षद्रोही होने वाले साक्षियों की समस्या की चर्चा की है और यदि कोई साक्षी गलत कारणों से पक्षद्रोही हो जाता है तब आपराधिक न्यायतंत्र की मर्यादा प्रभावित होती है । हम उक्त निर्णय के पैराओं को उद्धृत करना चाहेंगे :–

40. अनेक मामलों का विश्लेषण करने पर, निम्न कारण विरचित किए जा सकते हैं जो साक्षियों को न्यायालय के समक्ष अपने कथन से विचलित करते हैं और साक्षी पक्षद्रोही हो जाते हैं –

(i) धमकी/अभित्रास,

(ii) कई साधनों से उत्प्रेरित करना,

---

[1] 2014 की दांडिक अपील सं. 25-26, निर्णय की तारीख 22.11.2016.

(iii) अभियुक्त द्वारा शक्ति और धन का प्रयोग किया जाना,

(iv) बनावटी साक्षी का प्रयोग किया जाना,

(v) दीर्घकालिक विचारण,

(vi) अन्वेषण और विचारण के दौरान साक्षियों द्वारा कठिनाइयों का सामना किया जाना, और

(vii) साक्षियों के पक्षद्रोही होने को रोकने के लिए स्पष्ट विधान का विद्यमान न होना ।

41. साक्षियों के पक्षद्रोही होने के मुख्य कारणों में एक कारण धमकी और अभित्रास है । बेन्थम ने कहा है : साक्षी न्याय के आंख और कान होते हैं । जब साक्षी न्यायालय में सही साक्ष्य नहीं दे पाते हैं, तब दोषसिद्धि की दर कम हो जाती है और प्रायः घोर अपराधी दोषसिद्धि से बच जाते हैं । इससे समाज का विश्वास आपराधिक न्यायतंत्र में कम हो जाता है । यही कारण है कि साक्षियों की संरक्षा के लिए बहुत सी चर्चाएं की गईं हैं और बहुत से लोगों द्वारा समाज से मांग की गई है कि वह साक्षियों की सुरक्षा के लिए सटीक भूमिका निभाएं, विशेषकर ऐसे संवेदनशील मामलों में विचारण किया जाना चाहिए जिनमें शक्तिशाली व्यक्ति अन्तर्वलित होते हैं और जिन्हें राजनैतिक संरक्षण प्राप्त होता है और जो शक्ति और धन का प्रयोग कर सकते हैं ताकि विचारण की प्रक्रिया दूषित और विचलित होने और सत्य नष्ट होने से बच सके । इस संबंध में जाहिरा हबीबुल्लाह वाले मामले में भी कड़ा और प्रभावशाली संदेह दिया गया है ।

42. साक्षियों को सत्य अभिसाक्ष्य बिना किसी भय के देने के लिए संरक्षा संबंधी उपायों को न्यायोचित ठहराते हुए दांडिक न्यायतंत्र, 2003 में सुधार पर न्यायमूर्ति मलिमठ समिति की रिपोर्ट निम्न प्रकार है –

"11.3 एक अन्य बड़ी समस्या साक्षियों और उनके परिवार के सदस्यों की सुरक्षा से संबंधित है जो विभिन्न प्रक्रम पर भय का सामना करते हैं । उन्हें प्रायः धमकी दी जाती है और धमकी की गंभीरता मामले की परिस्थिति और अभियुक्त और उसके परिवार की पृष्ठभूमि पर निर्भर करती है । बहुत बार महत्वपूर्ण

साक्षियों को न्यायालय में साक्ष्य देने के पूर्व धमकी दी जाती है या उन्हें क्षति पहुंचाई जाती है । यदि साक्षी धमकी के बावजूद न माने तब उसकी हत्या भी कर दी जाती है । ऐसी परिस्थितियों में साक्षी तब तक साक्ष्य देने के लिए आगे नहीं आएगा जब तक कि उसे संरक्षा का आश्वासन न दे दिया जाए या उसका नाम और हुलिया छिपाने की गारंटी न दे दी जाए । साक्षियों और उसके परिवार के सदस्यों की संरक्षा के लिए व्यापकार्थक विधि प्रवृत्त किए जाने का समय आ चुका है ।"

43. भारतीय विधि आयोग की 198वीं रिपोर्ट (साक्षी की शनाख्त की संरक्षा और साक्षी संरक्षा कार्यक्रम पर रिपोर्ट) में की गई मताभिव्यक्तियां लगभग इसी प्रकार की हैं जिन्हें निम्न चर्चा में देखा जा सकता है –

"कारण का पता लगाना कठिन नहीं है । महिलाओं और किशोरों के विरुद्ध आतंकवाद और लैंगिक अपराधों के आहतों के मामले में, हम समाज के उस वर्ग के लोगों के मामले पर विचार कर रहे हैं जो सबसे असुरक्षित महसूस करते हैं, चाहे वे आहत हों या साक्षी । आहतों और साक्षियों को अपने जीवन और संपत्ति या अपने नातेदारों के जीवन और संपत्ति को नुकसान पहुंचाने का भय रहता है । यह स्पष्ट है कि भारतीय दंड संहिता, 1860 और अन्य विशेष अधिनियमों के अधीन गंभीर अपराध के मामलों में जिनमें से हमने कुछ मामलों को ऊपर निर्दिष्ट किया है, उनमें आहतों और साक्षियों की ऐसी ही स्थिति दर्शाई गई है । विशेष कानूनों के अधीन आहतों और साक्षियों को ऐसा भय अधिकतर सामान्य और उद्‌घोषित हो सकता है, गंभीर अपराधों से संबंधित मामलों में आहत और साक्षियों का भयभीत होना कम स्वाभाविक नहीं है । स्पष्टतः, विशेष अपराधों के मामलों में यदि विचारण अभियुक्त तथा आहतों/साक्षियों अर्थात् दोनों के लिए निष्पक्ष है, तब इस बात का कोई कारण नहीं है कि भारतीय दंड संहिता, 1860 के अधीन गंभीर प्रकृति के सामान्य अपराधों के मामलों में विचारण उतना ही निष्पक्ष किया जाएगा । दोनों ही प्रकार के मामलों में भय या खतरा या उसके जैसी स्थिति हो सकती है । यही कारण है कि अन्य देशों में बहुत से सामान्य कानूनों के अधीन आहतों और साक्षियों को

संरक्षा दिए जाने का उपबंध किया गया है ।"

27. निःसंदेह, अभियोक्त्री की परीक्षा पहले ही की जा चुकी है । तथापि, अभियोक्त्री के पिता और बहन सहित अन्य महत्वपूर्ण साक्षियों की परीक्षा अभी कराई जानी शेष है । अभिलेख के अनुसार, अभियोक्त्री तथा उसके परिवार के सदस्यों को धमकी दी गई है । अतः, हम यह महसूस करते हैं कि उच्च न्यायालयों को, हमारे द्वारा बताए गए सभी महत्वपूर्ण और सारभूत पहलुओं को अनदेखा करते हुए, जो सुसंगत हैं, प्रत्यर्थी को जमानत मंजूर नहीं करनी चाहिए थी ।

28. पूर्वगामी कारणों के आधार पर हम एतद्द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हुए यह अपील मंजूर करते हैं । यदि प्रत्यर्थी को पहले ही छोड़ दिया गया है, तब वह अभ्यर्पण करेगा और/या उसे तत्काल अभिरक्षा में लिया जाएगा । यदि वह अभी तक जेल में है तब वह इस निर्णय के परिणामस्वरूप जेल में ही रहेगा ।

29. इसके पूर्व कि हम इस निर्णय का निपटारा करें, हम यह स्पष्ट कर देते हैं कि इस न्यायालय ने इस मामले के गुणागुण पर कोई भी मत व्यक्त नहीं किया है । प्रत्यर्थी उस पर विरचित किए गए आरोपों का दोषी है या नहीं, यह मामले के अपने गुणागुणों के आधार पर विचारण के दौरान अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का विश्लेषण करने के पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जाएगा ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./पां.

[2017] 3 उम. नि. प. 92

अंजन दास गुप्ता

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य

25 नवंबर, 2016

न्यायमूर्ति पिनाकी चन्द्र घोष और न्यायमूर्ति अशोक भूषण

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – जहां मामले के संपूर्ण अभियोजन साक्ष्य की संवीक्षा, संबद्ध पक्षकारों की दलीलों और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के पूर्व दिनांकित और समय पूर्व होने के पहलू पर विचार करने से यह साबित होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सही थी और छुटपुट विसंगतियों को छोड़कर प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य विश्वसनीय और विश्वासोत्पादक थे, वहां साक्ष्य के उचित और युक्तियुक्त मूल्यांकन और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सही होने के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध ठहराया जाना न्यायसंगत है ।

संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि 16 जून, 2000 को 4.50 बजे अपराह्न में मृतक दिबोल कुमार घोष भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (एम), [अर्थात् सीपीआई (एम)] आर बी सी रोड, नेहाटी, उत्तर 24 परगना के पार्टी कार्यालय में बैठा हुआ था और उसी समय एक मारुति जिप्सी आकर रुकी जिसमें से अपीलार्थी उतरकर बाहर आए । उसी समय मित्र बागन रोड की ओर से दो साइकिलों पर चार व्यक्ति ठीक इस कार्यालय के सामने आकर रुके । अपीलार्थी ने दिबोल कुमार की ओर इशारा करते हुए उन चार व्यक्तियों को बताया जो वहां दो साइकिलों से पहुंचे थे और उनमें से एक व्यक्ति ने दिबोल कुमार घोष पर पाइप-गन से गोली चलाई । दोनों साइकिलों को छोड़कर चारों व्यक्ति मारुति जिप्सी में बैठ गए और तेजी से गौरी पुर की ओर रवाना हो गए । दिबोल कुमार घोष के पुत्र ने, जो अपनी दवाई की दुकान पर अर्थात् "माँ मेडिकल स्टोर" पर बैठा हुआ था जो आर बी सी रोड नेहाटी, उत्तर 24 परगना पर सीपीआई (एम) के दफ्तर से 5 क्यूबिट की दूरी पर है, उपरोक्त घटना देखी और सीपीआई (एम) के दफ्तर की ओर दौड़ा और उसने अपने पिता दिबोल कुमार घोष को देखा कि उसके पिता के वक्ष में बंदूक की गोलियों से क्षति पहुंची है और वह फर्श पर पड़ा हुआ था । उसका बड़ा भाई संदीप घोष आवाज सुनकर पार्टी के दफ्तर पर पहुंचा । इसके पश्चात् आहत दिबोल कुमार घोष को ग्रीन व्यू नर्सिंग

होम ले जाया गया जहां पर उसे 5 बजे अपराह्न में चिकित्सकों द्वारा मृत घोषित कर दिया गया । पुलिस थाना नेहाटी के पुलिस पदधारियों को दिबोल कुमार घोष की हत्या की सूचना प्राप्त हुई जो तत्काल ही घटनास्थल की ओर रवाना हो गए । 5.15 बजे अपराह्न में आर टी मैसेज प्राप्त होने के पश्चात् पुलिस उपनिरीक्षक तपन कुमार भी 5.40 बजे अपराह्न में घटनास्थल पर पहुंचा और 9.05 बजे अपराह्न तक वहां मौजूद रहा । संदीप घोष लगभग 7.30-8.00 बजे अपराह्न में अरुण डे के साथ पुलिस थाने पहुंचा था । अरुण डे ने संदीप घोष के बताए अनुसार शिकायत लिखी और लिखित शिकायत पुलिस थाने में प्रस्तुत की गई । इस संबंध में 2000 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 99 दंड संहिता की धारा 302/34 और आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25/27 के अधीन अपराध के लिए दर्ज कराई गई जिसमें अभियुक्त अंजन दास गुप्ता, विश्वनाथ पॉल, सिन्टू **उर्फ** सरोज रॉय और भोला कुन्दू को नामित्त किया गया है । पुलिस उपनिरीक्षक तपन कुमार को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उस समय प्राप्त हुई जब वह घटनास्थल पर मौजूद था । उपनिरीक्षक माणिक चक्रवर्ती ने तपन कुमार के बताए अनुसार कांस्टेबल की सहायता से शव की मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट ग्रीन व्यू नर्सिंग होम में 10.35 बजे अपराह्न में तैयार की । देर रात्रि में मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट तैयार करने के पश्चात्, शव को शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् अभियुक्त अंजन दास गुप्ता, भोला कुन्दू, सिन्टू **उर्फ** सरोज रॉय और विश्वनाथ पॉल को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध कारित किए जाने के लिए आरोपित किया गया और वासुवेद पॉल को दंड संहिता की धारा 212 के अधीन अपराध के लिए आरोपित किया गया । अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में 31 साक्षियों की परीक्षा कराई ; अभियोजन पक्ष ने दस्तावेजी साक्ष्य अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 164 के अधीन अभिलिखित कथन और कतिपय अन्य दस्तावेजी साक्ष्य भी प्रस्तुत किया । अभियुक्तों ने कोई भी मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया । अभियुक्तों की परीक्षा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कराई गई । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने दंड संहिता की धारा 212 के अधीन अपराध से अभियुक्त विश्वनाथ पॉल को और धारा 302/34 के अधीन अपराध से अन्य सभी अभियुक्तों को धारा 302/34 के अधीन अपराध से दोषमुक्त कर दिया । राज्य ने दोषमुक्ति के इस आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की । शिकायतकर्ता ने भी 2002 का दांडिक पुनरीक्षण आवेदन 2263 फाइल किया है जिसमें उसने दोषमुक्ति के आदेश को चुनौती दी है । उच्च

न्यायालय ने तारीख 16 फरवरी, 2006 के अपने आदेश द्वारा दोषमुक्ति के आदेश को अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल के संबंध में अपास्त कर दिया । तथापि, उच्च न्यायलय ने सिन्टू उर्फ सरोज रॉय और भोला कुन्दू की दोषमुक्ति की पुष्टि की । वासुदेव पॉल की दोषमुक्ति की भी पुष्टि की गई । अपीलार्थी अंजन दास गुप्ता को 2,000/- रुपए के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया गया । अंजन दास गुप्ता ने यह अपील अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश को चुनौती देते हुए फाइल की है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामला एक ऐसा मामला है जिसमें तारीख 16 जून, 2000 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित किए जाने से ही यह साबित हो गया है और विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार भी किया गया है, इस प्रकार पुलिस थाने से मजिस्ट्रेट के न्यायालय को तारीख 22 जून, 2000 को मात्र प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भेजना ऐसा आधार नहीं बन सकता जिससे प्रतिकूल उपधारणा की जा सके । उपरोक्त चर्चा से इस न्यायालय का यह मत है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उचित है और विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने तथा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को महत्व न देने में त्रुटि की है । विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा निकाले गए निष्कर्ष कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में छलसाधन किया गया है, त्रुटि पूर्ण है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट ऊपर उल्लिखित साक्ष्य द्वारा साबित की गई है । इस प्रकार, सेशन न्यायाधीश के विनिश्चय में अभियोजन पक्षकथन को त्यक्त करने का जो आधार लिया गया है, अभिखंडित किया जाता है । अब न्यायालय सेशन न्यायाधीश द्वारा मौखिक साक्ष्य पर निकाले गए निष्कर्ष पर विचार करेगा । मृतक और अभियुक्त दोनों एक ही स्थान के निवासी हैं । इस घटना को न्यायालय में प्रस्तुत हुए प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों सहित कई व्यक्तियों ने देखा था और उन्होंने अभियोजन पक्षकथन को साबित किया है जिनमें संदीप घोष (अभि. सा. 1), विजय दास (अभि. सा. 2), कमल नाथ (अभि. सा. 3), मनबेन्द्र नाग (अभि. सा. 4), प्रशांत घोष (अभि. सा. 6), शशांक नाथ (अभि. सा. 10) और शंकर घोष (अभि. सा. 21) हैं । मृतक का पुत्र संदीप घोष (अभि. सा. 1) अपने मेडिकल स्टोर "माँ मेडिकल स्टोर" पर मौजूद था जो सीपीआई(एम) के कार्यालय से पांच क्यूबिट की दूरी पर है । इस प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य में यह कथन किया गया है कि 4.50 बजे अपराह्न में जब वह अपनी दुकान पर बैठा हुआ था उसने एक मारुति जिप्सी नेहाटी स्टेशन की ओर से आती हुई देखी और वह आर बी सी रोड पर मित्रपाड़ा और आर बी सी रोड के चौराहे को पार

करके पार्क कर दी गई । उसने विश्वनाथ पॉल और अंजन दास गुप्ता को उक्त मोटरवाहन से उतरकर आते हुए देखा और उसी क्षण चार लड़के जिनकी आयु लगभग 22/23 वर्ष थी, उक्त पार्टी कार्यालय के सामने दो साइकिलों से मित्रबागन की ओर से आए । इस साक्षी ने यह भी देखा कि अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल ने इशारा करके उसके पिता को दिखाया जो पार्टी के कार्यालय में बैठा हुआ था । उनमें से एक लड़के ने पाइप-गन निकाली और दिबोल घोष पर गोली चलाई । फिर अंजन दास गुप्ता ने यह देखा कि "हे गेची तारा तरी चले अइए" । इसके पश्चात् उक्त वाहन चला गया । अपनी प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने दृढ़तापूर्वक पृथक् साक्ष्य का उल्लेख किया है और वह विचलित नहीं हो सका है । विजय दास (अभि. सा. 2) घटना वाले दिन पार्टी के कार्यालय के द्वार पर बैठा हुआ था और कार्यालय के अंदर दिबोल घोष बैठा हुआ था । दिबोल घोष ने चाय पीने के पश्चात् विजय दास से पान लाने को कहा । विजय दास पार्टी के कार्यालय के सामने सड़क के दूसरी ओर स्थित पान की दुकान पर गया जहां उसने अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल को मारुति जिप्सी से आर बी सी रोड के चौराहे पर उतरते हुए देखा । उस समय चार व्यक्ति मित्रपाड़ा की ओर से दो साइकिलों पर आए । उन चारों में से एक लड़के के पास बंदूक थी और उसने दिबोल घोष पर गोली चलाई । इसके पश्चात् वे गौरी पुर की ओर चले गए । (पैरा 21, 22, 23 और 24)

कमल नाथ (अभि. सा. 3) ने, जिसकी दुकान सीपीआई(एम) पार्टी के कार्यालय के सामने फुटपाथ पर है, अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि तारीख 16 जून, 2000 को 3.00 से 4.00 बजे अपराह्न के दौरान वह पार्टी के कार्यालय में बैठा हुआ था और वह कार्यालय के कमरे से बाहर आया और सिगरेट पीने के लिए बाहर खड़ा हो गया । उस समय एक लाल रंग की जिप्सी वहां आई और उससे तीन क्यूबिट की दूरी पर आकर रुक गई जिसमें से अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल उतरकर आए । उसी समय दो साइकिलों से मित्रबागन की ओर से चार लड़के वहां आए । उनमें से दो लड़कों ने पार्टी के कार्यालय के बाहर से गोली चलाई और दिबोल घोष को गोली लगी । वे साइकिलें छोड़कर गौरी पुर की ओर जिप्सी से चले गए । ऐसा ही प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा दिया गया है जिनकी परीक्षा अभियोजन पक्ष द्वारा कराई गई है । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने इन कथनों में कतिपय विरोधाभास/फर्क इंगित किए हैं और यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा दिया गया साक्ष्य विश्वासोत्पादक नहीं है । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने यह भी मत व्यक्त

किया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा इस संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन साक्षियों के कथन अभिलिखित किए जाने में विलंब क्यों किया गया था । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा न्यायालय में दिए गए कथन को मात्र इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन जो कथन अभिलिखित किए गए हैं वे तत्काल अभिलिखित नहीं किए गए थे । अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 31) की प्रतिपरीक्षा से यह उपदर्शित नहीं होता है कि उससे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन साक्षियों के कथन अभिलिखित किए जाने में हुए विलंब के संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं मांगा गया है । उच्च न्यायालय ने संपूर्ण मौखिक साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन भी किया है और यह मत व्यक्त किया है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों में से एक या दो साक्षियों को छोड़कर, जिन्होंने कथन दिए जाने के दौरान कुछ अधिक बताने का प्रयास किया है, शेष सभी साक्षियों ने अपने पूर्वकथन के अनुसार ही साक्ष्य दिया है । प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया है कि सभी साक्षियों ने मारुति जिप्सी के घटनास्थल पर आने, अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल के वहां पहुंचने और दिबोल घोष को गोली चलाने का निर्देश देने के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है और तत्पश्चात् अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल ने उन व्यक्तियों को मारुति जिप्सी से भागने में सहायता भी की । विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य में कुछ छोटे-मोटे विरोधाभास इंगित किए गए हैं जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही त्यक्त किया गया है और उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष ठीक ही निकाला है कि अपराध की तथा अपीलार्थी अंजन दास गुप्ता का उसमें भाग लेना साबित हो गया है । उच्च न्यायालय ने यह ध्यान में रखा है कि ऐसे मामले में दोषमुक्ति की गई हो, दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील पर विचार करते समय यदि उपलब्ध साक्ष्य का समुचित रूप से मूल्यांकन करने के पश्चात् दो मत संभव हों, तब जो मत अभियुक्त के पक्ष में हो उसी को महत्व दिया जाना चाहिए । यह सुस्थापित है कि ऐसे मामले में जिसमें दोषमुक्ति का आदेश, साक्ष्य का गलत तरीके से मूल्यांकन करने के पश्चात् पारित किया गया है, तब अपील न्यायालय साक्ष्य का युक्तियुक्त रूप से पुनर्मूल्यांकन करने तथा दोषमुक्ति के आदेश से भिन्न आदेश देने के लिए स्वतंत्र है और ऐसी स्थिति में, न्यायालय को निचले न्यायालय के आदेश को उलटने में कोई भी संकोच नहीं करना चाहिए । (पैरा 28, 29, 31, 35 और 36)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2006]	(2006) 10 एस. सी. सी. 432 : **रबिन्द्र महतो और एक अन्य** बनाम **झारखंड राज्य ;**	20
[1973]	(1973) 3 एस. सी. सी. 114 : **अपरेन जोसफ** उर्फ **करंट कुंजुकुंजु और अन्य** बनाम **केरल राज्य ;**	16
[1972]	(1972) 2 एस. सी. सी. 640 : **पाला सिंह** बनाम **पंजाब राज्य ।**	19

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2006 की दांडिक अपील सं. 298.

2002 की सरकारी अपील सं. 10 और 2003 का दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 2263 में कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 16 फरवरी, 2006 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री कपिल सिब्बल (ज्येष्ठ अधिवक्ता), डी. एन. रे, आमिर खान, आदित पुजारी, संग्राम सिंह और (सुश्री) पल्लवी लंगर

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री मृणाल कांति मंडल, परिजात सिन्हा, रोहित दत्त, तारा चंद्र शर्मा, राजीव शर्मा, (सुश्री) नीलम शर्मा और रूपेश कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अशोक भूषण ने दिया ।

न्या. भूषण – यह अपील कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 16 फरवरी, 2006 को पारित उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा प्रदान की गई दोषमुक्ति के आदेश को उलटा है । उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और 2,000/- रुपए जुर्माने के साथ आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किया गया था ।

2. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि 16 जून, 2000 को 4.50 बजे अपराह्न में मृतक दिबोल कुमार घोष भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (एम), [अर्थात् सीपीआई (एम)] आर बी सी रोड, नेहाटी, . उत्तर 24 परगना के पार्टी कार्यालय में बैठा हुआ था और उसी समय एक मारुति जिप्सी आकर रुकी जिसमें से अपीलार्थी उतरकर बाहर आए । उसी समय मित्रबागन रोड की ओर से दो साइकिलों पर चार व्यक्ति ठीक इस कार्यालय के सामने आकर रुके । अपीलार्थी ने दिबोल कुमार घोष की ओर इशारा करते हुए उन चार व्यक्तियों को बताया जो वहां दो साइकिलों से पहुंचे थे और उनमें से एक व्यक्ति ने दिबोल कुमार घोष पर पाइप-गन से गोली चलाई । दोनों साइकिलों को छोड़कर चारों व्यक्ति मारुति जिप्सी में बैठ गए और तेजी से गौरी पुर की ओर रवाना हो गए । दिबोल कुमार घोष के पुत्र ने, जो अपनी दवाई की दुकान पर अर्थात् "माँ मेडिकल स्टोर" पर बैठा हुआ था जो आर बी सी रोड नेहाटी, उत्तर 24 परगना पर सीपीआई (एम) के दफ्तर से 5 क्यूबिट की दूरी पर है, उपरोक्त घटना देखी और सीपीआई (एम) के दफ्तर की ओर दौड़ा और उसने अपने पिता दिबोल कुमार घोष को देखा कि उसके पिता के वक्ष में बंदूक की गोलियों से क्षति पहुंची है और वह फर्श पर पड़ा हुआ था । उसका बड़ा भाई संदीप घोष आवाज सुनकर पार्टी के दफ्तर पर पहुंचा । इसके पश्चात् आहत दिबोल कुमार घोष को ग्रीन व्यू नर्सिंग होम ले जाया गया जहां पर उसे 5 बजे अपराह्न में चिकित्सकों द्वारा मृत घोषित कर दिया गया ।

3. पुलिस थाना नेहाटी के पुलिस पदधारियों को दिबोल कुमार घोष की हत्या की सूचना प्राप्त हुई जो तत्काल ही घटनास्थल की ओर रवाना हो गए । 5.15 बजे अपराह्न में आर टी मैसेज प्राप्त होने के पश्चात् पुलिस उपनिरीक्षक तपन कुमार भी 5.40 बजे अपराह्न में घटनास्थल पर पहुंचा और 9.05 बजे अपराह्न तक वहां मौजूद रहा । संदीप घोष लगभग 7.30-8.00 बजे अपराह्न में अरुण डे के साथ पुलिस थाने पहुंचा था । अरुण डे ने संदीप घोष के बताए अनुसार शिकायत लिखी और लिखित शिकायत पुलिस थाने में प्रस्तुत की गई । इस संबंध में 2000 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 99 दंड संहिता की धारा 302/34 और आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25/27 के अधीन अपराध के लिए दर्ज कराई गई जिसमें अभियुक्त अंजन दास गुप्ता, विश्वनाथ पॉल, सिन्टू **उर्फ** सरोज रॉय और भोला कुन्दू को नामित्त किया गया है ।

4. पुलिस उपनिरीक्षक तपन कुमार को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उस

समय प्राप्त हुई जब वह घटनास्थल पर मौजूद था । उपनिरीक्षक माणिक चक्रवर्ती ने तपन कुमार के बताए अनुसार कांस्टेबल की सहायता से शव की मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट ग्रीन व्यू नर्सिंग होम में 10.35 बजे अपराह्न में तैयार की । देर रात्रि में मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट तैयार करने के पश्चात्, शव को शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् अभियुक्त अंजन दास गुप्ता, भोला कुन्दू, सिन्टू **उर्फ** सरोज रॉय और विश्वनाथ पॉल को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध कारित किए जाने के लिए आरोपित किया गया और वासुदेव पॉल को दंड संहिता की धारा 212 के अधीन अपराध के लिए आरोपित किया गया ।

5. अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन के समर्थन में 31 साक्षियों की परीक्षा कराई ; अभियोजन पक्ष ने दस्तावेजी साक्ष्य अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 164 के अधीन अभिलिखित कथन और कतिपय अन्य दस्तावेजी साक्ष्य भी प्रस्तुत किया । अभियुक्तों ने कोई भी मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया । अभियुक्तों की परीक्षा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कराई गई ।

6. विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने दंड संहिता की धारा 212 के अधीन अपराध से अभियुक्त विश्वनाथ पॉल को और धारा 302/34 के अधीन अपराध से अन्य सभी अभियुक्तों को धारा 302/34 के अधीन अपराध से दोषमुक्त कर दिया । राज्य ने दोषमुक्ति के इस आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की । शिकायतकर्ता ने भी 2002 का दांडिक पुनरीक्षण आवेदन 2263 फाइल किया है जिसमें उसने दोषमुक्ति के आदेश को चुनौती दी है । उच्च न्यायालय ने तारीख 16 फरवरी, 2006 के अपने आदेश द्वारा दोषमुक्ति के आदेश को अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल के संबंध में अपास्त कर दिया । तथापि, उच्च न्यायालय ने सिन्टू **उर्फ** सरोज रॉय और भोला कुन्दू की दोषमुक्ति की पुष्टि की । वासुदेव पॉल की दोषमुक्ति की भी पुष्टि की गई । अपीलार्थी अंजन दास गुप्ता को 2,000/- रुपए के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया गया । अंजन दास गुप्ता ने यह अपील अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश को चुनौती देते हुए फाइल की है ।

7. हमने अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री कपिल सिब्बल, प्रत्यर्थी सं. 2 और पश्चिमी बंगाल राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री परिजात सिन्हा को

सुना है ।

8. अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री कपिल सिब्बल ने अपील के समर्थन में यह दलील दी है कि विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने अभिलेख पर प्रस्तुत संपूर्ण साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष ठीक ही निकाला है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य घटना की उत्पत्ति को लेकर अभियोजन वृत्तांत के प्रतिकूल है, इसलिए अपीलार्थी को दोषमुक्त करने में कोई भी गलती नहीं की गई है । यह भी दलील दी गई है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीखपूर्व और समयपूर्व की है और इस संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा ठीक ही अभिनिर्धारित किया गया है । काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभि. सा. 1 के साक्ष्य से, जिसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए लिखित शिकायत प्रस्तुत की थी, यह स्पष्ट हो जाता है कि वह 7.30 बजे अपराह्न के पश्चात् पुलिस थाने गया था, इसलिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 7.30-8.00 बजे अपराह्न के पहले दर्ज नहीं कराई जा सकती थी और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में सूचना प्राप्त होने के समय का उल्लेख 5.35 बजे अपराह्न के रूप में किया गया है जिससे स्पष्ट रूप से यह साबित होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट समयपूर्व की है ।

9. श्री कपिल सिब्बल ने यह भी दलील दी है कि वास्तव में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट तैयार किए जाने के पश्चात् दर्ज कराई गई थी और मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट साक्ष्य के अनुसार 10.35 बजे अपराह्न के पश्चात् तैयार की गई थी । यह भी दलील दी गई कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का तारीखपूर्व और समयपूर्व दर्ज कराया जाना अभियुक्त को इस मामले में मिथ्या फंसाने के आशय से किया गया था क्योंकि उस समय तक अभियोजन कहानी अज्ञात थी । श्री सिब्बल ने साक्षियों के कथनों में जैसाकि विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया गया, अनेक विरोधाभासों को निर्दिष्ट किया है । काउंसेल ने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को उलटने में त्रुटि की है । यह सुस्थापित है कि यदि साक्ष्य के आधार पर दो मत संभव हों और विचारण न्यायालय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग अभियुक्त की दोषमुक्ति के लिए करता है, तब उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के ऐसे आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अत्यधिक विलंब के साथ पुलिस थाने से भेजी गई थी । जो कि मजिस्ट्रेट के समक्ष 22 जुलाई, 2000 को ही भेजी जा सकती थी, इस बात से भी यह साबित होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उस समय और तारीख तक दर्ज नहीं कराई गई थी जिसका दावा किया गया है । यू. डी. मामला सं. 43/2000 का उल्लेख करने से प्रथम

इत्तिला रिपोर्ट संदिग्ध हो जाती है और उसकी प्रमाणिकता संशयपूर्ण हो जाती है और साथ ही मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट पर प्रश्न उठता है । अभियोजन पक्ष हत्या के हितों को साबित करने में असफल रहा है, इसलिए अपीलार्थी को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता था ।

10. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल तथा शिकायतकर्ता ने अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दी गई दलीलों का खंडन किया है । उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को उलटते हुए समुचित रूप से साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन किया है और अभियुक्त को दोषी पाते हुए उसकी दोषसिद्धि अभिलिखित की है । एक से अधिक प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने अपने साक्ष्य द्वारा घटनास्थल, बंदूक की गोली से मृत्यु कारित होना, अपराध में अपीलार्थियों का भाग लेना और घटनास्थल पर उनकी मौजूदगी जैसी परिस्थितियों को बिना किसी युक्तियुक्त संदेह के साबित किया है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने में कोई भी विलंब या विरोधाभास नहीं किया गया है । चूंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट एक असली दस्तावेज है, इसलिए विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट समयपूर्व की और तारीखपूर्व की है । उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर प्रस्तुत संपूर्ण साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् दोषमुक्ति के आदेश को ठीक ही उलटा है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति मजिस्ट्रेट को भेजने में हुए विलंब के संबंध में अन्वेषण अधिकारी के प्रतिपरीक्षा के दौरान कोई भी प्रश्न नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त यद्यपि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के समयपूर्व और तारीखपूर्व दर्ज कराए जाने के संबंध में विचारण न्यायालय के समक्ष पर्याप्त दलील दी गई किन्तु अन्वेषण अधिकारी से कोई भी प्रश्न नहीं पूछा गया और न्यायालय में उस उपनिरीक्षक से भी कोई प्रश्न नहीं पूछा गया जिसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की थी ।

11. सबसे पहले हम अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के समयपूर्व और तारीखपूर्व होने के संबंध में दी गई दलील पर विचार करेंगे । विचारण न्यायालय ने मुद्दा सं. 3 के संबंध में यह व्यक्त किया है कि क्या वास्तविक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट बनावटी है और वह तारीखपूर्व साबित की गई है या नहीं । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अभि. सा. 1 7.30-8.00 बजे अपराह्न में पुलिस थाने गया था किन्तु औपचारिक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श 9) में यह अभिलिखित किया गया है कि अपराध कारित किए जाने की सूचना तारीख 16 जून, 2000 को 5.35 बजे अपराह्न में प्राप्त हुई थी । प्रदर्श 9 में की गई यह

प्रविष्टि अभि. सा. 1 के उपर्युक्त साक्ष्य के प्रतिकूल है अर्थात् पुलिस थाने में दर्ज कराई जाने वाली शिकायत के समय में अंतर है । विचारण न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट केवल पूर्वकालिक की ही नहीं है अपितु तारीखपूर्व की ही नहीं है, इस प्रकार प्रदर्श 3 का कोई अवलंब नहीं लिया जाना चाहिए । मजिस्ट्रेट ने लिखित शिकायत और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दोनों का परिशीलन किया है जिस पर तारीख 22 जुलाई, 2000 को "देख लिया गया" लिख दिया गया है । विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पुलिस थाने से 22 जून, 2000 को भेजी गई थी और तारीख 23 जून, 2000 को मजिस्ट्रेट के न्यायालय में प्राप्त हुई थी । विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय के पृष्ठ 107 पर निम्न शब्दों में निष्कर्ष निकाला है :–

> "चूंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट समयपूर्व की है और विद्वान् मजिस्ट्रेट के कार्यालय में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भेजे जाने में असामान्य रूप से विलंब किया गया है साथ ही विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किए जाने में भी अस्पष्ट विलंब है, इसलिए अभियोजन पक्ष के प्रति प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता ।"

निर्णय के पृष्ठ सं. 106 पर विचारण न्यायालय द्वारा निम्न मत व्यक्त किया गया है :–

> "यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, जैसाकि अभि. सा. 1 द्वारा कथन किया गया है, 7.30-8.00 बजे अपराह्न के पश्चात् दर्ज कराई गई थी, इससे उसका महत्व कम नहीं होता है क्योंकि यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि विचारण के दौरान साबित की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पश्चात्वर्ती रिपोर्ट है यह है कि यह रिपोर्ट 16 जून, 2000 के पश्चात् किसी दिन लिखी की गई थी ।"

12. अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार करने पर हमारे समक्ष अभि. सा. 1 का साक्ष्य है जिसके अनुसार वह 7.30-8.00 बजे अपराह्न के बीच पुलिस थाने गया था और उसके बताए अनुसार अरुण डे द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखी गई थी । ये दोनों तथ्य संदीप घोष (अभि. सा. 1) और अरुण डे (अभि. सा. 5) के कथनों से साबित हो गए हैं ; इन दोनों साक्षियों ने लिखित शिकायत पर हस्ताक्षर किए हैं । सहायक उपनिरीक्षक श्री सुनील गिरि (अभि. सा. 9) ने संदीप घोष द्वारा दी गई लिखित शिकायत के

आधार प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की तारीख और समय अभिलिखित किए जाने के संबंध में अभि. सा. 29 को कोई भी सुझाव नहीं दिया गया है ।

13. श्री सुनील गिरि ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट साबित की है, इस साक्षी ने यह भी साबित किया है कि उसने तारीख 16 जून, 2000 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्राप्त की थी, उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर अपने हस्ताक्षर भी साबित किए हैं । इस साक्षी ने इस सुझाव से इनकार किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 16 जून, 2000 के पश्चात् लिखी गई थी । इस प्रकार, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के तारीखपूर्व दर्ज कराई जाने का मामला नहीं बनता है, और विचारण न्यायालय ने भी इस निवेदन को स्वीकार नहीं किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पूर्वदिनांकित की है ।

14. अब हम इस मुख्य दलील पर विचार करेंगे कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट समयपूर्व दर्ज कराई गई है और इसे मजिस्ट्रेट के न्यायालय में विलंब से भेजा गया है । जैसाकि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से अर्थात् अभि. सा. 1 और अभि. सा. 30 के साक्ष्य से उद्भूत घटनाक्रम से पता चलता है, इस बाबत कोई संदेह नहीं है कि अभि. सा. 1 लगभग 7.30 बजे अपराह्न में पुलिस थाने गया था । इस संदर्भ में अभि. सा. 30 का कथन अत्यंत सुसंगत है । अभि. सा. 30 ने अपने कथन में यह उल्लेख किया है कि तारीख 16 जून, 2002 को जब वह पुलिस थाना नेहाटी में तैनात था, तब वह एक अन्य मामले के संबंध में ग्राम शिवदासपुर गया था, तब उसने 5.15 बजे अपराह्न में आर. टी. संदेश द्वारा सूचना प्राप्त की कि मित्र बागन चौराहे पर दिबोल कुमार घोष की गोली मारकर हत्या कर दी है । वह घटनास्थल पर लगभग 5.40 बजे अपराह्न में पहुंचा और वहां 9.05 अपराह्न तक मौजूद रहा । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि उसने घटनास्थल पर नक्शा तैयार किया और दो साइकिलों सहित कुछ वस्तुएं अभिगृहीत कीं जो पार्टी कार्यालय के कमरे के प्रवेश द्वार से बरामद की गई थीं । इस साक्षी (अन्वेषण अधिकारी) ने अपनी मुख्य परीक्षा में निम्न प्रकार कथन किया है :–

> "जब मैं पुलिस थाना नेहाटी के अन्तर्गत आने वाले ग्राम शिवदासपुर में एक अन्य मामले के संबंध में 5.15 बजे अपराह्न में मौजूद था, मैंने आर. टी. संदेश प्राप्त किया कि मित्र बागन चौराहे पर किसी दिबोल कुमार घोष की गोली मारकर हत्या कर दी गई है । तब मैं सीधा मित्र बागन की ओर रवाना हुआ । मैं वहां पर 5.40 बजे

अपराह्न में पहुंचा । हत्या के कारण कानून व्यवस्था की समस्या थी । सड़क बंद कर दी गई थी । मुझे पुलिस थाने से उक्त मित्र बागन चौराहे पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्राप्त हुई । मैं कानून व्यवस्था को बनाए रखने में 9.05 बजे अपराह्न तक व्यस्त रहा । मैं मित्र बागन चौराहे पर स्थित सीपीआई(एम) पार्टी के कार्यालय तक पहुंचा और वहां पर सूची के सूचक सहित रेखा-चित्र तैयार किया ।"

15. इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि सहायक उपनिरीक्षक सुनील गिरि ने उसे आर. टी. संदेश भेजा था । इस प्रकार, सहायक उपनिरीक्षक सुनील गिरि को 5.15 बजे अपराह्न के पूर्व दिबोल कुमार घोष की हत्या की सूचना प्राप्त हुई, अन्वेषण अधिकारी उपनिरीक्षक तपन कुमार मिश्रा का घटनास्थल पर आगमन बताए अनुसार साबित किया गया है ; अन्वेषण अधिकारी भी ग्रीन व्यू नर्सिंग होम पर गया था जिसके साथ उपनिरीक्षक माणिक चक्रवर्ती भी था और वहीं पर मृतक का शव पड़ा हुआ था । अन्वेषण अधिकारी के बताए अनुसार, मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट पुलिस उपनिरीक्षक माणिक चक्रवर्ती द्वारा तैयार की गई जो 10.35 बजे अपराह्न में आरंभ की गई थी । मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट साक्षियों द्वारा साबित की गई है और अन्वेषण अधिकारी ने स्पष्ट रूप से निम्न प्रकार अभिलिखित किया है :–

"मृतक दिबोल कुमार घोष (आयु 48 वर्ष) पुत्र किरण चंद्र घोष, निवासी 212/1, आर बी सी रोड, पुलिस थाना नेहाटी, जिला उत्तर 24 परगना, सी./डब्ल्यू. नेहाटी, पुलिस थाना यू. डी. तारीख 16 जून, 2000 का मामला सं. 43/2000 और तारीख 16 जून, 2000 का नेहाटी पुलिस थाना मामला सं. 99 के शव के संबंध में अन्वेषण रिपोर्ट जो दंड संहिता की धारा 302/34 और आयुध अधिनियम की धारा 25/27 के अधीन तैयार की गई है ।"

16. इस प्रकार मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट में तारीख 16 जून, 2000 का अप्राकृतिक मृत्यु मामला (यू. डी. सं. 43/2000) का और दंड संहिता की धारा 302/34 और आयुध अधिनियम की धारा 25/27 के अधीन तारीख 16 जून, 2000 का मामला सं. 99 दोनों का ही उल्लेख किया गया है । उपरोक्त से ऐसा कोई भी संदेह नहीं होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट शव के मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट आरंभ किए जाने के पूर्व दर्ज कराई गई थी । साक्ष्य से उपदर्शित होता है कि मृत्यु की सूचना पुलिस थाने में 5.15 बजे अपराह्न के पूर्व प्राप्त हुई थी और पुलिस पदधारी तत्काल ही घटनास्थल

पर पहुंच गए थे और अन्वेषण अधिकारी 5.45 बजे अपराह्न में घटनास्थल पर पहुंचा था, उस समय तक अन्य पुलिस पदधारी पहले से ही पहुंचे हुए थे । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्राप्ति और उसका अभिलिखित किया जाना दांडिक मामले में अन्वेषण किए जाने के लिए पुरोभाव्य शर्त नहीं है । जब यह सूचना प्राप्त हुई है कि दिबोल कुमार घोष की गोली लगने से मृत्यु हो गई है, तब पुलिस अन्वेषण आरंभ करने के लिए कर्तव्यबद्ध है । इस न्यायलय ने **अपरेन जोसेफ** उर्फ **करंट कुंजुकुंजु और अन्य** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने पैरा 11 में निम्न प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "जैसा कि प्रिवी कौंसिल द्वारा के. ई. बनाम ख्वाजा वाले मामले में मत व्यक्त किया गया है कि पुलिस द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्राप्ति और उसका अभिलिखित किया जाना दांडिक मामले में अन्वेषण किए जाने के लिए पुरोभाव्य शर्त नहीं है ।"

17. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अत्यधिक बल इस तथ्य पर दिया गया है कि कॉलम सी में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का समय 5.35 बजे अपराह्न दिया गया है । हमने पहले ही यह देख लिया है कि उपनिरीक्षक सुनील गिरि ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में जो समय अभिलिखित किया है वह 5.35 बजे अपराह्न है । उसने 5.15 बजे अपराह्न के पहले ही सूचना प्राप्त कर ली थी क्योंकि उसने आर. टी. संदेश द्वारा अन्वेषण अधिकारी को संज्ञेय अपराध की सूचना भेजी थी जो सहायक उपनिरीक्षक द्वारा प्राप्त हुई थी जिसके अनुसार प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में 5.35 बजे अपराह्न का समय उल्लिखित किया गया था और इसे 5.30 बजे अपराह्न के पश्चात् अभिलिखित किया गया था और इसे सहायक उपनिरीक्षक सुनील गिरि द्वारा स्पष्ट किया जा सकता था किंतु तब जब उससे इस संबंध में प्रश्न किए जाते । सहायक उपनिरीक्षक सुनील गिरि की प्रतिपरीक्षा से यह प्रतीत नहीं होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में 5.35 बजे अपराह्न का समय अभिलिखित किए जाने के संबंध में कोई प्रश्न पूछा गया था । इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है कि लिखित शिकायत के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने के समय सहायक उपनिरीक्षक ने वह समय अभिलिखित किया था जब उसने पुलिस थाने में मृतक दिबोल कुमार घोष की मृत्यु की सूचना प्राप्त की थी । मामले को

---

[1] (1973) 3 एस. सी. सी. 114.

किसी भी प्रकार दृष्टिगत करते हुए उपरोक्त बातों से किसी भी प्रकार से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की विश्वसनीयता और उसका महत्व कम नहीं होता है ।

18. हत्या की सूचना पुलिस थाने में 5.35 बजे अपराह्न के पूर्व प्राप्त हुई थी जो कि पुलिस अधिकारियों के 5.40 बजे अपराह्न के पूर्व आगमन से अन्वेषण अधिकारी द्वारा साबित की गई है । इस प्रकार 5.35 बजे अपराह्न के समय के उल्लेख को पुलिस थाने में अपराह्न की सूचना प्राप्त होने का समय माना जा सकता है और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में ऐसी कोई असंगतता नहीं है जिनके आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को समयपूर्व कहा जा सके ।

19. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तथा मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट दोनों में अभियुक्त अंजन दास गुप्ता का उल्लेख किया गया है । मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट पर किसी भी प्रकार से प्रश्न नहीं उठाया गया है । यह अपराध लगभग 4-5 बजे अपराह्न में कारित किया गया है, इसलिए पुलिस थाने में 7.30 से 8.00 बजे अपराह्न के बीच प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के दर्ज कराए जाने से ऐसा कोई कारण सामने नहीं आता है जिसके आधार पर प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सके । इतना ही नहीं, घटना के पश्चात् मृतक को निकट के नर्सिंग होम में ले जाया गया था जहां पर उसे मृत घोषित कर दिया गया और मृत्युसमीक्षा किए जाने तक शव को वहीं पर रखा गया । एक अन्य परिस्थिति जिस पर विचारण न्यायालय द्वारा दृढ़तापूर्वक अवलंब लिया गया है और अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा हमारे समक्ष दोहराया गया है, मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंब से भेजा जाना है । इस न्यायालय ने **पाला सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंब से भेजना ऐसे मामले में घातक नहीं है जिसमें अन्वेषण मात्र उसके आधार पर तत्काल आरंभ कर दिया गया हो ।

20. अन्वेषण अधिकारी आर. टी. संदेह द्वारा सूचना प्राप्त करने के पश्चात् घटनास्थल पर 5.40 बजे अपराह्न में पहुंचा । जिसे अन्वेषण का तत्काल आरंभ किया जाना साबित होता है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 22 जून, 2000 को भेजी गई थी और इस तथ्य को विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार भी किया गया है चूंकि अन्वेषण अधिकारी से उसके

---

[1] (1972) 2 एस. सी. सी. 640.

प्रतिपरीक्षा में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंब से भेजे जाने के संबंध में कोई प्रश्न मामले के सुनवाई के दौरान नहीं किया गया है, इसलिए अभियुक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए उक्त विलंब का लाभ नहीं ले सकता । इस न्यायालय ने **रबिन्द्र महतो और एक अन्य** बनाम **झारखंड राज्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंब से भेजे जाने के प्रत्येक मामले में न्यायालय यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकता कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्शाए गए समय के काफी देर बाद अभिलिखित की गई है । केवल असामान्य और अस्पष्ट विलंब किए जाने की स्थिति में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रामाणिकता से संबंधित संदेह किया जा सकता है ।

21. वर्तमान मामला एक ऐसा मामला है जिसमें तारीख 16 जून, 2000 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित किए जाने से ही यह साबित हो गया है और विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार भी किया गया है, इस प्रकार पुलिस थाने से मजिस्ट्रेट के न्यायालय को तारीख 22 जून, 2000 को मात्र प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भेजना ऐसा आधार नहीं बन सकता जिससे प्रतिकूल उपधारणा की जा सके । उपरोक्त चर्चा से हमारा यह मत है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उचित है और विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने तथा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को महत्व न देने में त्रुटि की है ।

22. विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा निकाले गए निष्कर्ष कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में छलसाधन किया गया है, त्रुटि पूर्ण है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट ऊपर उल्लिखित साक्ष्य द्वारा साबित की गई है । इस प्रकार, सेशन न्यायाधीश के विनिश्चय में अभियोजन पक्षकथन को त्यक्त करने का जो आधार लिया गया है, अभिखंडित किया जाता है ।

23. अब हम सेशन न्यायाधीश द्वारा मौखिक साक्ष्य पर निकाले गए निष्कर्ष पर विचार करेंगे । मृतक और अभियुक्त दोनों एक ही स्थान के निवासी हैं । इस घटना को न्यायालय में प्रस्तुत हुए प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों सहित कई व्यक्तियों ने देखा था और उन्होंने अभियोजन पक्षकथन को साबित किया है जिनमें संदीप घोष (अभि. सा. 1), विजय दास (अभि. सा. 2), कमल नाथ (अभि. सा. 3), मनबेन्द्र नाग (अभि. सा. 4), प्रशांत घोष (अभि. सा. 6), शशांक नाथ (अभि. सा. 10) और शंकर घोष (अभि. सा. 21) हैं ।

---

[1] (2006) 10 एस. सी. सी. 432.

24. मृतक का पुत्र संदीप घोष (अभि. सा. 1) अपने मेडिकल स्टोर "माँ मेडिकल स्टोर" पर मौजूद था जो सीपीआई(एम) के कार्यालय से पांच क्यूबिट की दूरी पर है । इस प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य में यह कथन किया गया है कि 4.50 बजे अपराह्न में जब वह अपनी दुकान पर बैठा हुआ था उसने एक मारुति जिप्सी नेहाटी स्टेशन की ओर से आती हुई देखी और वह आर बी सी रोड पर मित्रपाड़ा और आर बी सी रोड के चौराहे को पार करके पार्क कर दी गई । उसने विश्वनाथ पॉल और अंजन दास गुप्ता को उक्त मोटरवाहन से उतरकर आते हुए देखा और उसी क्षण चार लड़के जिनकी आयु लगभग 22/23 वर्ष थी, उक्त पार्टी कार्यालय के सामने दो साइकिलों से मित्र बागन की ओर से आए । इस साक्षी ने यह भी देखा कि अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल ने इशारा करके उसके पिता को दिखाया जो पार्टी के कार्यालय में बैठा हुआ था । उनमें से एक लड़के ने पाइपगन निकाली और दिबोल घोष पर गोली चलाई । फिर अंजन दास गुप्ता ने यह देखा कि "हे गेची तारा तरी चले अइए" । इसके पश्चात् उक्त वाहन चला गया । अपनी प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने दृढ़तापूर्वक पृथक् साक्ष्य का उल्लेख किया है और वह विचलित नहीं हो सका है ।

25. विजय दास (अभि. सा. 2) घटना वाले दिन पार्टी के कार्यालय के द्वार पर बैठा हुआ था और कार्यालय के अंदर दिबोल घोष बैठा हुआ था । दिबोल घोष ने चाय पीने के पश्चात् विजय दास से पान लाने को कहा । विजय घोष पार्टी के कार्यालय के सामने सड़क के दूसरी ओर स्थित पान की दुकान पर गया जहां उसने अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल को मारुति जिप्सी से आर बी सी रोड के चौराहे पर उतरते हुए देखा । उस समय चार व्यक्ति मित्रपाड़ा की ओर से दो साइकिलों पर आए । उन चारों में से एक लड़के के पास बंदूक थी और उसने दिबोल घोष पर गोली चलाई । इसके पश्चात् वे गौरी पुर के ओर चले गए ।

26. कमल नाथ (अभि. सा. 3) ने, जिसकी दुकान सीपीआई(एम) पार्टी के कार्यालय के सामने फुटपाथ पर है, अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि तारीख 16 जून, 2000 को 3.00 से 4.00 बजे अपराह्न के दौरान वह पार्टी के कार्यालय में बैठा हुआ था और वह कार्यालय के कमरे से बाहर आया और सिगरेट पीने के लिए बाहर खड़ा हो गया । उस समय एक लाल रंग की जिप्सी वहां आई और उससे तीन क्यूबिट की दूरी पर आकर रुक गई जिसमें से अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल उतरकर आए । उसी समय दो साइकिलों से मित्र बागन की ओर से चार लड़के वहां आए । उनमें से दो लड़कों ने पार्टी के कार्यालय के बाहर से गोली चलाई और

दिबोल घोष को गोली लगी । वे साइकिलें छोड़कर गौरी पुर की ओर जिप्सी से चले गए ।

27. ऐसा ही प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा दिया गया है जिनकी परीक्षा अभियोजन पक्ष द्वारा कराई गई है ।

28. विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने इन कथनों में कतिपय विरोधाभास/फर्क इंगित किए हैं और यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा दिया गया साक्ष्य विश्वासोत्पादक नहीं है । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने यह भी मत व्यक्त किया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा इस संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन साक्षियों के कथन अभिलिखित किए जाने में विलंब क्यों किया गया था । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा न्यायालय में दिए गए कथन को मात्र इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन जो कथन अभिलिखित किए गए हैं वे तत्काल अभिलिखित नहीं किए गए थे ।

29. अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 31) की प्रतिपरीक्षा से यह उपदर्शित नहीं होता है कि उससे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन साक्षियों के कथन अभिलिखित किए जाने में हुए विलंब के संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं मांगा गया है ।

30. उच्च न्यायालय ने संपूर्ण मौखिक साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन भी किया है और यह मत व्यक्त किया है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों में से एक या दो साक्षियों को छोड़कर, जिन्होंने कथन दिए जाने के दौरान कुछ अधिक बताने का प्रयास किया है, शेष सभी साक्षियों ने अपने पूर्वकथन के अनुसार ही साक्ष्य दिया है । उच्च न्यायालय द्वारा पृष्ठ 22 पर निम्न मत अभिलिखित किया गया है :–

> "....... हमने साक्षियों के कथनों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है कि और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अभिलिखित कथनों का भी परिशीलन किया है और हमारा यह निष्कर्ष है कि केवल एक या दो साक्षियों ने विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष कथन अभिलिखित किए जाने के दौरान कुछ अन्य बातों का उल्लेख किया है, किन्तु कुल मिलाकर सभी प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने पूर्व में अन्वेषण अधिकारियों को दिए गए कथनों के अनुसार ही विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी परीक्षा के दौरान साक्ष्य दिया है ......।"

31. प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया है कि सभी साक्षियों ने मारुति जिप्सी के घटनास्थल पर आने, अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल के वहां पहुंचने और दिबोल घोष को गोली चलाने का निर्देश देने के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है और तत्पश्चात् अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल ने उन व्यक्तियों को मारुति जिप्सी से भागने में सहायता भी की । उच्च न्यायालय द्वारा निम्न निष्कर्ष अभिलिखित किए गए हैं :–

> "...... अभि. सा. 1, अभि. सा. 2, अभि. सा. 3, अभि. सा. 4, अभि. सा. 6, अभि. सा. 10 और अभि. सा. 21 के कथनों से हमें यह पता चलता है कि सभी साक्षियों ने घटनास्थल पर मारुति जिप्सी और अंजन दास गुप्ता तथा विश्वनाथ पॉल के पहुंचने के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है और इस संबंध में भी साक्ष्य दिया है कि उन्होंने दिबोल घोष को गोली चलाने का निर्देश भी दिया था तथा तत्पश्चात् घटनास्थल मारुति जिप्सी से भागने में सहायता भी की थी ......।"

32. विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य का मूल्यांकन तथा उपर्युक्त साक्ष्य का त्यक्त किया जाना निराधार है और केवल अनुमान और अटकलों पर आधारित है जिसका मूल्यांकन उच्च न्यायालय द्वारा ठीक प्रकार किया गया है । उदाहरणार्थ, प्रत्यक्षदर्शी साक्षी विजय दास (अभि. सा. 2) के संबंध में विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने उसके साक्ष्य को निम्न कारणों से त्यक्त किया है :–

> ".....दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 164 के अधीन अभिलिखित कथन (प्रदर्श-1) में इस व्यक्ति ने यह बताया कि गोली की आवाज सुनकर वह तेजी से दौड़ा और उसने देखा कि दिबोल घोष को गोली लगी हुई है और कोई व्यक्ति साइकिल लेने के लिए जा रहा है । उस समय उस व्यक्ति ने साइकिल वाले को पकड़ने का प्रयास किया और अंजन ने कहा कि पकड़ो-पकड़ो । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अभिकथित कथनों में जो अभिकथित घटना के दो मास से भी अधिक समय के पश्चात् अभिलिखित किया गया था, उसने उस व्यक्ति के नाम का उल्लेख नहीं है जिसने साइकिल वाले को पकड़ने का प्रयास किया था । अतः, यह लोप अभि. सा. 2 के उपर्युक्त साक्ष्य के प्रतिकूल है । अभि. सा. 2 का साक्ष्य चूंकि उसके पूर्ववर्ती कथन से मेल नहीं खाता है जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अभिलिखित किया गया था,

असंभाव्यता से ग्रसित है इसलिए उसका अवलंब नहीं लिया जा सकता ......।"

33. मात्र यह तथ्य कि साक्षी ने उस व्यक्ति के नाम का उल्लेख नहीं किया है जिसने उसे पकड़ने का प्रयास किया था, से कोई भी विरोधाभास साबित नहीं होता है क्योंकि सभी प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने यह कथन किया है कि दो साइकिलों से चार व्यक्ति आए थे जिनमें से एक ने दिबोल घोष पर गोली चलाई थी ।

34. अभि. सा. 2 ने यह कथन किया है कि उसने उपरोक्त व्यक्तियों में से एक व्यक्ति को पकड़ने का प्रयास किया था किन्तु उस व्यक्ति के नाम का उल्लेख न करने से न तो कोई विरोधाभास साबित होता है और न ही उसके आधार पर साक्ष्य त्यक्त किया जा सकता है । विद्वान् सेशन न्यायाधीश का यह मत भी ठोस कारणों पर आधारित नहीं है कि साक्ष्य असंभाव्यता से ग्रसित है और उसका अवलंब नहीं लिया जा सकता, ठोस कारणों पर आधारित नहीं है ।

35. विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य में कुछ छोटे-मोटे विरोधाभास इंगित किए गए हैं जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही त्यक्त किया गया है और उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष ठीक ही निकाला है कि अपराध की तथा अपीलार्थी अंजन दास गुप्ता का उसमें भाग लेना साबित हो गया है । उच्च न्यायालय द्वारा निम्न निष्कर्ष अभिलिखित किया गया है :–

> ".....इस प्रकार अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से हमारा यह मत है कि कई स्थानीय साक्षियों ने, जो घटनास्थल पर मौजूद थे, अंजन दास गुप्ता और विश्वनाथ पॉल को घटनास्थल पर देखा था और उन्होंने दिबोल घोष की हत्या की घटना में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए भी देखा था और इस संदर्भ में हम यह अभिलिखित करना चाहते हैं कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने पूर्णतया भ्रमित होकर प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य का मूल्यांकन किया है ।"

36. उच्च न्यायालय ने यह ध्यान में रखा है कि ऐसे मामले में दोषमुक्ति की गई हो, दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील पर विचार करते समय यदि उपलब्ध साक्ष्य का समुचित रूप से मूल्यांकन करने के पश्चात् दो मत संभव हों, तब जो मत अभियुक्त के पक्ष में हो उसी को

महत्व दिया जाना चाहिए । यह सुस्थापित है कि ऐसे मामले में जिसमें दोषमुक्ति का आदेश, साक्ष्य का गलत तरीके से मूल्यांकन करने के पश्चात् पारित किया गया है, तब अपील न्यायालय साक्ष्य का युक्तियुक्त रूप से पुनर्मूल्यांकन करने तथा दोषमुक्ति के आदेश से भिन्न आदेश देने के लिए स्वतंत्र है और ऐसी स्थिति में, न्यायालय को निचले न्यायालय के आदेश को उलटने में कोई भी संकोच नहीं करना चाहिए । परिणामतः, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है :–

> "......अभियोजन पक्ष के संपूर्ण साक्ष्य की संवीक्षा करने और पक्षकारों के अपने-अपने निवेदनों पर विचार करने के पश्चात् हमें यही अभिनिर्धारित करना होगा कि विचारण न्यायालय ने विधि तथा तथ्य, दोनों की ही दृष्टि से त्रुटि की है और यह भी ठीक अभिनिर्धारित नहीं किया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पूर्वदिनांकित, पूर्वकालिक और गढ़ी हुई है । विचारण न्यायालय ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को इस आधार पर त्यक्त करके भी गलती की है कि वह मजिस्ट्रेट के न्यायालय में विलंब से भेजी गई थी ।"

37. हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष और परिणाम साक्ष्य का ठीक प्रकार से किए गए मूल्यांकन पर आधारित है और उनमें किसी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं है । उच्च न्यायालय के निर्णय में, जिसके अनुसार विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा किए गए दोषमुक्ति के आदेश को उलटा गया है, हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है । इस अपील में कोई सार नहीं है । अपील खारिज की जाती है । अपीलार्थी जमानत पर है, उसके जमानत बंधपत्र रद्द किए जाते हैं और अपीलार्थी को तत्काल अभिरक्षा में लिए जाने का निदेश दिया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./पां.

[2017] 3 उम. नि. प. 113

अजय सिंह और एक अन्य तथा इत्यादि

बनाम

छत्तीसगढ़ राज्य और एक अन्य

6 जनवरी, 2017

न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति अमिताव राय

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 353 – निर्णय – विचारण न्यायाधीश द्वारा अभियुक्तों की दोषमुक्ति का निर्णय सुनाया जाना – अभिलेख पर निर्णय उपलब्ध न पाया जाना – केवल मात्र परिणाम की घोषणा करना निर्णय की कोटि में नहीं आता, अपितु हस्ताक्षरित और तारीख डाला हुआ टंकित निर्णय खुले न्यायालय में सुनाया जाना आवश्यक है, अतः उच्च न्यायालय ने विचारण को लंबित मानते हुए, अपनी प्रशासनिक अधिकारिता के अधीन, मामलों को सुनवाई के लिए अन्य विचारण न्यायाधीश को अंतरित करके ठीक किया है ।

अपीलार्थी सं. 1 का रूबी सिंह (मृतका) के साथ हिंदू रीति-रिवाज के अनुसार तारीख 22 जून, 1997 को विवाह हुआ था । उसने तारीख 1 दिसंबर, 1998 को अपने दाम्पत्य गृह में आत्म हत्या कर ली । उसके पति (अपीलार्थी सं. 1) सहित अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख/34 के अधीन अपर सेशन न्यायाधीश, अम्बिकापुर द्वारा विचारण किया गया । विचारण न्यायाधीश ने आदेश पत्र में यह अभिलिखित करते हुए कि अलग से टंकित, हस्ताक्षरित और दिनांकित निर्णय के अनुसार अभियुक्तों को दोषमुक्त किया गया है । राज्य विधिज्ञ परिषद् के एक सदस्य ने छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय की रजिस्ट्री में यह अभिकथन करते हुए एक शिकायत भेजी कि विचारण न्यायाधीश ने अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया है किंतु कोई निर्णय नहीं सुनाया गया है । मामले की जांच करने पर अभिलेख पर कोई निर्णय नहीं पाया गया । विचारण मामला उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के समक्ष रखा गया । जांच पूर्ण न्यायपीठ के समक्ष रखा गया । जांच पूर्ण होने तक विचारण न्यायाधीश को निलंबित किया गया और यह भी विनिश्चय किया कि मामलों को पुनः सुनवाई और निपटारे के लिए जिला और सेशन न्यायाधीश, सरगुजा, अम्बिकापुर को अंतरित किया जाए । पूर्ण न्यायपीठ द्वारा मामलों को पुनः सुनवाई के लिए

अंतरित करने के विनिश्चय के पश्चात् अभियुक्तों द्वारा रिट अपील फाइल करके पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय को चुनौती दी गई । उच्च न्यायालय द्वारा रिट अपील खारिज कर दी गई । अभियुक्तों-अपीलार्थियों ने व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल कीं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में "निर्णय" पद को परिभाषित नहीं किया गया है, तो भी इसमें स्पष्ट रूप से यह अधिकथित है कि निर्णय कैसे सुनाया जाएगा । उपबंधों में स्पष्ट रूप से यह बताया गया है कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश के लिए यह अनिवार्य है कि निर्णय खुले न्यायालय में संपूर्ण निर्णय देकर या संपूर्ण निर्णय पढ़कर या अभियुक्त अथवा उसके प्लीडर द्वारा समझी जाने वाली भाषा में निर्णय का प्रवर्तनशील भाग पढ़कर और निर्णय का सार समझाकर सुनाया जाएगा । दंड प्रक्रिया संहिता में निर्णय के प्रवर्तनशील भाग को पढ़कर सुनाने का उपबंध है । इससे यह अभिप्रेत है कि विचारण न्यायाधीश संपूर्ण निर्णय को न पढ़े और निर्णय का प्रवर्तनशीलन भाग ही पढ़ सकता है, किंतु इससे किसी प्रकार से यह सुझाव नहीं मिलता है कि मामले का परिणाम तो सुनाया जाएगा और निर्णय अभिलेख पर उपलब्ध न हो । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि निर्णय की अन-उपलब्धता से वह कदापि निर्णय नहीं हो सकता है क्योंकि इससे निर्णय सुनाकर यह घोषणा नहीं की जाती है कि अभियुक्त को दोषसिद्ध किया गया है या दोषमुक्त । वस्तुतः, उच्च न्यायालय के प्रशासनिक विभाग ने जांच करने पर यह पाया था कि अभिलेख पर कोई निर्णय उपलब्ध नहीं है । अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय द्वारा फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में यह उल्लेख किया गया है कि 14 पृष्ठ का पैराग्राफ सं. 19 तक टाइप किया हुआ अधूरा निर्णय उपलब्ध था । शपथपत्र में यह भी उल्लिखित था कि निर्णय अधूरा था और किसी भी पृष्ठ पर पीठासीन अधिकारी के हस्ताक्षर नहीं थे । यदि निर्णय पूर्ण नहीं है और हस्ताक्षरित नहीं है तो इसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 353 के निबंधनों के अनुसार निर्णय नहीं कहा जा सकता है । यह कल्पनातीत है कि निर्णय न होते हुए निर्णय सुनाया गया है । यह घोर अवैधता है । इसलिए तनिक भी संदेह नहीं हो सकता है कि परिणाम की जो घोषणा की गई है वह दंड प्रक्रिया संहिता में विहित अनुसार निर्णय की कोटि में नहीं आता है । इससे यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता है कि दोनों मामलों में विचारण को लंबित माना

जाना चाहिए । अगला विवाद्यक जो विचार करने के लिए प्रकट होता है, यह है कि क्या उच्च न्यायालय अपनी प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग करते हुए मामले को द्वितीय अपर सेशन न्यायाधीश, अंबिकापुर से जिला और सेशन न्यायाधीश, सरगुजा, अंबिकापुर को अंतरित कर सकता था । इस संबंध में, अनुच्छेद 227 के अधीन अधीक्षण की शक्ति के निर्देशन में संविधान के अधीन उच्च न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता और प्राधिकार को समझना पर्याप्त है । प्रस्तुत मामले में, उच्च न्यायालय ने प्रशासनिक अधिकारिता में विद्वान् सेशन न्यायाधीश को मामला अंतरित किया था, जिसके द्वारा उसने उस विचारण न्यायालय को अधिकारिता प्रदत्त की, जिसे दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन सेशन मामले का विचारण करने की अधिकारिता है । इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने ऐसा इसलिए किया था क्योंकि उसने वस्तुतः, यह पाया था कि अभिलेख पर कोई निर्णय नहीं था । इसमें कोई अवैधता नहीं है । (पैरा 16, 17, 19, 20 और 25)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 2 एस. सी. सी. 398 : **पी. विजयन** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य ;**	9
[2003]	(2003) 6 एस. सी. सी. 675 : **सूर्या देव राय** बनाम **राम चन्द्र राय और अन्य ;**	6
[2002]	(2002) 8 एस. सी. सी. 400 : **इस्सेन डेंकी** बनाम **राजीव कुमार ;**	6
[2002]	(2002) 1 एस. सी. सी. 319 : **आसेफ मथाई और अन्य** बनाम **एम. अब्दुल खादिर ;**	6
[1997]	(1997) 5 एस. सी. सी. 76 : **अच्चुतानंद वैद्य** बनाम **प्रफुल्ल कुमार गायन और अन्य ;**	21
[1995]	(1995) 4 एस. सी. सी. 392 : **रणबीर यादव** बनाम **बिहार राज्य ;**	23
[1988]	(1988) 2 एस. सी. सी. 602 : **ए. आर. अंतुले** बनाम **आर. एस. नायक और एक अन्य ;**	23

[1984] [1984] 2 उम. नि. प. 878 = (1981) 1 एस. सी. सी. 596 :
पंजाब राज्य और अन्य बनाम **जमदेव सिंह तलवंडी ;** 17

[1981] [1981] 4 उम. नि. प. 1089 = (1981) 1 एस. सी. सी. 500 :
श्रीमती सराज देवी बनाम **प्यारे लाल और एक अन्य ;** 14

[1960] ए. आई. आर. 1960 मद्रास 507 :
अथिपलायन और अन्य वाला मामला । 17

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2017 की दांडिक अपील सं. 32-33.

2016 की रिट अपील सं. 134 और 189 में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर के तारीख 24 अगस्त, 2016 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री प्रवीण चतुर्वेदी, बैज नाथ पटेल और (सुश्री) जे. चतुर्वेदी

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री सी. डी. सिंह और सुश्री साक्षी कक्कड़

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – न्यायिक कर्तव्य का विधि द्वारा विहित रीति में संपादन लोकतांत्रिक राज्य में विधि के शासन की धारणा का मूल तत्व है । प्रायः यह कहा गया है, और ऐसा ठीक ही कहा गया है कि न्यायपालिका विधि के शासन की संरक्षक और परिरक्षक है । उक्त पुनीत कर्तव्य का प्रभावी कार्यकरण न्यायपालिका को सौंपा गया है और इसे सौंपे जाने पर न्यायालयों से यह प्रत्याशा की जाती है कि वे न्यायिक कार्यवाही गरिमा, वस्तुपरकता और युक्तिसंगतता के साथ करें और इनका विधि के अनुसार अंतिम रूप से अवधारण करें । गलतियां होना लाजिमी हैं किंतु जानबूझकर ऐसा पाप नहीं किया जा सकता जिसका कदापि समर्थन नहीं किया जा सकता हो । न्याय करने की व्यवस्था की नींव लोगों के विश्वास, भरोसे और आस्था पर टिकी है और इसे संदूषित और नष्ट करने के लिए किसी

को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । कोई मुकदमा लड़ने वाला, जो न्यायालय में आता है, यह प्रत्याशा करता है कि न्यायनिर्णयन के अंतर्निहित और आवश्यक सिद्धांतों जैसे दूसरे पक्षकार को भी सुनो सिद्धांत का पालन, मूल प्रक्रिया और प्रभावी मौलिक विधि से संबंधित नियमों का अनुसरण किया जाएगा और अंततोगत्वा एक सकारण अधिनिर्णय दिया जाएगा । जब अभियुक्त न्यायालय में किसी आरोप का सामना करता है, तो ऋजु विचारण की प्रत्याशा करता है । वह विपदग्रस्त भी, जिसकी शिकायत और व्यथा के कारण विचारण उद्भूत हुआ, यह प्रत्याशा करता है कि विधि के अनुसार न्याय किया जाना चाहिए । इस प्रकार, निर्णय करने के लिए ऋजु विचारण होना विधि के अनुसार आवश्यक है और यह वह आश्वासन है जिसकी दोनों पक्षों की ओर से कल्पना की जाती है । अभियुक्त की ओर से प्रतिनिधि (काउंसेल) को ऋजु विचारण के अभिवाक् के आधार पर, उसके द्वारा इच्छित सिद्धांत पर, विचारण पर नियंत्रण करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है और इसी प्रकार, विपदग्रस्त की ओर से अधिवक्ता को ऋजु विचारण के नाम पर सदैव इस शिकायत का आश्रय लेने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए कि उसके हेतुक पर ऋजुतापूर्वक विचार नहीं किया गया है । इसलिए तत्परता और ऋजु विचारण की धारणा अभियुक्त तथा विपदग्रस्त दोनों पर लागू होती है । ऐसे विचारण के परिणाम की परिणति ऐसे निर्णय से हो, जो विधि के अनुसार सुनाया जाना अपेक्षित है और इसी वजह से इस संस्था में विश्वसनीयता की स्थिरता बनी हुई है ।

2. उपरोक्त प्रस्तावनात्मक टिप्पण की प्रस्तुत मामले में महत्वपूर्ण सुसंगतता है । संविवाद का मूल्यांकन करने के लिए, कतिपय तथ्यों का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है । अपीलार्थी सं. 1 के साथ रूबी सिंह, मृतका का विवाह तारीख 22 जून, 1997 को हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार हुआ था । उसने तारीख 1 दिसंबर, 1998 को अपने दाम्पत्य-गृह में आत्म-हत्या कर ली । कामेश्वर प्रताप ने पुलिस थाना लखनपुर, जिला सरगुजा में अजय सिंह (पति), सुरेश्वर सिंह (ससुर), धनवंती देवी (सास) और किरन सिंह (ननद) के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304ख के अधीन दंडनीय अपराधों तथा अन्य अपराधों के लिए 1998 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 194 दर्ज कराई । दांडिक विधि को लागू करने के पश्चात् अन्वेषक अभिकरण ने अन्वेषण आरंभ करने और इसके पूर्ण होने के पश्चात् अभियुक्तों के विरुद्ध मुख्य न्यायिक, मजिस्ट्रेट,

अंबिकापुर के न्यायालय के समक्ष दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4 के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख, 498/34 और 328 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया और आखिरकार द्वितीय अपर सेशन न्यायाधीश, अंबिकापुर द्वारा मामले का विचारण किया गया । वर्तमान मामले में हमारा सरोकार इस बात से नहीं है कि विचारण न्यायालय द्वारा कितने साक्षियों की परीक्षा की गई थी या विचारण कैसे चला था । जिस बात का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है, वह यह है कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने आदेश-पत्रिका में यह आदेश पारित किया कि अभियुक्तों को अलग से टंकित, हस्ताक्षरित और दिनांकित निर्णय के अनुसार दोषमुक्त किया गया है ।

3. राज्य विधिज्ञ परिषद् के एक सदस्य ने छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर की रजिस्ट्री को यह अभिकथन करते हुए एक शिकायत भेजी कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया है किंतु कोई निर्णय नहीं दिया है । उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार (सतर्कता) ने तारीख 18 फरवरी, 2008 को जिला और सेशन न्यायाधीश, सरगुजा, अंबिकापुर को मामले की जांच करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए एक ज्ञापन जारी किया । संबंधित जिला और सेशन न्यायाधीश ने उसी तारीख को यह उल्लेख करते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत की कि उन मामलों के अभिलेखों में कोई निर्णय नहीं पाए गए हैं । उच्च न्यायालय के ध्यान में यह भी लाया गया कि सेशन विचारणों में, जो 1999 का सेशन विचारण सं. 148 और 1995 का सेशन विचारण सं. 71 हैं, हालांकि एक ही विचारण न्यायाधीश ने तात्पर्यित रूप से निर्णय दिए हैं किंतु वे अभिलेख पर उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि निर्णय वास्तव में लिखवाए नहीं गए हैं, तारीख नहीं डाली गई है और हस्ताक्षरित नहीं हैं । उसके पश्चात् मामला तारीख 4 मार्च, 2008 को उच्च न्यायालय की एक पूर्ण न्यायपीठ के समक्ष रखा गया और इस तारीख को संबंधित न्यायाधीश को, विभागीय जांच को ध्यान में रखते हुए, निलंबनाधीन रखने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया गया । साथ-ही-साथ, पूर्ण न्यायपीठ ने प्रश्नगत मामलों को संबंधित विचारण न्यायाधीश की फाइल से जिला और सेशन न्यायाधीश, सरगुजा, अंबिकापुर को पुनः सुनवाई और निपटारे के लिए अंतरित करने का भी विनिश्चय किया । यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि संबंधित अधिकारी को निलंबनाधीन रखा गया था और जांच पूर्ण होने के पश्चात् तारीख 20 मार्च,

2011 को अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दंड अधिरोपित किया गया था । हम यह स्पष्ट करते हैं कि इस मामले में उक्त दंड से हमारा सरोकार नहीं है ।

4. पूर्ण न्यायपीठ द्वारा मामलों की पुनः सुनवाई करने के लिए अंतरित करने का विनिश्चय करने के पश्चात्, तीन रिट याचिकाएं फाइल की गईं जिनकी विषयवस्तु 2008 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 2796, 2008 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 2238 और 2010 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 276 थी । 1999 के सेशन विचारण सं. 148 में अभियुक्तों ने 2008 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 2796 और 2238 फाइल की और 1995 के सेशन विचारण सं. 71 में अभियुक्त ने अन्य रिट याचिका अर्थात् 2010 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 276 फाइल की ।

5. संविवाद वास्तव में दो विवाद्यकों पर केन्द्रित है, अर्थात् क्या विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने तारीख 31 अक्तूबर, 2007 को वास्तव में दोषमुक्ति का निर्णय सुनाया था और क्या उच्च न्यायालय अपनी प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग करते हुए विचारण को लंबित मान सकता था और इसे द्वितीय अपर सेशन न्यायाधीश, अंबिकापुर के न्यायालय से जिला और सेशन न्यायाधीश, सरगुजा, अंबिकापुर के न्यायालय को पुनः सुनवाई और निपटारे के लिए अंतरित कर सकता था ।

6. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह आग्रह किया गया कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए आदेश की प्रकृति निर्णय की कोटि में आती है और राज्य द्वारा कोई अपील किए बिना सेशन मामले की पुनः सुनवाई करने का निदेश नहीं दिया जा सकता था क्योंकि ऐसी कार्रवाई दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के प्रतिकूल है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग करते हुए मामले को लंबित मानते हुए अंतरित नहीं कर सकता था । उन्होंने उक्त दलील के समर्थन में **आसेफ मथाई और अन्य** बनाम **एम. अब्दुल खादिर**[1], **इस्सेन डेंकी** बनाम **राजीव कुमार**[2] और **सूर्या देव राय** बनाम **राम चन्द्र राय और अन्य**[3] वाले मामलों का अवलंब लिया ।

7. राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री सी. डी. सिंह ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण पूरी तरह से त्रुटि रहित है और इस

---

[1] (2002) 1 एस. सी. सी. 319.

[2] (2002) 8 एस. सी. सी. 400.

[3] (2003) 6 एस. सी. सी. 675.

न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

8. संविवाद का मूल्यांकन करने के लिए, 1995 के सेशन विचारण सं. 71 की आदेश-पत्रिका को निर्दिष्ट करना आवश्यक है । विचारण न्यायालय ने तारीख 28 जनवरी, 2008 को निम्नलिखित आदेश पारित किया था :–

"28.1.2008

श्री राजेश तिवारी, ए. जी. पी. द्वारा राज्य का प्रतिनिधित्व किया गया ।

अभियुक्त अपने काउंसेल श्री अरविंद मेहता, अधिवक्ता के साथ ।

निर्णय अलग से टंकित किया गया है । इस पर तारीख डाली गई है, हस्ताक्षर किए गए हैं और सुनाया गया है । परिणामतः, अभियुक्त टी. पी. रात्रे को भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन आरोप को दोषमुक्त किया जाता है ।

इस निर्णय की एक प्रति ए. जी. पी. के माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट, सरगुजा (अंबिकापुर) को भेजी जाए ।

कार्यवाहियां पूर्ण होती हैं ।

रजिस्टर में परिणाम का उल्लेख किया जाए और अभिलेख को अभिलेख-कक्ष में भेजा जाए ।"

यह उल्लेखनीय है कि अन्य सेशन विचारण अर्थात् 1999 के सेशन विचारण सं. 148 में भी लगभग इसी प्रकार का आदेश पारित किया गया है । यह उल्लेख किया जा सकता है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा की गई जांच के अनुसार अभिलेख पर उपर्युक्त आदेश के अतिरिक्त कुछ नहीं था । विचारण न्यायाधीश ने खुले न्यायालय में आदेश नहीं लिखवाया था । ऐसी स्थिति में, यह अवधारित किया जाना है कि क्या विचारण न्यायाधीश द्वारा निर्णय दिया गया था या नहीं ।

9. दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 18 में सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण का उपबंध किया गया है । धारा 227 में विचारण न्यायाधीश को अभियुक्त तथा अभियोजन पक्ष की दलीलें सुनने के पश्चात् और यह समाधान होने पर कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए कोई

पर्याप्त आधार नहीं हैं, अभियुक्त को उन्मोचित करने के लिए सशक्त किया गया है । धारा के मुख्य शब्द "अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं" हैं । **पी. विजयन** बनाम **केरल राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने उक्त उपबंध का निर्वचन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायाधीश अभियोजन पक्ष की प्रेरणा पर आरोप विरचित करने वाला मात्र डाकघर नहीं है, अपितु उसे मामले के तथ्यों पर अपने न्यायिक मस्तिष्क का यह अवधारण करने के लिए प्रयोग करना चाहिए कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण के लिए मामला बनाया गया है या नहीं । इस तथ्य का निर्धारण करने में न्यायालय को मामले के गुण-दोष या साक्ष्य के विवेचन और संतुलन तथा अधिसंभाव्यताओं को देखना आवश्यक नहीं है, जो कि वास्तव में विचारण प्रारंभ होने के पश्चात् न्यायालय का कार्य है । धारा 227 के प्रक्रम पर, न्यायाधीश को यह पता लगाने के लिए साक्ष्य की मात्र यह छानबीन करनी चाहिए कि क्या अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं । दूसरे शब्दों में, पर्याप्त आधार के अंतर्गत पुलिस द्वारा अभिलिखित किए गए साक्ष्य की प्रकृति या न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए वे दस्तावेज आएंगे जिनसे स्पष्टतः यह प्रकट होता हो कि अभियुक्त के विरुद्ध संदिग्ध परिस्थितियां हैं जिनसे कि उसके विरुद्ध आरोप विरचित किया जा सके ।

10. धारा 228 में विचारण न्यायाधीश को आरोप विरचित करने के लिए सशक्त किया गया है । धारा 229 में यह उपबंध है कि यदि अभियुक्त दोषी होने का अभिवाक् करता है तो न्यायाधीश उस अभिवाक् को लेखबद्ध करेगा और उसके आधार पर उसे, स्वविवेकानुसार, दोषसिद्ध कर सकता है । धारा 230 में अभियोजन साक्ष्य के लिए तारीख का उपबंध किया है । धारा 231 अभियोजन के लिए साक्ष्य के संबंध में है । धारा 232 में यह उपबंधित है कि यदि संबद्ध विषय के बारे में अभियोजन का साक्ष्य लेने, अभियुक्त की परीक्षा करने और अभियोजन तथा प्रतिरक्षा को सुनने के पश्चात् न्यायाधीश का यह विचार है कि इस बात का साक्ष्य नहीं है कि अभियुक्त ने अपराध किया है तो न्यायाधीश दोषमुक्ति का आदेश अभिलिखित करेगा । धारा 233 में यह अनुबंध है कि जहां अभियुक्त को धारा 232 के अधीन दोषमुक्त नहीं किया जाता है वहां उससे अपेक्षा की जाएगी कि अपनी प्रतिरक्षा आरंभ करे और कोई भी साक्ष्य, जो उसके

---

[1] (2010) 2 एस. सी. सी. 398.

समर्थन में उसके पास हो, पेश करे । धारा 234 में बहस के लिए उपबंध किया गया है । धारा 235, जिसमें दोषमुक्ति या दोषसिद्धि के निर्णय का उपबंध है, निम्न प्रकार से है :–

"235. **दोषमुक्ति या दोषसिद्धि का निर्णय** – (1) बहस और विधि-प्रश्न (यदि कोई हो) सुनने के पश्चात् न्यायाधीश मामले में निर्णय देगा ।

(2) यदि अभियुक्त दोषसिद्ध किया जाता है तो न्यायाधीश, उस दशा के सिवाय जिसमें वह धारा 360 के उपबंधों के अनुसार कार्यवाही करता है, दंड के प्रश्न पर अभियुक्त को सुनेगा और तब विधि के अनुसार उसके बारे में दंड देगा ।"

11. अध्याय 24 में जांचों और विचारणों के बारे में साधारण उपबंधों का उपबंध किया गया है । अध्याय 27 निर्णय के संबंध में है । धारा 353 में निर्णय सुनाने की प्रक्रिया अधिकथित की गई है । उक्त उपबंध निम्नलिखित है :–

"353. **निर्णय** – (1) आरंभिक अधिकारिता के दंड न्यायालय में होने वाले प्रत्येक विचारण में निर्णय पीठासीन अधिकारी द्वारा खुले न्यायालय में या तो विचारण के खत्म होने के पश्चात् तुरन्त या बाद में किसी समय, जिसकी सूचना पक्षकारों या उनके प्लीडरों को दी जाएगी,–

(क) संपूर्ण निर्णय देकर सुनाया जाएगा ; या

(ख) संपूर्ण निर्णय पढ़कर सुनाया जाएगा ; या

(ग) अभियुक्त या उसके प्लीडर द्वारा समझी जाने वाली भाषा में निर्णय का प्रवर्तनशील भाग पढ़कर और निर्णय का सार समझाकर सुनाया जाएगा ।

(2) जहां उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन निर्णय दिया जाता है, वहां पीठासीन अधिकारी उसे आशुलिपि में लिखवाएगा और जैसे ही अनुलिपि तैयार हो जाती है वैसे ही खुले न्यायालय में उस पर और उसके प्रत्येक पृष्ठ पर हस्ताक्षर करेगा, और उस पर निर्णय दिए जाने की तारीख डालेगा ।

(3) जहां निर्णय या उसका प्रवर्तनशीलन भाग, यथास्थिति,

उपधारा (1) के खंड (ख) या खंड (ग) के अधीन पढ़कर सुनाया जाता है, वहां पीठासीन अधिकारी द्वारा खुले न्यायालय में उस पर तारीख डाली जाएगी और हस्ताक्षर किए जाएंगे और यदि वह उसके द्वारा स्वयं अपने हाथ से नहीं लिखा गया है तो निर्णय के प्रत्येक पृष्ठ पर उसके द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे ।

(4) जहां निर्णय उपधारा (1) के खंड (ग) में विनिर्दिष्ट रीति से सुनाया जाता है, वहां संपूर्ण निर्णय या उसकी एक प्रतिलिपि पक्षकारों या उनके प्लीडरों के परिशीलन के लिए तुरंत निःशुल्क उपलब्ध कराई जाएगी ।

(5) यदि अभियुक्त अभिरक्षा में है तो निर्णय सुनने के लिए उसे लाया जाएगा ।

(6) यदि अभियुक्त अभिरक्षा में नहीं है तो उससे न्यायालय द्वारा सुनाए जाने वाले निर्णय को सुनने के लिए हाजिर होने की अपेक्षा की जाएगी, किन्तु उस दशा में नहीं की जाएगी जिसमें विचारण के दौरान उसकी वैयक्तिक हाजिरी से उसे अभिमुक्ति दे दी गई है और दंडादेश केवल जुर्माने का है या उसे दोषमुक्त किया गया है :

परन्तु जहां एक से अधिक अभियुक्त हैं और उनमें से एक या एक से अधिक उस तारीख को न्यायालय में हाजिर नहीं हैं जिसको निर्णय सुनाया जाने वाला है तो पीठासीन अधिकारी उस मामले को निपटाने में अनुचित विलंब से बचने के लिए उनकी अनुपस्थिति में भी निर्णय सुना सकता है ।

(7) किसी भी दंड न्यायालय द्वारा सुनाया गया कोई निर्णय केवल इस कारण विधितः अमान्य न समझा जाएगा कि उसके सुनाए जाने के लिए सूचित दिन को या स्थान में कोई पक्षकार या उसका प्लीडर अनुपस्थित था या पक्षकारों पर या उनके प्लीडरों पर या उनमें से किसी पर ऐसे दिन और स्थान की सूचना की तामील करने में कोई लोप या त्रुटि हुई थी ।

(8) इस धारा की किसी बात का अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह धारा 465 के उपबंधों के विस्तार को किसी प्रकार से परिसीमित करती है ।"

12. धारा 354 में निर्णय की भाषा और अंतर्वस्तु के बारे में

उपबंध है । उक्त उपबंध निम्नलिखित है :–

"354. **निर्णय की भाषा और अन्तर्वस्तु** – (1) इस संहिता द्वारा अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित के सिवाय, धारा 353 में निर्दिष्ट प्रत्येक निर्णय –

(क) न्यायालय की भाषा में लिखा जाएगा ;

(ख) अवधारण के लिए प्रश्न, उस प्रश्न या उन प्रश्नों पर विनिश्चय और विनिश्चय के कारण अन्तर्विष्ट करेगा ;

(ग) वह अपराध (यदि कोई हो) जिसके लिए और भारतीय दंड संहिता, (1860 का 45) या अन्य विधि की वह धारा, जिसके अधीन अभियुक्त दोषसिद्ध किया गया है, और वह दंड जिसके लिए वह दंडादिष्ट है, विनिर्दिष्ट करेगा ;

(घ) यदि निर्णय दोषमुक्ति का है तो, उस अपराध का कथन करेगा जिससे अभियुक्त दोषमुक्त किया गया है और निदेश देगा कि वह स्वतंत्र कर दिया जाए ।

(2) जब दोषसिद्धि भारतीय दंड संहिता, (1860 का 45) के अधीन है और यह संदेह है कि अपराध उस संहिता की दो धाराओं में से किसके अधीन या एक ही धारा के दो भागों में से किसके अधीन आता है तो न्यायालय इस बात को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करेगा और अनुकल्पतः निर्णय देगा ।

(3) जब दोषसिद्धि, मृत्यु से अथवा अनुकल्पतः आजीवन कारावास से या कई वर्षों की अवधि के कारावास से दंडनीय किसी अपराध के लिए है, तब निर्णय में, दिए गए दंडादेश के कारणों का और मृत्यु के दंडादेश की दशा में ऐसे दंडादेश के लिए विशेष कारणों का, कथन होगा ।

(4) जब दोषसिद्धि एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध के लिए है किन्तु न्यायालय तीन मास से कम अवधि के कारावास का दंड अधिरोपित करता है, तब वह ऐसा दंड देने के अपने कारणों को लेखबद्ध करेगा उस दशा के सिवाय जब वह दंडादेश न्यायालय के उठने तक के लिए कारावास का नहीं है या वह मामला इस संहिता के उपबंधों के अधीन संक्षेपतः विचारित नहीं किया गया है ।

(5) जब किसी व्यक्ति को मृत्यु का दंडादेश दिया जाता है तो वह दंडादेश यह निदेश देगा कि उसे गर्दन में फांसी लगाकर तब तक लटकाया जाए जब तक उसकी मृत्यु न हो जाए ।

(6) धारा 117 के अधीन या धारा 138 की उपधारा (2) के अधीन प्रत्येक आदेश में और धारा 125, धारा 145 या धारा 147 के अधीन किए गए प्रत्येक अंतिम आदेश में, अवधारण के लिए प्रश्न, उस प्रश्न या उन प्रश्नों पर विनिश्चय और विनिश्चय के कारण अंतर्विष्ट होंगे ।"

13. धारा 362 का शीर्षक है न्यायालय अपने निर्णय में परिवर्तन न करना । उक्त उपबंध निम्नलिखित है :–

"362. **न्यायालय का अपने निर्णय में परिवर्तन न करना** – इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा जैसा उपबंधित है उसके सिवाय कोई न्यायालय जब उसने किसी मामले को निपटाने के लिए अपने निर्णय या अंतिम या आदेश पर हस्ताक्षर कर दिए हैं तब लिपिकीय या गणितीय भूल को ठीक करने के सिवाय उसमें कोई परिवर्तन नहीं करेगा या उसका पुनर्विलोकन नहीं करेगा ।"

14. **श्रीमती सराज देवी** बनाम **प्यारे लाल और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग के संदर्भ में उक्त उपबंध का निर्वचन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

"5. अपीलार्थी ने यह बतलाया है कि उसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 द्वारा व्यावृत्त उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति का अवलंब लिया है तथा धारा 362 द्वारा अधिरोपित प्रतिषेध के होते हुए भी उच्च न्यायालय को अनुतोष देने की शक्ति थी । अब यह बात अच्छी तरह से सुस्थिर है कि उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति का उस कार्य को करने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता जो संहिता द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से प्रतिषिद्ध है । (देखिए **संकठा सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** का मामला) यह बात सही है कि न्यायालय द्वारा अपने स्वयं के निर्णय के परिवर्तन या पुनर्विलोकन के विरुद्ध धारा 362 में प्रतिषेध "इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा

---

[1] [1981] 4 उम. नि. प. 1089 = (1981) 1 एस. सी. सी. 500.

जैसा उपबंधित है उसके सिवाय" के अध्यधीन है । तथापि, ये शब्द केवल उन उपबंधों को निर्दिष्ट करते हैं जहां न्यायालय को संहिता या किसी अन्य विधि द्वारा अपने स्वयं के निर्णय को परिवर्तित करने या उसका पुनर्विलोकन करने के लिए स्पष्ट रूप से प्राधिकृत किया गया हो । न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति धारा 362 में अन्तर्विष्ट व्यावृत्त उपबंध द्वारा अनुध्यात नहीं है । इसलिए उस शक्ति का अवलंब लेने का प्रयत्न किसी भी प्रकार से सहायक नहीं हो सकता ।"

हमने उपर्युक्त विनिश्चय यह दृष्टांत देने के लिए निर्दिष्ट किया है कि जब एक बार निर्णय सुना दिया जाता है तो दंड प्रक्रिया संहिता में इसे पूर्ण पवित्रता प्रदत्त की गई है । इसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की कल्पना नहीं की गई है ।

15. धारा 363 में अभियुक्त और अन्य व्यक्तियों को निर्णय की प्रति दिए जाने का उपबंध किया गया है । धारा 364 में उस स्थिति का उपबंध किया गया है जहां निर्णय का अनुवाद किया जाना अपेक्षित है ।

16. यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता में "निर्णय" पद को परिभाषित नहीं किया गया है, तो भी इसमें स्पष्ट रूप से यह अधिकथित है कि निर्णय कैसे सुनाया जाएगा । उपबंधों में स्पष्ट रूप से यह बताया गया है कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश के लिए यह अनिवार्य है कि निर्णय खुले न्यायालय में संपूर्ण निर्णय देकर या संपूर्ण निर्णय पढ़कर या अभियुक्त अथवा उसके प्लीडर द्वारा समझी जाने वाली भाषा में निर्णय का प्रवर्तनशील भाग पढ़कर और निर्णय का सार समझाकर सुनाया जाएगा ।

17. हमने पहले ही यह उल्लेख किया है कि निर्णय खुले न्यायालय में नहीं लिखवाया गया था । दंड प्रक्रिया संहिता में निर्णय के प्रवर्तनशील भाग को पढ़कर सुनाने का उपबंध है । इससे यह अभिप्रेत है कि विचारण न्यायाधीश संपूर्ण निर्णय को न पढ़े और निर्णय का प्रवर्तनशील भाग ही पढ़ सकता है, किंतु इससे किसी प्रकार से यह सुझाव नहीं मिलता है कि मामले का परिणाम तो सुनाया जाएगा और निर्णय अभिलेख पर उपलब्ध न हो । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि निर्णय की अन-उपलब्धता से वह कदापि निर्णय नहीं हो सकता है क्योंकि इससे निर्णय सुनाकर यह घोषणा नहीं की जाती है कि अभियुक्त को दोषसिद्ध किया गया है या

दोषमुक्त । निर्णय, जैसाकि सदैव समझा गया है, उन तथ्यों पर सम्यक् विचार करने के पश्चात् राय की अभिव्यक्ति है जिनका अवधारण किया जाना होता है । जैसाकि **अथिपलायन और अन्य वाला मामला**[1] में अभिनिर्धारित किया गया है, खुले न्यायालय में, हस्ताक्षर किया हुआ और तारीख डाला गया, निर्णय सुनाए बिना इसे दोषसिद्धि का निर्णय मानना मुश्किल है । वस्तुत:, उच्च न्यायालय के प्रशासनिक विभाग ने जांच करने पर यह पाया था कि अभिलेख पर कोई निर्णय उपलब्ध नहीं है । अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय द्वारा फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में यह उल्लेख किया गया है कि 14 पृष्ठ का पैराग्राफ सं. 19 तक टाइप किया हुआ अधूरा निर्णय उपलब्ध था । शपथपत्र में यह भी उल्लिखित था कि निर्णय अधूरा था और किसी भी पृष्ठ पर पीठासीन अधिकारी के हस्ताक्षर नहीं थे । यदि निर्णय पूर्ण नहीं है और हस्ताक्षरित नहीं है तो इसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 353 के निबंधनों के अनुसार निर्णय नहीं कहा जा सकता है । यह कल्पनातीत है कि निर्णय न होते हुए निर्णय सुनाया गया है । यह घोर अवैधता है । इस संदर्भ में हम **पंजाब राज्य और अन्य** बनाम **जमदेव सिंह तलवंडी**[2] वाले मामले के लेखांश को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिसमें संविधान न्यायपीठ की राय को अभिव्यक्त करते हुए मुख्य न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़ ने यह मत व्यक्त किया :–

> "30. हम यह उल्लेख करने के लिए इस अवसर का लाभ उठाना चाहेंगे कि उच्च न्यायालयों द्वारा सकारण निर्णय के बिना अंतिम आदेश सुनाने की उत्तरोत्तर रूप से जो पद्धति अपनाई जा रही है उनसे गंभीर कठिनाइयां उद्भूत होती हैं । यह वांछनीय है कि जिस अंतिम आदेश को उच्च न्यायालय पारित करने का आशय रखता है, उसकी घोषणा तब तक नहीं की जानी चाहिए जब तक कि प्रख्यापित किए जाने हेतु कोई सकारण निर्णय तैयार न हो । उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि सकारण निर्णय के बिना अंतिम आदेश उच्च न्यायालय द्वारा इस विषय में प्रख्यापित कर दिया जाता है कि किसी मकान को गिरा दिया जाएगा अथवा किसी बालक की अभिरक्षा आदेश के विरुद्ध माता-पिता में से किसी एक को सौंप दी जाएगी या यह कि किसी

---

[1] ए. आई. आर. 1960 मद्रास 507.

[2] [1984] 2 उम. नि. प. 878 = (1981) 1 एस. सी. सी. 596.

गंभीर आरोप के अभियुक्त किसी व्यक्ति को दोषमुक्त कर दिया जाएगा अथवा यह कि कोई कानून असांविधानिक है या जैसा कि प्रस्तुत मामले में है, यह कि किसी निरुद्ध व्यक्ति को निरोध से रिहा कर दिया जाएगा । यदि ऐसे आदेशों को पारित करने का उद्देश्य उनका त्वरित अनुवर्तन सुनिश्चित करना है तो यदि व्यथित पक्षकार उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय में विशेष इजाजत याचिका फाइल कर देता है तो पूर्वोक्त उद्देश्य प्राय: निष्फल हो जाएगा । इससे यह न्यायालय विकट स्थिति में पड़ जाता है क्योंकि उच्च न्यायालय को युक्तियुक्तता के लाभ के बिना इस न्यायालय के लिए यह कठिन है कि वह यह अनुज्ञा दे कि कारण से विहीन आदेश को कार्यान्वित कर दिया जाए । अनिवार्य रूप से, इसका परिणाम यह है कि उच्च न्यायालय पारित आदेश का प्रवर्तन, सकारण निर्णय के सुनाए जाने के लंबित रहते हुए, स्थगित रखना होगा ।

31. यह विचारणीय है कि इस न्यायालय द्वारा ऐसे आदेश पारित किए जाते हैं और इसलिए इस बात का कोई कारण नहीं है कि भला उच्च न्यायालय भी ऐसा क्यों न करें । हम सम्मानपूर्वक इस बात का उल्लेख करना चाहेंगे कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश अंतिम आदेश होते हैं और उनके विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती । उच्चतम न्यायालय हमारे न्यायालयों की शृंखला में सर्वोच्च न्यायालय है । इसके अतिरिक्त बिना कारण बताए दिए गए निर्णयों के बिना आदेश इस न्यायालय द्वारा बहुत ही कम मामलों में और आपवादिक परिस्थितियों में पारित किए जाते हैं । उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश संविधान के अनुच्छेद 136 तथा संबद्ध कानूनों के अन्य प्रबन्धों के अधीन अपीली अधिकारिता के अध्यधीन होते हैं । हमने यह मत व्यक्त करना इसलिए आवश्यक समझा कि ऐसी प्रणाली जो कि अत्यंत अवांछनीय है और जिससे कि कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है वर्तमान स्थिति में प्रारंभिक अवस्था से कहीं आगे न बढ़ जाए ।"

18. हमने उपर्युक्त दो लेखांशों को इसलिए उद्धृत किया है क्योंकि बृहत्तर न्यायपीठ ने ऐसी मताभिव्यक्तियां उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किए गए अकारण निर्णयों के विषय में की हैं । विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति ने यह

पाया था कि यह परिपाटी वांछनीय नहीं है और इससे कोई उपयोगी प्रयोजन प्राप्त नहीं होता है और यह अपनी आरंभिक अवस्था से आगे नहीं बढ़नी चाहिए । उक्त मताभिव्यक्तियों के बावजूद, कभी-कभी इस न्यायालय के समक्ष ऐसे निर्णय आ जाते हैं, जहां उच्च न्यायालयों ने मामले का परिणाम यह कहते हुए सुनाया है कि "कारण बाद में दिए जाएंगे ।" हम संविधान न्यायपीठ की मताभिव्यक्तियों की केवल पुनरावृत्ति कर सकते हैं ।

19. जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है और जैसाकि प्रस्तुत मामले में प्रदर्शित होता है, अभिलेख पर निर्णय उपलब्ध नहीं है और इसलिए तनिक भी संदेह नहीं हो सकता है कि परिणाम की जो घोषणा की गई है वह दंड प्रक्रिया संहिता में विहित अनुसार निर्णय की कोटि में नहीं आता है । इससे यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता है कि दोनों मामलों में विचारण को लंबित माना जाना चाहिए ।

20. अगला विवाद्यक जो विचार करने के लिए प्रकट होता है, यह है कि क्या उच्च न्यायालय अपनी प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग करते हुए मामले को द्वितीय अपर सेशन न्यायाधीश, अंबिकापुर से जिला और सेशन न्यायाधीश, सरगुजा, अंबिकापुर को अंतरित कर सकता था । इस संबंध में, अनुच्छेद 227 के अधीन अधीक्षण की शक्ति के निर्देशन में संविधान के अधीन उच्च न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता और प्राधिकार को समझना पर्याप्त है । संविधान का अनुच्छेद 227 निम्नलिखित है :–

> "227. **सभी न्यायालयों के अधीक्षण की उच्च न्यायालय की शक्ति** – (1) प्रत्येक उच्च न्यायालय उन राज्यक्षेत्रों में सर्वत्र, जिनके संबंध में वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है, सभी न्यायालयों और अधिकरणों का अधीक्षण करेगा ।
>
> (2) पूर्वगामी उपबंध की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उच्च न्यायालय –
>
> (क) ऐसे न्यायालयों से विवरणी मंगा सकेगा,
>
> (ख) ऐसे न्यायालयों की पद्धति और कार्यवाहियों के विनियमन के लिए साधारण नियम और प्ररूप बना सकेगा, और निकाल सकेगा तथा विहित कर सकेगा ; और
>
> (ग) किन्हीं ऐसे न्यायालयों के अधिकारियों द्वारा रखी जाने वाली पुस्तकों, प्रविष्टियों और लेखाओं के प्ररूप विहित कर

सकेगा ।

(3) उच्च न्यायालय उन फीसों की सारणियां भी स्थिर कर सकेगा जो ऐसे न्यायालयों के शैरिफ को तथा सभी लिपिकों और अधिकारियों को तथा उनमें विधि-व्यवसाय करने वाले अटर्नियों, अधिवक्ताओं और प्लीडरों को अनुज्ञेय होंगी :

परंतु खंड (2) या खंड (3) के अधीन बनाए गए कोई नियम, विहित किए गए कोई प्ररूप या स्थिर की गई कोई सारणी तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबंध से असंगत नहीं होगी और इनके लिए राज्यपाल से पूर्व अनुमोदन की अपेक्षा होगी ।

(4) इस अनुच्छेद की कोई बात उच्च न्यायालय को सशस्त्र बलों से संबंधित किसी विधि द्वारा या उसके अधीन गठित किसी न्यायालय या अधिकरण पर अधीक्षण की शक्तियां देने वाली नहीं समझी जाएगी ।"

उपर्युक्त अनुच्छेद राज्य के राज्यक्षेत्र के भीतर स्थित न्यायालयों और अधिकरणों पर उच्च न्यायालय की अधीक्षण की शक्ति प्रदत्त करता है । उच्च न्यायालय को स्वप्रेरणा से शक्ति का प्रयोग करने की अधिकारिता और प्राधिकार है ।

21. **अच्युतानंद वैद्य** बनाम **प्रफुल्ल कुमार गायन और अन्य**[1] वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधीक्षण की शक्ति पर विचार करते हुए यह राय व्यक्त की कि संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय की अधीक्षण की शक्ति केवल प्रशासनिक अधीक्षण तक सीमित नहीं है, अपितु इस शक्ति की परिधि के अंतर्गत न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति सम्मिलित है । अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय की शक्ति और कर्तव्य आवश्यक रूप से यह सुनिश्चित करने के लिए है कि उच्च न्यायालय से निम्नतर न्यायालयों और अधिकरणों ने वही कार्य किया है जो उनसे करने की अपेक्षा की गई है । इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों द्वारा यह विधि सुस्थिर की गई है कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन गलत धारणा या अपनी अधिकारिता से परे जाकर कार्य करने, अधिकारिता के प्रयोग से इनकार करने, अभिलेख से प्रकट विधि की गलती जो केवल

---

[1] (1997) 5 एस. सी. सी. 76.

विधि की भूल से सुभिन्न है, प्राधिकार या विवेक के मनमाने या स्वेच्छाचारी प्रयोग, प्रक्रिया की स्पष्ट गलती, ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचना जो अनुचित या किसी सामग्री पर आधारित नहीं है, या जिसके परिणामस्वरूप स्पष्ट तौर पर अन्याय हुआ है, के मामलों में हस्तक्षेप कर सकता है ।

22. हमने पहले ही यह उल्लेख किया है कि खंड न्यायपीठ ने भी विद्वान् एकल न्यायाधीश की राय से सहमति व्यक्त करते हुए विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को इस आधार पर अभिखंडित कर दिया था कि अभिलेख पर कोई निर्णय नहीं है । इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात् कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने वास्तव में कोई निर्णय पारित नहीं किया था, यह संकल्प पारित किया कि सेशन न्यायालय द्वारा मामले की सुनवाई की जाए और तद्नुसार उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल ने संबंधित विद्वान् सेशन न्यायाधीश को यह विनिश्चय संसूचित किया । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह दलील है कि उच्च न्यायालय द्वारा ऐसी शक्ति का प्रयोग प्रशासनिक दृष्टि से नहीं किया जा सकता था, क्योंकि उच्च न्यायालय प्रशासनिक प्राधिकारिता का प्रयोग करते हुए मामले को अंतरित नहीं कर सकता है । दलील यह है कि उच्च न्यायालय मामले का अंतरण केवल धारा 407 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए कर सकता है और वह भी न्यायिक दृष्टि से । हमारा ध्यान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 194 की ओर भी आकृष्ट किया गया । धारा 194 में अपर और सहायक न्यायाधीशों को उनके हवाले किए गए मामलों का विचारण करने के लिए सशक्त किया गया है । उक्त उपबंध निम्नलिखित हैं :–

> "194. **अपर और सहायक सेशन न्यायाधीशों को हवाले किए गए मामलों पर उनके द्वारा विचारण** – अपर सेशन न्यायाधीश या सहायक सेशन न्यायाधीश ऐसे मामलों का विचारण करेगा जिन्हें विचारण के लिए उस खंड का सेशन न्यायाधीश साधारण या विशेष आदेश द्वारा उसके हवाले करता है या जिनका विचारण करने के लिए उच्च न्यायालय विशेष आदेश द्वारा उसे निदेश देता है ।"

23. यह तर्क दिया गया कि धारा 194 का प्रयोग प्रशासनिक दृष्टि से विचारण आरंभ होने से पूर्व किया जा सकता है, जबकि धारा 407 का

प्रयोग न्यायिक दृष्टि से किया जा सकता है और कोई मामला दांडिक विचारण के अंतरण के लिए अधिकथित मानदंडों के आधार पर अंतरित किया जा सकता है । इस संबंध में, हम **रणबीर यादव** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में की नज़ीर को उपयोगी रूप से निर्दिष्ट कर सकते हैं, जिसमें उच्च न्यायालय ने कतिपय परिस्थितियों के अधीन सेशन विचारण को एक अपर सेशन न्यायाधीश से एक अन्य अपर सेशन न्यायाधीश को प्रशासनिक आदेश द्वारा उस प्रक्रम पर अंतरित किया था, जब विचारण आरंभ हो गया था । इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई कि विचारण जो अंतरिती न्यायालय के समक्ष किया गया था, वह पूर्णतः अधिकारिता के बिना था और परिणामस्वरूप उस न्यायालय द्वारा अभिलिखित की गई दोषसिद्धि और दंडादेश अकृत और शून्य थे और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 के अधीन उपचार योग्य नहीं थे । विधि की उक्त प्रतिपादना को कायम रखने के लिए **ए. आर. अंतुले** बनाम **आर. एस. नायक और एक अन्य**[2] वाले मामले का अवलंब लिया गया । दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ अभिलेख पर की सामग्री का परिशीलन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंची कि उच्च न्यायालय द्वारा आदेश अपनी प्रशासनिक अधिकारिता में पारित किया गया था । उसके पश्चात् न्यायपीठ द्वारा आगे यह राय व्यक्त की गई :–

> "भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन राज्यक्षेत्रों में सर्वत्र, जिनके संबंध में वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है, सभी न्यायालयों और अधिकरणों पर अधीक्षण है और यह अति-सामान्य बात है कि अधीक्षण की यह शक्ति उच्च न्यायालय को प्रशासनिक आवश्यकता और उपयोगिता के लिए आदेश पारित करने का हकदार बनाती है । प्रस्तुत मामले में यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने अंतरण की शक्ति का प्रयोग कुछ अभियुक्तों द्वारा कारागार से फाइल की गई याचिका के संदर्भ में किया है जिसमें यह शिकायत की गई है कि उन्हें न्यायालय कक्ष में घुसने नहीं दिया गया जिसके परिणामस्वरूप उनमें से कुछ को बाहर ही रहना पड़ा । यह भी प्रतीत होता है कि अन्य की गई शिकायत यह

---

[1] (1995) 4 एस. सी. सी. 392.

[2] (1988) 2 एस. सी. सी. 602.

थी कि न्यायालय इतना खचाखच भरा था कि वकीलों के क्लर्कों तक को ब्रीफ ले जाने के लिए न्यायालय कक्ष में प्रवेश करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा रहा था । ऐसी स्थिति स्पष्ट रूप से बहुत सारे व्यक्तियों के विचारण से उत्पन्न हुई थी । यदि उपरोक्त तथ्यों के संदर्भ में उच्च न्यायालय ने मामले को उस 5वें न्यायालय में अंतरण करने के लिए अपनी सर्वांगीण प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग किया, जिसमें, हमारा मानना है, अभियुक्तों वकीलों और विचारण से संबद्ध अन्य व्यक्तियों को समायोजित करने के लिए ज्यादा बड़ी और बेहतर व्यवस्था थी, तब इसका अपवाद नहीं लिया जा सकता है, विशिष्ट रूप से उनके द्वारा जिनकी प्रेरणा पर और जिनके फायदे के लिए शक्ति का प्रयोग किया गया था ।"

आगे अग्रसर होते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया :–

"जब तक किसी न्यायिक कार्यवाही के पक्षकारों के अधिकारों या हितों का अतिक्रमण किए बिना और प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना शक्ति का प्रयोग विशुद्ध रूप से प्रशासनिक आवश्यकता के लिए किया जा सकता है और किया जाता है, हम यह अभिनिर्धारित करने का कोई कारण नहीं पाते हैं कि प्रशासनिक शक्तियों को केवल इस कारण न्यायिक शक्तियों से अवर स्थान देना चाहिए कि किसी प्रस्तुत परिस्थिति में वे साथ-साथ विद्यमान हैं । इसके विपरीत, वर्तमान मामला इस बात का दृष्टांत है कि प्रशासनिक शक्तियां कैसे अधिक समीचीन, प्रभावी और असरदार हैं । यदि उच्च न्यायालय संहिता की धारा 407 का अवलंब लेकर अपनी अंतरण की न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने का आशय रखता तो उसे पक्षकारों को उचित सुनवाई का पर्याप्त अवसर उपलब्ध करवाने के अतिरिक्त इस धारा की सभी प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं का पालन करने की आवश्यकता होती, जिसके परिणामस्वरूप न केवल विचारण में विलंब होता अपितु कुछ अभियुक्तों को और अधिक समय के लिए कारावास में रहना पड़ता । अत: यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय ने न्यायिक शक्तियों के बजाय अपनी अधीक्षण की शक्ति का अवलंब लेकर न केवल अभियुक्तों और विचारण से संबद्ध अन्य व्यक्तियों की शिकायत का निवारण किया अपितु यह कार्य अति शीघ्रता से किया ।"

24. न्यायालय ने **ए. आर. अंतुले** (उपरोक्त) वाले मामले में की नज़ीर को इस आधार पर सुभिन्न किया कि उक्त मामले में न्यायालय ऐसी स्थिति पर विचार कर रहा था, जहां इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय को मामला अंतरित किया था जो विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं था और यह न्यायालय उच्च न्यायालय को अधिकारिताएं प्रदत्त नहीं कर सकता था क्योंकि उसे दांडिक विधि संशोधन अधिनियम, 1952 की स्कीम के अधीन ऐसी अधिकारिता नहीं थी । दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ जिस संविवाद पर विचार कर रही थी वह उस विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश को मामले का अंतरण करने के संबंध में था, जो सेशन विचारण का संचालन करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन सक्षम था और इसलिए न्यायालय ने **रणबीर यादव** (उपरोक्त) वाले मामले में यह न्यादेश दिया कि मामले को दूसरे न्यायालय को अंतरण करने के आदेश में कोई विधिक खामी नहीं है ।

25. प्रस्तुत मामले में, उच्च न्यायालय ने प्रशासनिक अधिकारिता में विद्वान् सेशन न्यायाधीश को मामला अंतरित किया था, जिसके द्वारा उसने उस विचारण न्यायालय को अधिकारिता प्रदत्त की, जिसे दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन सेशन मामले का विचारण करने की अधिकारिता है । इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने ऐसा इसलिए किया था क्योंकि उसने वस्तुतः, यह पाया था कि अभिलेख पर कोई निर्णय नहीं था । इसमें कोई अवैधता नहीं है । यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान अपीलार्थियों की प्रेरणा पर फाइल की गई अपील में खंड न्यायपीठ ने आदेश को अभिखंडित करना समुचित समझा क्योंकि अभिलेख पर कोई निर्णय नहीं था अपितु केवल एक आदेश पत्र था । वर्तमान जैसी दिलचस्प स्थिति में हमारा यह विचार है कि उच्च न्यायालय उस आदेश को अपास्त करने के लिए विधिक बाध्यता अधीन था क्योंकि उस आदेश का विधि के अनुसार कोई प्रभाव नहीं था । उच्च न्यायालय ने ठीक ही ऐसा किया, क्योंकि यह देखना उसका कर्तव्य है कि न्याय की पवित्रता कम न हो । उच्च न्यायालय ने ऐसा इसलिए किया, क्योंकि उसने महसूस किया कि आदेश, जो कि निर्णय के बिना परिणाम की मात्र घोषणा है, उसे अकृत किया जाना चाहिए और वह निर्वापित हो गया ।

26. प्रस्तुत मामले में, हम यह कहने के लिए मजबूर हैं कि विचारण

न्यायाधीश को यह स्मरण रखना चाहिए कि उसका बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है क्योंकि उसका दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309 में परिकल्पित आदेश को ध्यान में रखते हुए विहित रीति में साक्ष्य अभिलिखित करने और संहिता में उपबंधित अनुसार निर्णय सुनाने का विधिपूर्ण कर्तव्य है । विचारण के भारसाधक न्यायाधीश को अत्यंत सचेत रहना चाहिए ताकि विचारण और इसके पारिणामिक निष्कर्ष पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़ सके । अपील न्यायालय द्वारा "भूल सुधार अधिकारिता" का प्रयोग करते हुए भूलों और गलतियों का सुधार करना होता है । यह एक अलग विषय है । किंतु जब ऐसी स्थिति प्रकट होती है जो प्रस्तुत मामले में है, तब उससे न्याय के हित को असहनीय चोट पहुंचती है और बिना मेघ के आकाश में बिजली कड़कने जैसा लगता है । इससे किसी और को नहीं; न्याय वितरण प्रणाली को आघात पहुंचता है और हमारे कहने का अर्थ है, किसी को ऐसा करने का अधिकार नहीं है । उच्च न्यायालय ने गंभीर गलती में सुधार करके न्याय के हित को अग्रसर करने का कार्य किया है । अभियुक्तों को दोषमुक्ति से प्रसन्नता हुई होगी और पुन: सुनवाई के आदेश से प्रभावित हुए होंगे, किंतु उन्हें यह ध्यान में रखना चाहिए कि वे न्याय प्राप्त करने वाले अकेले ही नहीं हैं । अपराध के शिकार व्यक्ति भी हैं । विधि दोनों की सेवा करती है और न्याय की दृष्टि में वे समान हैं । विधि यह सहन नहीं करती कि विपदग्रस्त की शिकायत इस प्रकार निष्क्रिय रह जाए ।

27. परिणामत:, ये अपीलें खारिज की जाती हैं । विचारण न्यायालय को, जिसे मामले अंतरित किए गए हैं, विधि के अनुसार कार्यवाही करने के लिए निदेशित किया जाता है ।

अपीलें खारिज की गईं ।

जस.

[2017] 3 उम. नि. प. 136

अनिल कुमार

बनाम

पंजाब राज्य

17 जनवरी, 2017

न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा और न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. बानुमती

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 427 [सपठित स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 22 तथा ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धारा 27 और 28] – पहले से कारावास का दंडादेश भोगने वाले व्यक्ति को अन्य पश्चात्वर्ती अपराध के लिए कारावास का दंडादेश दिया जाना – पश्चात्वर्ती कारावास को पूर्ववर्ती कारावास के साथ-साथ चलने का निदेश न दिया जाना – न्यायालय केवल समुचित मामलों में उनके तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् दृढ़ न्यायिक सिद्धांतों के आधार पर दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश कर सकता है, अतः अपीलार्थी के मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् उस पर अधिरोपित दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश देना उचित होगा ।

अपीलार्थी को पुलिस थाना, लौंगोवाल की तारीख 19 अप्रैल, 2009 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 37 में स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 22 के अधीन तारीख 23 जुलाई, 2014 के निर्णय द्वारा दोषसिद्ध किया गया था और दस वर्ष का कठोर कारावास भोगने तथा एक लाख रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दो वर्ष का कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया था । तारीख 24 अगस्त, 2009 की शिकायत सं. 638 में अपीलार्थी को तारीख 25 अगस्त, 2014 के निर्णय द्वारा ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धारा 27(ख)(ii) और धारा 28 के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया था और एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने और पांच हजार रुपए के जुर्माने का संदाय करने का दंडादेश दिया गया था । अपीलार्थी ने उक्त दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील फाइल की और इसे अपील न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया । उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया पुनरीक्षण भी 2016 के सी. आर. आर. सं. 308 में तारीख 24

मई, 2016 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया । अपीलार्थी ने तारीख 24 मई, 2016 के आदेश को स्पष्ट करने और यह निदेश देने की भी ईप्सा करते हुए कि अपीलार्थी के दंडादेशों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427(1) और (2) के निबंधनों के अनुसार साथ-साथ चलने वाला समझा जाए, 2016 का सी. आर. एम. सं. 19868, प्रकीर्ण आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय द्वारा उक्त आवेदन आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया । अपीलार्थी ने व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 427 की उपधारा (1) के निबंधनों के अनुसार यदि कारावास का दंडादेश पहले से ही भोगने वाले व्यक्ति को पश्चात्वर्ती-दोषसिद्धि पर कारावास का दंडादेश दिया जाता है, तो ऐसा पश्चात्वर्ती कारावास सामान्य रूप से उस कारावास की समाप्ति पर, जिसके लिए वह पहले दंडादिष्ट हुआ था, प्रारंभ होगा । केवल समुचित मामलों में, न्यायालय मामले के तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् दंडादेश को पूर्ववर्ती अधिरोपित दंडादेश के साथ-साथ चलने का आदेश कर सकता है । ऐसे विवेकाधिकार के प्रतिष्ठापन से यह आवश्यक हो जाता है कि न्यायालय द्वारा ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग दृढ़ न्यायिक सिद्धांतों के आधार पर किया जाए न कि यांत्रिक रीति में । दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश देने के विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाए या नहीं, यह अपराध/अपराधों की प्रकृति तथा प्रत्येक मामले के तथ्यों पर परिस्थितियों पर निर्भर करेगा । प्रस्तुत मामले में, अपीलार्थी को पहले स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 22 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और बाद में ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धारा 27(ख)(ii) और 28 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था । अपीलार्थी को जिन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था, उनकी प्रकृति तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए हम यह निदेश देना उचित समझते हैं कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 37 और शिकायत सं. 638 में अपीलार्थी पर अधिरोपित दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । तथापि, जुर्माने की रकम और व्यतिक्रम के लिए दंडादेश या दंडादेशों को कायम रखा जाता है । यदि जुर्माने की रकम का संदाय नहीं किया जाता है, तो व्यतिक्रम के लिए दंडादेश क्रमवर्ती चलेगा न कि साथ-साथ चलेगा । (पैरा 5 और 8)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2016]	(2016) 10 एस. सी. सी. 307 = 2016 (9) स्केल 670 : **बेन्सन** बनाम **केरल राज्य** ;	7
[2013]	(2013) 7 एस. सी. सी. 211 : **वी. के. बंसल** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य** ।	6,7

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2017 की दांडिक अपील सं. 77.

2016 के सी. आर. आर. सं. 308 में फाइल 2016 के सी. आर. एम. सं. 19868 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 12 जुलाई, 2016 के आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री अमन प्रीत सिंह राही, राघव चाध और ए. विनयगम बालान्

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री जयंत के. सूद, अजय पी. तुषीर, उमंग सिंह और जगजीत सिंह छाबड़ा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (श्रीमती) बानुमती ने दिया ।

न्या. (श्रीमती) बानुमती – यह अपील 2016 के सी. आर. आर. सं. 308 में फाइल 2016 के सी. आर. एम. सं. 19868 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 12 जुलाई, 2016 को पारित किए गए उस आदेश से उद्भूत हुई है, जिसके द्वारा अपीलार्थी द्वारा इस निदेश की ईप्सा करते हुए फाइल किया गया आवेदन नामंजूर कर दिया गया कि उस पर तारीख 24 अगस्त, 2009 की शिकायत सं. 638 तथा तारीख 19 अप्रैल, 2009 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 37 में अधिरोपित किए गए दंडादेश साथ-साथ चलने वाले समझे जाएं ।

2. संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं । अपीलार्थी को पुलिस थाना, लौंगोवाल की तारीख 19 अप्रैल, 2009 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 37 में स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 22 के अधीन

तारीख 23 जुलाई, 2014 के निर्णय द्वारा दोषसिद्ध किया गया था और दस वर्ष का कठोर कारावास भोगने तथा एक लाख रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दो वर्ष का कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया था । तारीख 24 अगस्त, 2009 की शिकायत सं. 638 में अपीलार्थी को तारीख 25 अगस्त, 2014 के निर्णय द्वारा ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धारा 27(ख)(ii) और धारा 28 के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया था और एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने और पांच हजार रुपए के जुर्माने का संदाय करने का दंडादेश दिया गया था । अपीलार्थी ने उक्त दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील फाइल की और इसे अपील न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया । उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया पुनरीक्षण भी 2016 के सी. आर. आर. सं. 308 में तारीख 24 मई, 2016 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया । अपीलार्थी ने तारीख 24 मई, 2016 के आदेश को स्पष्ट करने और यह निदेश देने की भी ईप्सा करते हुए कि अपीलार्थी के दंडादेशों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427(1) और (2) के निबंधनों के अनुसार साथ-साथ चलने वाला समझा जाए, 2016 का सी. आर. एम. सं. 19868, प्रकीर्ण आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय द्वारा उक्त आवेदन आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया ।

3. हमने पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

4. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427 के अधीन न्यायालय को दंडादेश साथ-साथ चलने का आदेश करने के लिए प्रदत्त की गई शक्ति वैवेकिक है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427 निम्नलिखित है :–

> "427. **ऐसे अपराधी को दंडादेश जो अन्य अपराध के लिए पहले से दंडादिष्ट है** – (1) जब कारावास का दंडादेश पहले से ही भोगने वाले व्यक्ति को पश्चात्‌वर्ती-दोषसिद्धि पर कारावास या आजीवन कारावास का दंडादेश दिया जाता है तब जब तक न्यायालय यह निदेश न दे कि पश्चात्‌वर्ती दंडादेश ऐसे पूर्व दंडादेश के साथ-साथ भोगा जाएगा, ऐसा कारावास या आजीवन कारावास उस कारावास की समाप्ति पर, जिसके लिए, वह पहले दंडादिष्ट हुआ था, प्रारंभ होगा :

परन्तु जहां उस व्यक्ति को, जिसे प्रतिभूति देने में व्यतिक्रम करने पर धारा 122 के अधीन आदेश द्वारा कारावास का दंडादेश दिया गया है ऐसा दंडादेश भोगने के दौरान ऐसे आदेश के दिए जाने के पूर्व किए गए अपराध के लिए कारावास का दंडादेश दिया जाता है, वहां पश्चात् कथित दंडादेश तुरन्त प्रारंभ हो जाएगा ।

(2) जब किसी व्यक्ति को, जो आजीवन कारावास का दंडादेश पहले से ही भोग रहा है, पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि पर किसी अवधि के कारावास या आजीवन कारावास का दंडादेश दिया जाता है तब पश्चात्वर्ती दंडादेश पूर्व दंडादेश के साथ-साथ भोगा जाएगा ।"

5. धारा 427 की उपधारा (1) के निबंधनों के अनुसार यदि कारावास का दंडादेश पहले से ही भोगने वाले व्यक्ति को पश्चात्वर्ती-दोषसिद्धि पर कारावास का दंडादेश दिया जाता है, तो ऐसा पश्चात्वर्ती कारावास सामान्य रूप से उस कारावास की समाप्ति पर, जिसके लिए वह पहले दंडादिष्ट हुआ था, प्रारंभ होगा । केवल समुचित मामलों में, न्यायालय मामले के तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् दंडादेश को पूर्ववर्ती अधिरोपित दंडादेश के साथ-साथ चलने का आदेश कर सकता है । ऐसे विवेकाधिकार के प्रतिष्ठापन से यह आवश्यक हो जाता है कि न्यायालय द्वारा ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग दृढ़ न्यायिक सिद्धांतों के आधार पर किया जाए न कि यांत्रिक रीति में । दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश देने के विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाए या नहीं, यह अपराध/अपराधों की प्रकृति तथा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा ।

6. **वी. के. बंसल** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

"धारा 427(1) से यह स्पष्ट है कि न्यायालय को निदेश जारी करने की शक्ति और विवेकाधिकार प्राप्त है किंतु न्यायालय को इस प्रकार प्रदत्त की गई शक्ति की वास्तविक प्रकृति को देखते हुए इस वैवेकिक शक्ति का प्रयोग न्यायिक मानदंडों के साथ किया जाएगा न कि यांत्रिक, संवेदन-शून्य और अतिसिद्धांतवादी रीति में । न्यायालयों द्वारा ऐसे विवेकाधिकार के प्रयोग के विषय में कोई अति नियमनिष्ठ दृष्टिकोण अधिकथित करना कठिन है । धारा 427(1) को ध्यान में

---

[1] (2013) 7 एस. सी. सी. 211.

रखते हुए निदेश जारी करने या जारी करने से इनकार करने के विषय में न्यायालय के लिए अनुसरण किया जाने वाला कोई बना बनाया सिद्धांत नहीं है । किसी प्रस्तुत मामले में निदेश जारी किया जाना चाहिए या नहीं, यह कारित किए गए अपराध या अपराधों की प्रकृति और उस तथ्यात्मक स्थिति पर निर्भर करेगा, जिसमें दंडादेशों के साथ-साथ चलने का प्रश्न उद्‌भूत होता है ।"

7. **बेन्सन** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में **वी. के. बंसल** (उपरोक्त) वाले मामले को निर्दिष्ट करने के पश्चात् इस न्यायालय ने अपीलार्थी पर अधिरोपित मूल दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश दिया । उस मामले में अपीलार्थी को कम-से-कम ग्यारह मामलों में भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 379 और 414 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था । अपीलार्थी को उपर्युक्त प्रत्येक मामले में एक अलग निर्णय द्वारा दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया था और दंडादेशों की कुल अवधि लगभग 19 वर्ष थी ।

8. प्रस्तुत मामले में, अपीलार्थी को पहले स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 22 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और बाद में ओषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 की धारा 27(ख)(ii) और 28 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था । अपीलार्थी को जिन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था, उनकी प्रकृति तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए हम यह निदेश देना उचित समझते हैं कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 37 और शिकायत सं. 638 में अपीलार्थी पर अधिरोपित दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । तथापि, जुर्माने की रकम और व्यतिक्रम के लिए दंडादेश या दंडादेशों को कायम रखा जाता है । यदि जुर्माने की रकम का संदाय नहीं किया जाता है, तो व्यतिक्रम के लिए दंडादेश क्रमवर्ती चलेगा न कि साथ-साथ चलेगा ।

9. अपीलार्थी पर अधिरोपित मूल दंडादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश किया जाता है और इस प्रकार यह अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

---

[1] (2016) 10 एस. सी. सी. 307 = 2016 (9) स्केल 670.

एसोसिएशन आफ विक्टिम्स आफ उपहार ट्रेजडी

बनाम

सुशील अंसल और एक अन्य

9 फरवरी, 2017

न्यायमूर्ति रंजन गोगोई, न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ और न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 63, 64 और 65 – जुर्माने की रकम, जुर्माने का संदाय न किए जाने पर कारावास और जुर्माना, दोनों के द्वारा दंडित किए जाने की स्थिति में जुर्माना का संदाय न किए जाने पर कारावास की अवधि – व्यतिक्रम दंडादेश के बाबत कारावास की सीमा मूल कारावास की अवधि के 1/4 तक हो सकती है जिसके विरुद्ध शिकायत अभियुक्त द्वारा की जा सकती है – इसके विपरीत यदि अभियुक्त को घटाए गए दंडादेश के बदले भारी भरकम जुर्माने के संदाय का विकल्प दिया जाता है तो यह उच्चतर व्यतिक्रम दंडादेश दिए जाने का मामला नहीं है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 63, 64 और 65 – भारी भरकम जुर्माना किसी अमीर व्यक्ति पर उसका अतिरिक्त लाभ प्रदान किए जाने के रूप में अधिरोपित नहीं किया जाना चाहिए बल्कि उसकी संदाय करने की सक्षमता के कारणवश अधिरोपित किया जाना चाहिए ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि पुनर्विलोकन याचिकाओं ने अभियुक्तों सुशील अंसल और गोपाल अंसल को इस न्यायालय द्वारा दांडिक अपीलों में तारीख 19 अगस्त, 2015 और 22 सितम्बर, 2015 को दिए गए दंडादेश को इस आधार पर उपांतरित किए जाने की ईप्सा की कि जुर्माने द्वारा दंडादेश को प्रतिस्थापित किए जाने का विधि में कोई उपबंध नहीं है और अभियुक्त भारतीय दंड संहिता की धारा 304क के अधीन अधिकतम दंडादेश भोगने के योग्य हैं । मामला तारीख 13 जून, 1997 को दिल्ली के उपहार सिनेमा में आग लगने की घटना, जिसमें 59 लोगों की जानें चली गईं थीं और लगभग 100 लोग घायल हुए थे, से उद्भूत हुआ था । दांडिक उपेक्षा के आरोप के आधार पर अन्य लोगों के अलावा सिनेमा चलाने वाले अनुज्ञप्तिधारी सुशील असंल और उसके भाई गोपाल असंल,

जो वास्तव में सिनेमा के काराबर का संचालन कर रहे थे, को भारतीय दंड संहिता की धारा 304क, 337 और 338 सपठित धारा 36 के अधीन दोषसिद्ध किया गया । विचारण न्यायालय ने उनको दो वर्ष की अवधि का कारावास भोगने के द्वारा दंडादिष्ट किया जिसको उच्च न्यायालय द्वारा घटाकर एक वर्ष की अवधि का कर दिया गया था । इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने दोषसिद्धि और दंडादेश के विरुद्ध उनकी अपीलों पर विचार करते हुए तारीख 5 मार्च, 2014 के आदेश द्वारा दोषसिद्धि को मान्य ठहरा दिया किन्तु दंडादेश की मात्रा पर भिन्न मत व्यक्त किया । मतभेद को ध्यान में रखते हुए मामले को इस सीमा तक कि ऊपरवर्णित अपीलों में दोषसिद्ध अपीलार्थियों को दिए गए दंडादेश की मात्रा का प्रश्न अंतर्वलित है, तीन न्यायाधीश की न्यायपीठ का निर्दिष्ट कर दिया गया । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने तारीख 19 अगस्त, 2015 के आदेश द्वारा अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दंडादेश को भारतीय दंड संहिता की धारा 304क के अधीन दो वर्षों की अधिकतम अवधि तक बढ़ाए जाने की आवश्यकता है किन्तु एक वर्ष के दंडादेश की अतिरिक्त अवधि के बदले सारभूत रकम का जुर्माना अधिरोपित किए जाना चाहिए और यदि जुर्माने की रकम का संदाय किया जाता है, तो दंडादेश को पहले से भोगी गई अवधि तक घटा दिया जाना चाहिए, समानता के सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए गोपाल अंसल (ए-2) का मामला भी उसी बुनियाद पर टिका हुआ है जिस पर सुशील अंसल का मामला अतः न्यायहित में अपीलार्थियों को जुर्माने का संदाय करने के लिए निर्देशित किया जाए जिससे कि जुर्माने की रकम का प्रयोग या तो दिल्ली राज्यक्षेत्र में ट्रामा सेंटर (अभिघात केंद्र) स्थापित किए जाने या दिल्ली सरकार द्वारा दिल्ली राज्यक्षेत्र में चलाए जा रहे अस्पतालों के ट्रामा सेंटरों (अभिघात केंद्रों) के उन्नयन के प्रयोजनार्थ किया जा सके और निर्देशित किया कि प्रत्येक अपीलार्थी पर 30 करोड़ रुपए का जुर्माना अधिरोपित किया जाना चाहिए और यदि उक्त जुर्माने का संदाय तीन माह की अवधि के भीतर कर दिया जाता है, तो अपीलार्थी को दिए गए दंडादेश को पहले से भोगी गई अवधि तक घटा दिया जाना चाहिए और चूंकि अपीलार्थी सं. 1 की आयु अधिक है, उससे कठोर कारावास भोगे जाने के लिए कहा जाना लाभदायक नहीं होगा और समानता के सिद्धांत और इस मामले के विलक्षण तथ्यों के आधार पर अपीलार्थी सं. 2 को भी दंडादेश भोगने के लिए विवश नहीं किया जाएगा यदि वह भी जुर्माने की सामान रकम का संदाय कर देता है । पुनर्विलोकन की ईप्सा मुख्यतः इस आधार पर की गई है कि यदि एक बार

न्यायालय यह मत व्यक्त कर देता है कि दंडादेश को बढ़ाए जाने की ईप्सा की गई थी, तो उसी दंडादेश को जुर्माने के संदाय के आधार पर घटाए जाने के लिए निर्देशित नहीं किया जा सकता था । पुनर्विलोकन याचिकाओं को बहुसंख्यक निर्णय के आधार पर खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – जहां तक एक वर्ष के दंडादेश की न्यूनतम अवधि का संबंध है, हमारे समक्ष जो स्थिति उत्पन्न हुई है, यह है कि न्यायमूर्ति ठाकुर और न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा दोनों सहमत थे । तथापि, न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा का यह मत भी था कि त्रासदी की प्रकृति और ए-1 और ए-2 और दिल्ली विद्युत बोर्ड द्वारा की गई लापरवाही को देखते हुए, उनको ट्रामा सेन्टर के निर्माण के लिए भारी भरकम रकम के जुर्माने का संदाय करना चाहिए । फिर भी न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा ने इस तथ्य का उल्लेख किया कि सुशील अंसल ने अपने दंडादेश की अधिकांश भाग को भोग लिया है और उसकी उम्र पर भी विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया कि उसके द्वारा पहले ही भोगे गए दंडादेश को पर्याप्त मान लिया जाना चाहिए । न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा द्वारा पारित आदेश को सूक्ष्मतापूर्वक पढ़े जाने पर दर्शित होता है कि जुर्माने के माध्यम से वसूल की गई भारी भरकम रकम का प्रयोग ट्रामा सेन्टर के लिए किया जाना था, दंड को बढ़ाए जाने के पीछे अन्तर्निहित विचार था । निर्देश पर तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने मत व्यक्त किया कि वृहत्तर लोकहित में न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा द्वारा व्यक्त किया गया मत मान्य ठहराया जाना चाहिए किन्तु जुर्माने की रकम को दोनों मामलों में प्रत्येक पर तीस करोड़ रुपए तक घटा दिया गया, प्रकटतः इस बात को ध्यान में रखते हुए कि आहतों को पहले ही प्रतिकर का संदाय किया जा चुका है और न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा के अनुसार भी ए-1 और ए-2 और दिल्ली विद्युत बोर्ड जुर्माने का संदाय करने के दायी हैं (पैराग्राफ 262) । अतः न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा और तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने मत व्यक्त किया जहां तक ए-1 सुशील अंसल का संबंध है, उनकी उम्र से संबंधित समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उनके द्वारा पहले से भोगी गई दंड की अवधि को पर्याप्त माना जाता है यदि वह तीस करोड़ रुपए का संदाय करता है । समानता के सिद्धांत पर यही लाभ ए-2 गोपाल अंसल को भी प्रदान किया गया किन्तु उनका मामला उम्र से संबंधित समस्याओं का मामला नहीं था । इसलिए ये ऐसा मामला नहीं है जिसमें समानता के सिद्धांत को लागू किया जाए । इस सीमा तक आदेश को पुनर्विलोकित किए जाने की आवश्यकता

है । जुर्माने द्वारा दंडादेश की प्रतिस्थापन में एक अन्य त्रुटि है । पुनर्विलोकन के अधीन आदेश के पैराग्राफ 18 पर न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा द्वारा व्यक्त किए गए विचार से सहमत होते हुए न्यायपीठ ने दंड की अवधि में दो वर्ष की अधिकतम अवधि की वृद्धि कर दी किन्तु एक वर्ष की अतिरिक्त अवधि को जुर्माने की सारभूत रकम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया । इसके पीछे विचार यह था कि भारी भरकम जुर्माना अधिरोपित किया जाए और उसका प्रयोग लोकहित के लिए किया जाए, जैसाकि राज्य द्वारा पीएस लोधी कॉलोनी, नई दिल्ली बनाम संजीव नंदा (जिसको सार्वजनिक रूप से 'बीएमडब्ल्यू मारो और भागो' वाले मामले के नाम से जाना जाता है) वाले मामले में किया गया है । उस मामले में धारा 304क के अधीन दोषसिद्धि को धारा 304 के भाग II की दोषसिद्धि में परिवर्तित किया गया था किन्तु दंडादेश की अवधि को पहले से भोगी गई अवधि तक घटा दिया गया था और न्यायालय ने पचास लाख रुपए का जुर्माना अधिरोपित किया था जिसका प्रयोग मारो और भागो मामलों के आहतों के लाभ के लिए किया जाना था । उक्त आदेश में दो वर्ष की समाज सेवा का भी आदेश था । वर्तमान मामले के विलक्षण तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, वृहत्तर लोकहित में न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा और तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने आवश्यक रूप से मात्र यह उचित प्रतीत किया कि दंड को कारावास के दंडादेश के अतिरिक्त भारी भरकम जुर्माने के अधिरोपण तक उपांतरित कर दिया जाए । बंदी बनाए जाने के अतिरिक्त प्रायश्चित जुर्माने का अधिरोपण अपराध व्यसनी (बार-बार अपराध करने वाला) को दंड शास्त्र का भय दिखाने के प्रयोजन को पूर्ण करता है । यहां पर यह उल्लेख किया जा सकता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304क के अधीन या तो मात्र कारावास या जुर्माना या केवल जुर्माना विहित दंड है । धारा 304क के अधीन न्यायालयों को व्यापक विवेकाधिकार और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय और इस न्यायालय ने अपील में कारावास को एक वर्ष तक सीमित कर दिया, हमारे विचार में वह दंड जो भय दिखाकर निवारण करेगा और दोनों कारावासों द्वारा लोक प्रयोजन और भारी भरकम जुर्माना इस प्रकार के मामले में समुचित दंड होगा । भारतीय दंड संहिता की धारा 63 के अधीन जहां कोई राशि व्यक्त नहीं की गई है जिस तक जुर्माना विस्तारित किया जा सके, जुर्माने की रकम जिसका अपराधकर्ता दायी है असीमित है, किन्तु अत्यधिक नहीं होनी चाहिए । अपराध की घोरता और अभियुक्त द्वारा प्राप्त किए गए अवैध लाभों को ध्यान में रखते

हुए साठ करोड़ रुपए तक की रकम का अधिरोपित किया गया जुर्माना अधिक नहीं है । तथापि, भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत जुर्माने द्वारा दंडादेश के प्रतिस्थापन का कोई उपबंध नहीं है । एकमात्र उपबंध भारतीय दंड संहिता की धारा 65 के अधीन व्यतिक्रम दंडादेश का है । इसलिए उस भाग में भी सुधार अपेक्षित है । (पैरा 14, 15, 16, 17, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 10 एस. सी. सी. 359 : **सुशील अंसल** बनाम **राज्य द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो** ;	13
[2015]	(2015) 5 एस. सी. सी. 197 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **महताब** ;	6
[2015]	(2015) 5 एस. सी. सी. 182 : **पंजाब राज्य** बनाम **सौरभ बख्शी** ;	5
[2015]	(2015) 1 एस. सी. सी. 222 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **सुरेंद्र सिंह** ;	5
[2014]	(2014) 9 एस. सी. सी. 637 : **प्रीतम चौहान** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र** ;	5
[2014]	(2014) 6 एस. सी. सी. 173 : **सुशील अंसल** बनाम **राज्य द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो** ;	2
[2014]	(2014) 3 एस. सी. सी. 485 : **वी. के. वर्मा** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो** ;	6
[2013]	(2013) 6 एस. सी. सी. 770 : **अंकुश शथ्वाजी गायकवाड़** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	5
[2012]	(2012) 11 एस. सी. सी. 690 : **लाभ सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	6
[2012]	(2012) 8 एस. सी. सी. 734 : **गुरु बसवराज** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	5
[2012]	(2012) 8 एस. सी. सी. 450 : **राज्य द्वारा पीएस लोधी कॉलोनी, नई दिल्ली** बनाम **संजीव नंदा** ;	18

[2012]	(2012) 2 एस. सी. सी. 648 : **एलिस्टर एंथोनी परेरा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	5
[2012]	(2012) 2 एस. सी. सी. 182 : **पंजाब राज्य** बनाम **बलविंदर सिंह** ;	5
[2010]	(2010) 4 एस. सी. सी. 562 : **नन्द लाल** बनाम **उत्तराखंड राज्य** ;	6
[2009]	(2009) 9 एस. सी. सी. 509 : **बेयास महतो** बनाम **बिहार राज्य** ;	6
[2008]	(2008) 8 एस. सी. सी. 225 : **मनीष जालान** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	6
[2006]	(2006) 7 एस. सी. सी. 414 : **बीना फिलिपोस** बनाम **केरल राज्य** ;	6
[2002]	(2002) 10 एस. सी. सी. 76 : **देवी राम** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	6
[2002]	(2002) 3 एस. सी. सी. 738 : **कर्नाटक राज्य** बनाम **श्रणप्पा बसनागौड़ा रैगोडार** ;	5
[1999]	(1999) 9 एस. सी. सी. 645 : **आर. वी लिंगदोह** बनाम **राज्य (दिल्ली)** ;	6
[1979]	(1979) 4 एस. सी. सी. 719 : **रतन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ।	5

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2015 की पुनर्विलोकन दांडिक याचिका सं. 712-714 (2010 की दांडिक अपील सं. 600-602).

याची द्वारा फाइल की गई 2010 की दांडिक अपील संख्या 600-602 से उद्‌भूत पुनर्विलोकन आवेदन ।

उपस्थित पक्षकारों की ओर से सर्वश्री के. टी. एस. तुलसी, सलमान खुर्शीद, (सुश्री) रैबेका जॉन, अशोक एच. देसाई, हरीश एन. साल्वे, के. राधाकृष्णन् (सभी

वरिष्ठ अधिवक्ता), जयंत कुमार मेहता, सुकान्त विक्रम, अंशुमान साहनी, नवनदीप मट्टा, अभिनव अंकित, संजय जैन, (सुश्री) आजरा रहमान, (सुश्री) रोशनी डब्ल्यू. आनंद, (सुश्री) अलिशा पांडा, विकास अग्रवाल, संजय नारायण, सुदर्शन सिंह रावत, ललित भसीन, राकेश यू. उपाध्याय, (सुश्री) अपराजिता, टी. ए. खान, मुकेश कुमार मरोड़िया, (सुश्री) किरण भारद्वाज, टी. ए. खान (बी. के. प्रसाद की ओर से) और बी. वी. बलरामदास (वरिष्ठ अधिवक्ताओं के साथ उपस्थित पक्षकारों की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ ने दिया ।

न्या. जोसेफ – इन पुनर्विलोकन याचिकाओं के माध्यम से दांडिक अपीलों में तारीख 19 अगस्त, 2015 और 22 सितम्बर, 2015 को इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अनुसार मुख्य रूप से अभियुक्त सुशील अंसल और गोपाल अंसल को प्रदान किए गए दंडादेश के उपांतरण की ईप्सा की गई है । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री हरीश एन. साल्वे की मुख्य दलील यह है कि जुर्माने द्वारा दंडादेश को प्रतिस्थापित किए जाने का विधि में कोई उपबंध नहीं है । पुनर्विलोकन याचियों का यह पक्षकथन भी है कि अभियुक्त सं. 1 और 2 1860 की भारतीय दंड संहिता (जिसको इसमें इसके पश्चात् 'संहिता' कहकर निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 304क के अधीन अधिकतम दंडादेश प्रदान किए जाने योग्य हैं । हम दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेलों अशोक एच. देसाई, सलमान खुर्शीद, के. टी. एस. तुलसी, राधाकृष्णन् और सुश्री रैबेका जॉन को सुनने के पश्चात् यह आवश्यक महसूस करते हैं कि मामले की पृष्ठभूमि को निर्दिष्ट, जैसीकि इस न्यायालय द्वारा पारित विभिन्न मामलों में परिवर्तित होती है, किया जाए ।

2. इस न्यायालय ने **सुशील अंसल** बनाम **राज्य द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो**[1] वाले मामले में पैराग्राफ 27 और 28 में विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित दोषसिद्धि और दंडादेश के आदेश पर विचार किया :–

"27. विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए परिणाम और अभिलिखित निष्कर्षों के आधार पर सुशील अंसल (ए-1) और गोपाल अंसल (ए-2) को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 304क, 337 और 338 सपठित धारा 36 के अधीन दंडनीय अपराधों को कारित किए जाने के लिए दोषसिद्ध किया गया और उनमें से प्रत्येक को दो वर्ष की अवधि का कठोर कारावास भोगने और पांच हजार रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम होने पर छह माह का दंडादेश भोगने के द्वारा दंडादिष्ट किया गया था । उनको 1952 के चलचित्र अधिनियम की धारा 14 के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया था और एक हजार रुपए के जुर्माने का संदाय करने या जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम होने पर दो माह का कारावास भोगने के द्वारा दंडादिष्ट किया गया था । सभी दंडादेशों को साथ-साथ चलाए जाने के लिए निर्देशित किया गया था । विचारण न्यायालय ने आगे एस. एस. शर्मा (ए-13) और एन. डी. तिवारी (ए-14), जो दिल्ली नगर निगम के अधिकारी थे और साथ ही दिल्ली अग्निसेवा के प्रभागीय अधिकारी एच. एस. पनवार (ए-15) को भी उपरोक्त उपबंधों के अधीन दोषसिद्ध किया और समान रूप से दो वर्ष का कठोर कारावास भोगने और पांच हजार रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम होने पर छह माह का कारावास भोगने के द्वारा दंडादिष्ट किया था । इसके अतिरिक्त विचारण न्यायालय ने जीपीटी ग्रीन पार्क थियेटर उपहार सिनेमा के प्रबंधकों अर्थात् आर. के. शर्मा (ए-5), एन. एस. चोपड़ा (ए-6) और सहायक प्रबंधक अजित चौधरी (ए-7) और साथ ही द्वारपाल मनमोहन उनियान (ए-8) के विरुद्ध भी भारतीय दंड संहिता की धारा 304 सपठित धारा 36 के अधीन आरोप विरचित किए और उनको साबित पाया और सात वर्ष की अवधि के कठोर कारावास भोगने और पांच हजार रुपए के जुर्माने के संदाय करने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम होने पर छह माह का कारावास भोगने के द्वारा दंडादिष्ट किया ।

[1] (2014) 6 एस. सी. सी. 173.

28. बी. एम. सतीजा (ए-9) और ए. के. गेड़ा (ए-10), जो सुसंगत समयबिन्दु पर दिल्ली विद्युत बोर्ड का निरीक्षक था और वीर सिंह (ए-11) जो सुसंगत समयबिन्दु पर दिल्ली विद्युत बोर्ड का सीनियर फिटर था, को भी भारतीय दंड संहिता की धारा 304 सपठित धारा 36 के अधीन समान रूप से दोषसिद्ध किया गया और सात वर्ष का कठोर कारावास भोगने और पांच हजार रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय में चूक होने पर छह माह का कारावास भोगने के द्वारा दंडादिष्ट किया गया । जीपीटी के निदेशक आर. एम. पुरी (ए-3) और सहायक महाप्रबंधक के. एल. मल्होत्रा (ए-4), लोक निर्माण विभाग के अधिशासी अभियंता एस. एन. डनडोना (ए-12) और दिल्ली अग्निसेवा के स्टेशन अधिकारी सुरेन्द्र दत्त (ए-16), जिन सभी की मृत्यु विचारण के लंबन के दौरान हो गई, के विरुद्ध मामले का शमन हो गया । केवल यही नहीं विचारण न्यायालय ने मामले में दिल्ली पुलिस उपायुक्त (विधि) को सम्मिलित करते हुए अन्य व्यक्तियों के संबंध में सिनेमा को अस्थायी अनुज्ञा के आधार पर चलाए जाने और इस प्रकार की अनुज्ञाओं को जारी किए जाने के पूर्व विस्तृत निरीक्षक रिपोर्टों की मांग न किए जाने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(8) के अधीन मामले का आगे अन्वेषण किए जाने के लिए निदेशित किया ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

3. पैराग्राफ 29 में उच्च न्यायालय में फाइल की गई अपीलों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है :–

"29. विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध सभी 12 अभियुक्तों ने उनके विरुद्ध पारित निर्णय और आदेश द्वारा व्यथित होकर दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल कीं । एसोसिएशन आफ विक्टिम्स आफ उपहार ट्रेजडी ने भी विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश को इस सीमा तक चुनौती देते हुए कि अभियुक्तों को केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 304क के अधीन दंडनीय अपराधों के बाबत दोषसिद्ध किया जाए न कि 304 के भाग 2 के अधीन, पुनरीक्षण याचिका फाइल की ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

4. पैराग्राफ 45 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का उल्लेख

किया गया है :–

"45. उच्च न्यायालय ने उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर सुशील अंसल (ए-1) और गोपाल अंसल (ए-2) की दोषसिद्धि को मान्य ठहराया । उन्होंने एच. एस. पनवार (ए-15) की दोषसिद्धि को भी भारतीय दंड संहिता की धाराओं 304क, 337 और 338 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए मान्य ठहराया किन्तु उनको प्रदान किए गए दंडादेश को धारा 304क के अधीन एक वर्ष के कठोर दंडादेश तक विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माने में मध्यक्षेप किए बिना घटा दिया । उच्च न्यायालय ने उपरोक्त तीनों अपीलार्थियों को धारा 337 के अधीन प्रदान किए गए दंडादेश को भी तीन माह के कठोर कारावास तक और धारा 338 के अधीन एक वर्ष के कठोर कारावास तक यह निर्देश देते हुए घटा दिया कि सभी दंडादेश, अंसल बंधुओं (ए-1 और ए-2) को चलचित्र अधिनियम की धारा 14 के अधीन प्रदान किए गए दंडादेश को सम्मिलित करते हुए, जिनके लिए उक्त दोनों अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया गया था, साथ-साथ चलेंगे ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

5. पैराग्राफ 48 में इस न्यायालय के समक्ष की गई अपील के संबंध में उल्लेख किया गया है :–

"48. हमारे समक्ष उन सभी लोगों द्वारा अपीलें फाइल की गई हैं जिनको उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया है और कारावास भोगने के द्वारा दंडादिष्ट किया गया है, सिवाय दोषसिद्ध द्वारपाल मनमोहन उनियान (ए-8) के जिसने निचले न्यायालयों द्वारा प्रदान किए गए दंडादेशों को भोग लिया है । हमारे समक्ष केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा फाइल की गई अपील सं. 605-616 भी हैं जिनके द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा उपरवर्णित चारों व्यक्तियों के पक्ष में अभिलिखित दोषमुक्ति को चुनौती दी गई है । एसोसिएशन आफ विक्टिम्स आफ उपहार सिनेमा ने भी 2010 की दांडिक अपील सं. 600-602 फाइल की है जिनमें उन्होंने उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के आदेश को चुनौती दी है और अभियुक्त व्यक्तियों के भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के भाग II के अधीन दंडनीय अपराध के लिए पुनः विचारण किए जाने की प्रार्थना की है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

6. संक्षेप में, उच्च न्यायालय ने 1860 की भारतीय दंड संहिता की धारा 304क, 337 और 338 सपठित धारा 36 के अधीन सुशील अंसल (ए-1) और गोपाल अंसल (ए-2) की दोषसिद्धि को मान्य ठहराया किन्तु भारतीय दंड संहिता की धारा 304क के अधीन दंडादेश को एक वर्ष के कठोर कारावास तक, धारा 337 के अधीन तीन माह तक और 338 के अधीन एक वर्ष तक घटा दिया । सभी दंडादेशों को साथ-साथ चलाया जाना था ।

7. सभी दोषसिद्ध व्यक्तियों ने इस न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल की हैं । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने 2010 की अपील सं. 605-616 भी फाइल की है । एसोसिएशन आफ विक्टिम्स आफ उपहार सिनेमा ने दोषमुक्ति को चुनौती देते हुए और भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के भाग II के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए सभी अभियुक्तों का पुनर्विचारण किए जाने हेतु 2010 की अपील सं. 600-602 फाइल की ।

8. पैराग्राफ 222 न्यायमूर्ति ठाकुर द्वारा पारित आदेश के क्रियान्वयन भाग से संबंधित है :–

> "222.1. सुशील अंसल (ए-1) और गोपाल अंसल (ए-2) द्वारा अलग-अलग फाइल की गई 2010 की दांडिक अपील सं. 597 और 598 को एतद्द्वारा उनकी दोषसिद्धि और उनको प्रदान किए गए दंडादेश को मान्य ठहराते हुए खारिज की जाती है ।
>
> 222.2. प्रभागीय अग्नि शमन अधिकारी एच. एस. पंवार (ए-15) द्वारा फाइल की गई 2010 की दांडिक अपील सं. 599 को भी उसकी दोषसिद्धि और उसको प्रदान किए गए दंडादेश को मान्य ठहराते हुए खारिज की जाती है ।
>
> 222.3. दिल्ली विद्युत बोर्ड निरीक्षक बी. एम. सतीजा (ए-9) और वरिष्ठ फिटर वीर सिंह (ए-11) द्वारा फाइल की गई 2010 की दांडिक अपील सं. 617-627 और 2010 की दांडिक अपील सं. 604 को इस सीमा तक भागतः स्वीकार किया जाता है कि उक्त दोनों अपीलार्थियों की दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 337 और 338 सपठित धारा 36 के प्रभाव तक उनको प्रदान किए गए दंडादेश में बिना कोई मध्यक्षेप किए परिवर्तित किया जाता है ।
>
> 222.4. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा फाइल की गई 2010 की दांडिक अपील सं. 605-616 और एसोसिएशन आफ विक्टिम्स आफ

उपहार ट्रेजडी द्वारा फाइल की गई 2010 की दांडिक अपील सं. 600-602 खारिज की जाती है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

9. न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा ने पैराग्राफ 262 पर यह मत व्यक्त किया है कि एक वर्ष का अतिरिक्त दंडादेश प्रदान किया जाना चाहिए किन्तु उसको जुर्माने की सारभूत रकम द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है ।

"262. इसलिए, मेरा विचार है कि किसी सीमा तक न्यायहित अपीलार्थी-अभियुक्त पर सारभूत जुर्माना अधिरोपित किए जाने के द्वारा पूर्ण होगा और न कि मात्र कारावास के दंडादेश द्वारा । इसलिए, जबकि उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित एक वर्ष का दंडादेश मान्य ठहराया जाता है, एवीयूटी (एसोसिएशन आफ विक्टिम्स आफ उपहार ट्रेजडी) की अपील को मंजूर करते हुए एक वर्ष का अतिरिक्त दंडादेश उचित है जिसको जुर्माने की सारभूत राशि द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा और जिसको सुशील अंसल और गोपाल अंसल द्वारा दिल्ली विद्युत बोर्ड जिसका प्रतिनिधित्व एवीयूटी द्वारा किया गया और जो उपहार त्रासदी के आहतों को प्रतिकर प्रदान किए जाने से अलग नहीं हो सकते, के साथ समान रूप से वहन किया जाएगा ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

10. पैराग्राफ 263 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ए-1 सुशील अंसल द्वारा पहले भुगते गए दंडादेश को पर्याप्त प्रतीत किया जाना चाहिए ।

"263. यद्यपि मैं 2010 की दांडिक अपील सं. 598 में अपीलार्थी सं. 2 गोपाल अंसल, जो वास्तव में उपहार थियेटर को चलाने के कारबार का संचालन कर रहा था और जिस पर सिनेमा दर्शकों की सुरक्षा को सुनिश्चित करने का उत्तरदायित्व वृहत्तर मात्रा में था, की दोषसिद्धि और दंडादेश को मान्य ठहराता हूं, किन्तु वास्तविकता यह है कि 2010 की दांडिक अपील सं. 597 में अपीलार्थी सुशील अंसल मुख्यतः लाइसेंसदार था जो कारबार का संचालन कर रहा था और उपहार थियेटर को अपने भाई ए-2 गोपाल अंसल के माध्यम से चला रहा था । इसलिए यद्यपि 2010 की दांडिक अपील सं. 597 में प्रदान किया गया एक वर्ष का दंडादेश

उचित है और उसको मान्य ठहराया जाता है, उसके द्वारा पहले भोगे गए दंडादेश को उक्त अपील में पर्याप्त प्रतीत किया जाता है चूंकि उसने दंडादेश के अधिकांश भाग को पहले ही भोग लिया है और वह अपील के खारिज हो जाने के बावजूद भी अधिक से अधिक तीन माह का आगे का दंडादेश छूट के साथ भोगेगा ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

11. पैराग्राफ 267 में आगे यह आदेशित किया गया कि ए-1 और ए-2, प्रत्येक एक वर्ष के बढ़ाए गए दंडादेश के बदले में पचास करोड़ रुपए का संदाय करेंगे :–

"267. इसलिए, इसमें इसके पूर्व अभिलिखित कारणों के आधार पर मेरा विचार है कि एक वर्ष की अवधि के बढ़ाए गए दंडादेश, जिसको मैंने एवीयूटी और केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा फाइल की गई अपीलों में मंजूर किया, के बदले में 100 करोड़ रुपए (सौ करोड़ रुपए) के जुर्माने से प्रतिस्थापित किया जाएगा जिसको ए-1 सुशील अंसल और ए-2 गोपाल अंसल द्वारा बराबर वहन किया जाएगा अर्थात् प्रत्येक 50 करोड़ रुपए वहन करेगा और कुल योग 100 करोड़ रुपया होगा और इस रकम का संदाय उच्चतम न्यायालय के महासचिव के नाम में जारी किए गए डिमांड ड्राफ्ट द्वारा किया जाएगा जिसको किसी राष्ट्रीयकृत बैंक में सावधि जमा के रूप में रखा जाएगा और उपहार आहतों की याद में नई दिल्ली में द्वारका में किसी उपयुक्त स्थान पर बनाए जाने वाले ट्रामा सेंटर के निर्माण में व्यय किया जाएगा चूंकि हमको सूचित किया गया है कि द्वारका दुर्घटनाओं के लिए जाना जाने वाला क्षेत्र है किन्तु वहां पर दुर्घटना के आहतों के इलाज के लिए कोई सरकारी अवसंरचना या लोक स्वास्थ्य केन्द्र नहीं है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

12. न्यायालय का आदेश, जहां तक सुसंगत है, पैराग्राफ 270.4 में है :–

"270.4. उन अपीलों में अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई 2010 की दांडिक अपील सं. 597-599 और राज्य द्वारा फाइल की गई 2010 की दांडिक अपील सं. 605, 606 और 613 और एसोसिएशन आफ विक्टिम्स आफ उपहार ट्रेजडी द्वारा फाइल की गई

2010 की दांडिक अपील सं. 600-602 उस सीमा, जिस तक उक्त अपीलें दोषसिद्ध अपीलार्थियों को प्रदान किए जाने वाले दंड की प्रमात्रा के प्रश्न को अंतर्वलित करती हैं, तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ को निर्दिष्ट की जाएगी ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

13. तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा पारित आदेश **सुशील अंसल** बनाम **राज्य द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो**[1] वाले मामले में संप्रकाशित है, पैराग्राफ 17 और 18 सुसंगत है :–

"17. हम इस तथ्य के प्रति जागरूक हैं कि इस प्रकार के मामलों में उच्चतर दंडादेश अपेक्षित होता है, किन्तु न्यायालय को विधि के अन्तर्गत उपलब्ध विकल्प, जिसके द्वारा दंडादेश विहित किया गया हो, तक सीमित रहना चाहिए । वह तथ्य जो शेष रह जाता है, यह है कि विधि के अन्तर्गत विहित अधिकतम दंडादेश दो वर्ष की अवधि का है और उच्च न्यायालय ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए एक वर्ष की अवधि का दंडादेश प्रदान किए जाने का विकल्प चुना है जिसका अनुमोदन न्यायमूर्ति ठाकुर द्वारा किया गया है । विसम्मति व्यक्त करते हुए न्यायमूर्ति मिश्रा ने उपांतरित किया है कि दंडादेश को बढ़ा दिया जाए किन्तु बढ़ाए गए दंडादेश के बदले सारभूत रकम के संदाय का विकल्प देते हुए आगे निदेशित किया कि जेल के दंडादेश को उस अवधि तक घटा दिया जाए जिसको पहले ही भोगा जा चुका है, यदि बढ़ाए गए दंडादेश के बदले में जुर्माने की रकम का संदाय कर दिया गया है ।

18. मामले के तथ्यों, दोनों विद्वान् न्यायाधीशों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों और दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर विचारोपरांत हम न्यायमूर्ति मिश्रा द्वारा व्यक्त किए गए मत से सहमत हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए दंडादेश में भारतीय दंड संहिता की धारा 304क के अधीन दो वर्ष की अधिकतम अवधि की वृद्धि किए जाने की आवश्यकता है किन्तु एक वर्ष के दंडादेश की अतिरिक्त अवधि के बदले जुर्माने की भारी भरकम रकम अधिरोपित किए जाने की आवश्यकता है । हमारा आगे मत है

[1] (2015) 10 एस. सी. सी. 359.

कि यदि जुर्माने की उक्त रकम का संदाय किया जाता है, तो दंडादेश को पहले से भोगे गए दंडादेश की अवधि तक घटा दिया जाना चाहिए, जैसाकि न्यायमूर्ति मिश्रा द्वारा सुशील अंसल (ए-1) के मामले में स्पष्ट किया गया है । समानता के सिद्धांत के आधार पर गोपाल अंसल (ए-2) के मामले पर भी उसी दृष्टिकोण से विचार किया जाएगा जिस दृष्टिकोण से सुशील अंसल (ए-1) के मामले में किया गया है । अतः हमारी सुविचारित राय है कि न्यायहित तभी पूर्ण होगा यदि अपीलार्थियों को जुर्माने का संदाय करने के लिए निर्देशित किया जाता है जिससे कि जुर्माने की रकम का प्रयोग या तो दिल्ली राज्य क्षेत्र में ट्रामा सेंटर स्थापित करने के प्रयोजनार्थ किया जा सके या दिल्ली सरकार द्वारा दिल्ली राज्यक्षेत्र में चलाए जा रहे अस्पतालों के ट्रामा सेंटरों को उन्नत करने के लिए किया जा सके ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया)

14. अतः, जहां तक एक वर्ष के दंडादेश की न्यूनतम अवधि का संबंध है, हमारे समक्ष जो स्थिति उत्पन्न हुई है, यह है कि न्यायमूर्ति ठाकुर और न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा दोनों सहमत थे । तथापि, न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा का यह मत भी था कि त्रासदी की प्रकृति और ए-1 और ए-2 और दिल्ली विद्युत बोर्ड द्वारा की गई लापरवाही को देखते हुए, उनको ट्रामा सेंटर के निर्माण के लिए भारी भरकम रकम के जुर्माने का संदाय करना चाहिए । फिर भी न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा ने इस तथ्य का उल्लेख किया कि सुशील अंसल ने अपने दंडादेश का अधिकांश भाग भोग लिया है और उसकी उम्र पर भी विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया कि उसके द्वारा पहले भोगे गए दंडादेश को पर्याप्त मान लिया जाना चाहिए ।

15. न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा द्वारा पारित आदेश को सूक्ष्मतापूर्वक पढ़े जाने पर दर्शित होता है कि जुर्माने के माध्यम से वसूल की गई भारी भरकम रकम का प्रयोग ट्रामा सेंटर के लिए किया जाना था, दंड को बढ़ाए जाने के पीछे अन्तर्निहित विचार था । निर्देश पर तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने मत व्यक्त किया कि वृहत्तर लोकहित में न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा द्वारा व्यक्त किया गया मत मान्य ठहराया जाना चाहिए किन्तु जुर्माने की रकम को दोनों में से प्रत्येक पर तीस करोड़ रुपए तक घटा दिया गया, प्रकटतः इस बात को ध्यान में रखते हुए कि आहतों को पहले ही प्रतिकर का संदाय किया जा चुका है और न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा के अनुसार भी ए-1 और ए-2 और दिल्ली विद्युत बोर्ड जुर्माने का संदाय करने के दायी

हैं । (पैराग्राफ 262)

16. अतः न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा और तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने मत व्यक्त किया कि जहां तक ए-1 सुशील अंसल का संबंध है, उनकी उम्र से संबंधित समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उसके द्वारा पहले से भोगी गई दंड की अवधि को पर्याप्त माना जाता है यदि वह तीस करोड़ रुपए का संदाय करता है ।

17. समानता के सिद्धांत पर यही लाभ ए-2 गोपाल अंसल को भी प्रदान किया गया ; किन्तु उनका मामला उम्र से संबंधित समस्याओं का मामला नहीं था । इसलिए यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें समानता के सिद्धांत को लागू किया जाए । इस सीमा तक आदेश को पुनर्विलोकित किए जाने की आवश्यकता है ।

18. जुर्माने द्वारा दंडादेश की प्रतिस्थापन में एक अन्य त्रुटि है । पुनर्विलोकन के अधीन आदेश के पैराग्राफ 18 पर न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा द्वारा व्यक्त किए गए विचार से सहमत होते हुए न्यायपीठ ने दंड की अवधि में दो वर्ष की अधिकतम अवधि की वृद्धि कर दी किन्तु एक वर्ष की अतिरिक्त अवधि को जुर्माने की सारभूत रकम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया । इसके पीछे विचार यह था कि भारी भरकम जुर्माना अधिरोपित किया जाए और उसका प्रयोग लोकहित के लिए किया जाए, जैसाकि **राज्य द्वारा पीएस लोधी कॉलोनी, नई दिल्ली** बनाम **संजीव नंदा**[1] (जिसको सार्वजनिक रूप से 'बीएमडब्ल्यू मारो और भागो' वाले मामले के नाम से जाना जाता है) वाले मामले में किया गया है । उस मामले में धारा 304क के अधीन दोषसिद्धि को धारा 304 के भाग II की दोषसिद्धि में परिवर्तित किया गया था किन्तु दंडादेश की अवधि को पहले से भोगी गई अवधि तक घटा दिया गया था और न्यायालय ने पचास लाख रुपए का जुर्माना अधिरोपित किया था जिसका प्रयोग मारो और भागो मामलों के आहतों के लाभ के लिए किया जाना था । उक्त आदेश में दो वर्ष की समाज सेवा का भी आदेश था । वर्तमान मामले के विलक्षण तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, वृहत्तर लोकहित में न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा और तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने आवश्यक रूप से मात्र यह उचित प्रतीत किया कि दंड को कारावास के दंडादेश के अतिरिक्त भारी भरकम जुर्माने के अधिरोपण तक उपांतरित कर दिया जाए ।

---

[1] (2012) 8 एस. सी. सी. 450.

19. बंदी बनाए जाने के अतिरिक्त प्रायश्चित जुर्माने का अधिरोपण अपराध व्यसनी (बार-बार अपराध करने वाला) को दंड शास्त्र का भय दिखाने के प्रयोजन को पूर्ण करता है । यहां पर यह उल्लेख किया जा सकता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304-क के अधीन या तो मात्र कारावास या जुर्माना या केवल जुर्माना विहित दंड है । धारा 304क के अधीन न्यायालयों के व्यापक विवेकाधिकार को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय और इस न्यायालय ने अपील में कारावास को एक वर्ष तक सीमित कर दिया, हमारे विचार में वह दंड जो कारावास और भारी भरकम जुर्माना, दोनों के द्वारा भय दिखाकर निवारण और लोक प्रयोजन के उद्देश्य की पूर्ति करेगा, इस प्रकार के मामले में समुचित दंड होगा । भारतीय दंड संहिता की धारा 63 के अधीन जहां कोई राशि जिस तक जुर्माना विस्तारित किया जा सके, व्यक्त नहीं की गई है, जुर्माने की रकम जिसका अपराधकर्ता दायी है असीमित होगी, किन्तु अत्यधिक नहीं होनी चाहिए । अपराध की घोरता और अभियुक्त द्वारा प्राप्त किए गए अवैध लाभों को ध्यान में रखते हुए साठ करोड़ रुपए तक की रकम का अधिरोपित किया गया जुर्माना अधिक नहीं है । तथापि, भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत जुर्माने द्वारा दंडादेश के प्रतिस्थापन का कोई उपबंध नहीं है । एकमात्र उपबंध भारतीय दंड संहिता की धारा 65 के अधीन व्यतिक्रम दंडादेश का है । इसलिए उस भाग में भी सुधार अपेक्षित है ।

20. अतः तारीख 19 अगस्त, 2015 और 22 सितम्बर, 2015 के आदेशों को नीचे उल्लिखित तरीके में पुनर्विलोकित किया जाता है :–

> "(i) ए-1 सुशील अंसल के मामले में अधिक आयु से संबंधित समस्याओं को ध्यान में रखते हुए, जैसाकि तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा तारीख 22 सितम्बर, 2015 के आदेश में मूल्यांकन किया गया है और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित एक वर्ष की अवधि में से उसने पहले ही लगभग 9 माह का कारावास भोग लिया है जिसमें छूट भी सम्मिलित है, उसका कारावास का दंडादेश पहले भोगे गए दंडादेश की अवधि तक घटाया जाता है । तथापि, उस पर तीस करोड़ रुपए के जुर्माने का दंड भी अधिरोपित किया जाता है । अतः मामले के विलक्षण तथ्यों को ध्यान में रखते हुए जैसाकि न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा और तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा मूल्यांकन किया गया है, हम ए-1 सुशील अंसल के दंडादेश के पुनर्विलोकन के प्रार्थना को स्वीकार

करने से इनकार करते हैं ।

(ii) ए-2 गोपाल अंसल के मामले में एक वर्ष के कारावास के दंडादेश की अवधि, जैसाकि उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित किया गया और दोनों न्यायाधीशों न्यायमूर्ति ठाकुर और न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा द्वारा सहमति व्यक्त की गई, को मान्य ठहराया जाता है किन्तु उस पर तीस करोड़ रुपए के जुर्माने का दंड भी अधिरोपित किया जाता है ।

(iii) यदि अधिरोपित जुर्माने की वसूली हो जाती है तो उसका प्रयोग न्यायमूर्ति ज्ञान सुधा मिश्रा द्वारा तारीख 5 मार्च 2014 के आदेश में उल्लिखित प्रयोजनों के लिए किया जाएगा ।

(iv) जुर्माने की रकम के संदाय में चूक होने पर ए-1 और ए-2, दोनों, भारतीय दंड संहिता की धारा 65 के अधीन अधिकतम अनुज्ञेय छह माह का कारावास भोगेंगे ।

(v) ए-2 गोपाल अंसल को अभ्यर्पण करने और शेष दंडादेश को भोगने के लिए चार सप्ताह का समय प्रदान किया जाता है ।"

न्या. गोयल – ये पुनर्विलोकन याचिकाएं 2010 की दांडिक अपील सं. 600-602, दांडिक अपील सं. 597-98 और दांडिक अपील सं. 605-06 में इस न्यायालय के आदेशों के पुनर्विलोकन की ईप्सा करते हुए फाइल की गई है । चूंकि दलीलें केवल सुशील अंसल और गोपाल अंसल को दिए गए दंडादेश के संबंध में दी गईं हैं, इस न्यायालय द्वारा विचारण इसी पहलू तक सीमित है ।

2. मामला तारीख 13 जून, 1997 को दिल्ली के उपहार सिनेमा में आग लगने की घटना, जिसमें 59 लोगों की जानें चली गईं और लगभग 100 लोग घायल हुए थे, से उद्भूत हुआ था । दांडिक उपेक्षा के आरोप के आधार पर अन्य लोगों के अलावा सिनेमा चलाने वाले अनुज्ञप्तिधारी सुशील अंसल और उसके भाई गोपाल अंसल, जो वास्तव में सिनेमा के कारबार का संचालन कर रहे थे, को भारतीय दंड संहिता की धारा 304क, 337, 338 सपठित धारा 36 के अधीन दोषसिद्ध किया गया । विचारण न्यायालय ने उनको दो वर्ष की अवधि का कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया जिसको उच्च न्यायालय द्वारा घटाकर एक वर्ष की अवधि का कर दिया गया था । इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने दोषसिद्धि और दंडादेश के विरुद्ध उनकी अपीलों पर विचार करते हुए तारीख 5 मार्च,

2014 के आदेश द्वारा दोषसिद्धि को मान्य ठहरा दिया किन्तु दंडादेश की मात्रा पर भिन्न मत व्यक्त किया । उक्त निर्णय **सुशील अंसल** बनाम **राज्य द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो**[1] वाले मामले के रूप में संप्रकाशित है । मतभेद को ध्यान में रखते हुए मामले को "इस सीमा तक कि उपरवर्णित अपीलों में दोषसिद्ध अपीलार्थियों को दिए गए दंडादेश की मात्रा का प्रश्न अंतर्वलित है" तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ को निर्दिष्ट कर दिया गया था ।

3. तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने तारीख 19 अगस्त, 2015 के आदेश द्वारा जो अभिनिर्धारित किया, वह निम्नलिखित है :–

> "………उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दंडादेश को भारतीय दंड संहिता की धारा 304क के अधीन दो वर्षों की अधिकतम अवधि तक बढ़ाए जाने की आवश्यकता है किन्तु एक वर्ष के दंडादेश की अतिरिक्त अवधि के बदले सारभूत् रकम का जुर्माना अधिरोपित किए जाने की आवश्यकता है । आगे हमारा विचार यह है कि यदि जुर्माने की उक्त रकम का संदाय किया जाता है, तो दंडादेश को पहले से भुगते हुए दंडादेश की अवधि तक घटा दिया जाना चाहिए, जैसाकि उल्लेख न्यायमूर्ति मिश्र द्वारा सुशील अंसल (ए-1) के मामले में किया गया है । समानता के सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए गोपाल अंसल (ए-2) का मामला भी उसी बुनियाद पर टिका हुआ है जिस पर सुशील अंसल का मामला टिका हुआ है । अतः हमारी सुविचारित राय है कि न्यायहित की पूर्ति तभी होगी यदि अपीलार्थियों को जुर्माने का संदाय करने के लिए निर्देशित किया जाए जिससे कि जुर्माने की रकम का प्रयोग या तो दिल्ली राज्यक्षेत्र में ट्रॉमा सेंटरों (अभिघात केन्द्रों) के उन्नयन के प्रयोजनार्थ किया जा सके ।
>
> 19. अतः हम निर्देशित करते हैं कि प्रत्येक अपीलार्थी पर 30 करोड़ रुपए का जुर्माना अधिरोपित किया जाना चाहिए और यदि उक्त जुर्माने का संदाय तीन माह की अवधि के भीतर कर दिया जाता है, तो अपीलार्थियों को दिए गए दंडादेश को पहले से भुगते गए दंडादेश की अवधि तक घटा दिया जाना चाहिए । हमने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि अपीलार्थी सं. 1 की आयु अधिक है, उससे कठोर कारावास भोगने के लिए कहा जाना लाभदायक नहीं होगा ।

---

[1] (2014) 6 एस. सी. सी. 173.

समानता के सिद्धांत और इस मामले के विलक्षण तथ्यों के आधार पर अपीलार्थी सं. 2 को भी दंडादेश को भोगने के लिए विवश नहीं किया जाएगा यदि वह भी जुर्माने की समान रकम का संदाय कर देता है ।"

4. पुनर्विलोकन की ईप्सा मुख्यतः इस आधार पर की गई है कि यदि एक बार न्यायालय यह मत व्यक्त कर देता है कि दंडादेश को बढ़ाए जाने की ईप्सा की गई थी, तो उसी दंडादेश को जुर्माने के संदाय के आधार पर घटाए जाने के लिए निर्देशित नहीं किया जा सकता था । इस संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 63-65 को निर्दिष्ट किया गया है, जो इस प्रकार है :–

"63. जुर्माने की रकम जहां कि वह राशि अभिव्यक्त नहीं की गई है जितना जुर्माना हो सकता है, वहां अपराधी जिस रकम के जुर्माने का दायी है, वह अमर्यादित है किन्तु अत्यधिक नहीं होगी ।

64. जुर्माना न देने पर कारावास को दंडादेश-कारावास और जुर्माना दोनों से दंडनीय अपराध के मामले में, जिसमें अपराधी कारावास सहित या रहित, जुर्माने से दंडादिष्ट हुआ है तथा कारावास या जुर्माने अथवा केवल जुर्माने से दंडनीय अपराध के हर मामले में, जिसमें अपराधी जुर्माने से दंडादिष्ट हुआ है वह न्यायालय, जो ऐसे अपराधी को दंडादिष्ट करेगा, सक्षम होगा कि दंडादेश द्वारा निदेश दे कि जुर्माना देने में व्यतिक्रम होने की दशा में, अपराधी अमुक अवधि के लिए कारावास भोगेगा जो कारावास उस अन्य कारावास के अतिरिक्त होगा जिसके लिए वह दंडादिष्ट हुआ है या जिससे वह दंडादेश के लघुकरण पर दंडनीय है ।

65. जबकि कारावास और जुर्माना दोनों आदिष्ट किए जा सकते हैं, तब जुर्माना न देने पर कारावास की अवधि यदि अपराध कारावास और जुर्माना दोनों से दंडनीय हो, तो वह अवधि जिसके लिए जुर्माना देने में व्यतिक्रम होने की दशा के लिए न्यायालय अपराधी को कारावासित करने का निदेश दे, कारावास की उस अवधि की एक चौथाई से अधिक न होगी, जो अपराध के लिए अधिकतम नियत है ।"

5. यह निवेदन किया गया कि व्यतिक्रम दंडादेश अपराध के लिए विहित कारावास की अवधि 1/4 से अधिक की अवधि का नहीं हो सकता ।

यह निवेदन भी किया गया कि अपर्याप्त दंडादेश अधिरोपित किए जाने में अनुचित सहानुभूति के कारण घोर अन्याय हो सकता है । अपराधी के मस्तिष्क में भय का तत्व होना चाहिए जिसके लिए पर्याप्त मात्रा में दंडादेश अधिरोपित किया जाना अपेक्षित था । यह निवेदन भी किया गया कि विधि निर्माताओं द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 304क के अधीन विहित दंडादेश पर इस न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्ति के प्रकाश में पुनर्विचार किया जाना चाहिए । इन निवेदनों के समर्थन में अनेक निर्णयों को निर्दिष्ट किया गया है । **गुरू बसवराज** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1], **प्रीतम चौहान** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र**[2], **पंजाब राज्य** बनाम **सौरभ बख्शी**[3], **पंजाब राज्य** बनाम **बलविंदर सिंह**[4], **कर्नाटक राज्य** बनाम **श्रणप्पा बसनागौड़ा रैगोडार**[5], **एलिस्टर एंथोनी परेरा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[6], **रतन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[7], **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **सुरेंद्र सिंह**[8] और **अंकुश शथ्वाजी गायकवाड़** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[9] जिनको विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट किया जाना आवश्यक प्रतीत नहीं होता चूंकि इस सिद्धांत के बाबत कोई विवाद नहीं है कि न्यायालयों द्वारा किसी मामले की तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए पर्याप्त दंडादेश दिया जाना चाहिए ।

6. उपरोक्त निवेदनों का विरोध करते हुए, सुशील अंसल और गोपाल अंसल के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि ऐसी कोई स्पष्ट त्रुटि नहीं है जिसके आधार पर पुनर्विलोकन अधिकारिता का अवलंब लिए जाने को न्यायानुमत ठहराया जा सके । अब जो दलीलें दी जा रही हैं उस समय भी इस न्यायालय के समक्ष दी गईं थीं जब इस न्यायालय द्वारा आदेश पारित किया गया था । पुनर्विलोकन याचिका को छद्मवेश में अपील नहीं माना जा सकता है । मात्र दो विचारों की संभाव्यता पुनर्विलोकन का आधार नहीं हो सकती । इस न्यायालय द्वारा दिए गए अनेक विनिश्चयों **मध्य प्रदेश**

---

[1] (2012) 8 एस. सी. सी. 734.
[2] (2014) 9 एस. सी. सी. 637.
[3] (2015) 5 एस. सी. सी. 182.
[4] (2012) 2 एस. सी. सी. 182.
[5] (2002) 3 एस. सी. सी. 738.
[6] (2012) 2 एस. सी. सी. 648.
[7] (1979) 4 एस. सी. सी. 719.
[8] (2015) 1 एस. सी. सी. 222.
[9] (2013) 6 एस. सी. सी. 770.

राज्य बनाम **महताब**[1], **मनीष जालान** बनाम **कर्नाटक राज्य**[2], **वी. के. वर्मा** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो**[3], **लाभ सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[4], **नन्द लाल** बनाम **उत्तराखंड राज्य**[5], **बीना फिलिपोस** बनाम **केरल राज्य**[6], **देवी राम** बनाम **हरियाणा राज्य**[7], **बेयास महतो** बनाम **बिहार राज्य**[8], **आर. वी लिंगदोह** बनाम **राज्य (दिल्ली)**[9] विशेष स्थापन वाले मामलों को भी निर्दिष्ट किया गया है जिनमें कार्यवाहियों के लंबन के कारण विलंबन आयु, स्वास्थ्य और अन्य तथ्यों पर अधिकतम विहित दंडादेश के बजाय लघु दंडादेश दिए जाने के प्रयोजनार्थ विचार किया गया है । यह आवश्यक नहीं है कि उक्त विनिश्चयों को भी निर्दिष्ट किया जाए । यह सुस्थापित है कि दंडादेश अपराध की प्रकृति, विहित दंडादेश समग्र तथ्यात्मक स्थिति, गंभीरता कम करने वाली या गंभीर परिस्थितियों, अपराध की आयु, उसकी पृष्ठभूमि, सामान्य जीवन में उसकी वापसी की संभाव्यता और समाज को उसकी आवश्यकता के प्रकाश में दिया जाना चाहिए ।

7. यह निवेदन किया गया कि अनुतोष की रचना अलग मामलों में तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए की जा सकती है, वर्तमान मामले में दिया गया दंडादेश किसी भी प्रकार से न तो अवैध है और न ही अनुचित जिस कारणवश इसको किसी प्रत्यक्ष त्रुटि से ग्रसित अभिनिर्धारित किया जा सके ।

8. मैंने परस्पर विरोधी दलीलों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया है और साथ ही उन विनिश्चयों का भी परिशीलन भी किया है जिनका अवलंब पक्षों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा लिया गया है ।

9. पहले यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि दंडादेश के प्रश्न पर मतभेद के कारण तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष निर्देश दो परस्पर

---

[1] (2015) 5 एस. सी. सी. 197.
[2] (2008) 8 एस. सी. सी. 225.
[3] (2014) 3 एस. सी. सी. 485.
[4] (2012) 11 एस. सी. सी. 690.
[5] (2010) 4 एस. सी. सी. 562.
[6] (2006) 7 एस. सी. सी. 414.
[7] (2002) 10 एस. सी. सी. 76.
[8] (2009) 9 एस. सी. सी. 509.
[9] (1999) 9 एस. सी. सी. 645.

विरोधी विचारों में से एक के चयन तक सीमित नहीं था बल्कि मतभेद को दृष्टि में रखते हुए दंडादेश की मात्रा को विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ था जैसाकि ऊपर उद्धृत निदेश (**सुशील अंसल** बनाम **राज्य द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो वाले मामले**) के आदेश से स्पष्टतः दर्शित होता है । आगे यह उल्लेख किया जाता है कि यह प्रतीत किया जाना तथ्यात्मक रूप से सही नहीं होगा कि न्यूनतम एक वर्ष का दंडादेश अधिरोपित किए जाने के लिए कोई मतभेद नहीं था । एस. सी. सी. (उपरोक्त) के पैरा 269 में न्यायमूर्ति मिश्र ने मताभिव्यक्ति की कि "अतः अपीलार्थियों/प्रत्यर्थियों सुशील अंसल और गोपाल अंसल द्वारा फाइल की गई 2010 की अपील सं. 597-598 मात्र इस बात को छोड़ते हुए कि अपीलार्थी सं. 1 सुशील अंसल पर अधिरोपित दंडादेश उनकी अधिक उम्र को ध्यान में रखते हुए पहले से किए गए दंडादेश की अवधि तक घटाया जाता है" खारिज की जाती है । पैरा 263 में यह मताभिव्यक्ति की गई कि :-

> "अतः, जबकि सुशील अंसल को 2010 की दांडिक अपील सं. 597 में दिया गया एक वर्ष में दंडादेश मान्य ठहराए जाने के प्रयोजनार्थ उचित है, उक्त अपील में उसके द्वारा पहले से भोगे गए दंडादेश को पर्याप्त माना जा सकता है चूंकि उसने दंडादेश के अधिकांश भाग को पहले ही भोग लिया है और यदि उसकी अपील खारिज भी कर दी जाती है, तो भी वह अधिक से अधिक तीन माह का अधिशेष दंडादेश ही उपशमन के साथ भोगेगा ।"

तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के आदेश में उपरोक्त मताभिव्यक्तियों को पहले ही ऊपर उद्धृत आदेश के भाग में निर्दिष्ट किया गया है ।

10. जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 65, जो व्यतिक्रम दंडादेश के बाबत कारावास की सीमा मूल कारावास की अवधि के 1/4 तक निर्धारित करती है, का संबंध है, उच्चतम व्यतिक्रम दंडादेश के विरुद्ध शिकायत, यदि कोई हो, मात्र अभियुक्त द्वारा ही की जा सकती है और न कि राज्य द्वारा । इसके अतिरिक्त, यह उच्चतम व्यतिक्रम दंडादेश प्रदान किए जाने का मामला नहीं है किन्तु घटाए गए दंडादेश के बदले में अधिक जुर्माने के संदाय का विकल्प दिए जाने का मामला है । अतः भारतीय दंड संहिता द्वारा विहित दंडादेश के साथ कोई टकराव नहीं है, जैसा कि निवेदन पुनर्विलोकन याचियों द्वारा किया गया है । इस दलील में भी कोई गुणागुण नहीं है कि यदि एक बार न्यायालय यह महसूस कर लेता है कि उच्चतम दंडादेश अधिरोपित किया जाना अपेक्षित था तो एक वर्ष से कम

का दंडादेश नहीं दिया जा सकता । आदेश के प्रवर्तनशील भाग को इसमें इसके ऊपर पहले ही उद्धृत किया जा चुका है जिससे दर्शित होता है कि न्यायालय ने न्यायहित को संतुलित करने का प्रयास किया है और यह अभिनिर्धारित करते हुए कि दंडादेश में वृद्धि किया जाना अपेक्षित था, यह मत व्यक्त किया कि दंडादेश में की गई अतिरिक्त वृद्धि के बदले में जुर्माने की सारभूत रकम का अधिरोपित किया जाना अपेक्षित था और जुर्माने की रकम का उपयोग दिल्ली सरकार द्वारा प्रबंधित अस्पतालों में ट्रामा सेंटर स्थापित किए जाने या उनको उन्नत किए जाने के लिए किया जाना था । यह भी उल्लेख किया गया कि सुशील अंसल की अधिक आयु को ध्यान में रखते हुए (जो तारीख 5 मार्च, 2014 के आदेश में की गई मताभिव्यक्ति के अनुसार उस समय 74 वर्ष का था और वर्तमान में 77 वर्ष से कम का नहीं होना चाहिए) और जिसने पहले ही 5-6 माह का दंडादेश भोग लिया है और उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए एक वर्ष के दंडादेश में से 9 माह की छूट के साथ आगे और कारावास भोगा जाना आवश्यक नहीं था, यदि उसने अधिरोपित जुर्माने का संदाय कर दिया था । यही दंडादेश गोपाल अंसल पर भी लागू था । इसी सिद्धांत का पालन कुछ अन्य अभियुक्तों के मामलों में भी किया गया था जिसको चुनौती नहीं दी गई है । यह उल्लेख किया जाना भी आवश्यक है कि उच्चतम जुर्माने को किसी अमीर व्यक्ति को अतिरिक्त लाभ के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता बल्कि उसकी संदाय करने की क्षमता के कारणवश अधिरोपित किया गया है । इसमें न तो कोई अवैधता है और न ही कोई अनौचित्य जिसके कारण इस न्यायालय द्वारा पारित उक्त आदेश का पुनर्विलोकन अपेक्षित हो ।

11. उपरोक्त कारणोंवश, इन पुनर्विलोकन याचिकाओं में कोई गुणागुण नहीं पाया जाता और खारिज की जाती हैं ।

पुनर्विलोकन याचिकाएं खारिज की गईं ।

शु.

[2017] 3 उम. नि. प. 166

स्वामी शिवशंकरगिरी चेल्ला स्वामी

बनाम

सत्य ज्ञान निकेतन

23 फरवरी, 2017

न्यायमूर्ति पिनाकी चंद्र घोष और न्यायमूर्ति अशोक भूषण

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 92 और 115 – उच्च न्यायालय द्वारा अधिकारिता का प्रयोग – अपीलार्थियों को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन आवेदन देने की इजाजत देते समय न्यायालय का यह कानूनी कर्तव्य है कि वह यह परीक्षा करे कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन आवेदन के साथ ऐसा वाद-पत्र संलग्न है या नहीं, यदि आवेदन के साथ वादपत्र संलग्न नहीं है तो यह विधि की दृष्टि से संधार्य नहीं है ।

संक्षेप में कथित मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि वर्ष 1936 में श्री स्वामी सत्यदेव नामक व्यक्ति ने कुछ भूमि खरीदी और उस पर एक भवन का निर्माण किया । इसके पश्चात् 30 नवंबर, 1940 को इस व्यक्त शर्त के साथ रजिस्ट्रीकृत विलेख द्वारा विवादित संपत्ति को प्रत्यर्थी सं. 2 को दान दिया कि प्रत्यर्थी सं. 2 को संपत्ति को बंधक रखने या विक्रय का अधिकार नहीं होगा । संपत्ति को पश्चिमी भारत में "हिंदी भाषा" के विकास और प्रचार के लिए और हिंदी के प्रचार के लिए केंद्र स्थापित करने के लिए दान दिया गया था । विलेख में पुस्तकालय स्थापित करने और "व्याख्यान माला" आदि स्थापित करने का भी उल्लेख था और संपत्ति का प्रबंधन प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा गठित उप-समिति द्वारा किया जाना था । विशेष इजाजत द्वारा यह अपील 2008 की सिविल पुनरीक्षण सं. 69 में नैनीताल स्थित उत्तराखंड उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 1 अगस्त, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई जिसके द्वारा इसमें प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल पुनरीक्षण याचिका मंजूर की गई और परिणामतः वाद संस्थित करने की अनुज्ञा अभिप्राप्त करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन अपीलार्थियों द्वारा फाइल आवेदन को नामंजूर किया गया । इस मामले में इस न्यायालय के विचारार्थ यह प्रश्न उद्भूत है कि क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के विश्लेषण और निचले न्यायालय के निष्कर्षों के आधार

पर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए वाद आरंभ करने की अनुज्ञा देने के आदेश को अपास्त करना न्यायोचित था । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील का निपटान करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने रजिस्ट्रीकृत विलेख 30 नवंबर, 1940 की सावधानीपूर्वक परीक्षा की जिसके द्वारा विवादित संपत्ति को कतिपय शर्तों पर अंतरित किया गया था । न्यायालय के समक्ष विलेख के परिशीलन के पश्चात् विचारार्थ सर्वप्रथम प्रश्न यह है कि क्या न्यास का सृजन सशर्त दान के आधार पर किया जा सकता है । सिविल प्रक्रिया संहिता की वर्तमान धारा 92, 1883 की पुरानी संहिता की धारा 539 के तर्क समान हैं और भागतः युनाइटेड किंग्डम के रोमली अधिनियम नामक अधिनियम के 52 जियो 3सी.101 से उधार लिया गया है । उक्त धारा के मात्र परिशीलन से यह प्रकट होता है कि आरंभिक अधिकारिता के प्रधान सिविल न्यायालय में न्यायालय की इजाजत अभिप्राप्त करने के पश्चात् महाधिवक्ता या न्यास में हित रखने वाले दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा लोक न्यास की बाबत वाद संस्थित किया जा सकता है । इन उपबंधों के विश्लेषण से यह प्रकट होता है कि लोक न्यास को तंग किए जाने से निवारित करने या न्यासियों के विरुद्ध लाए जाने वाले आधारहीन या निरर्थक वादों द्वारा विधिक खर्च किए जाने को निवारित करने के लिए वांछनीय समझा गया । अतः, वाद संस्थित किए जाने के पूर्व न्यायालय की इजाजत अभिप्राप्त किए जाने का उपबंध बनाया गया । प्रत्यर्थी सं. 2 के पक्ष में निष्पादित विलेख जो विवादित नहीं है, पर विचार करने के पश्चात्, न्यायालय ने यह ध्यान दिया कि संपत्ति के स्वामित्व के अंतरण करने का प्रयोजन कतिपय शर्तों और प्रयोजनों के अधीन था जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 पर हिंदी भाषा के विकास और पुस्तकालय खोलने सहित कर्तव्य अधिरोपित किए गए थे । अतः, प्रचारिणी सभा की प्रकृति प्रदान करने का प्रयोजन न्यास का बनाया जाना है । न्यायालय ने यह पाया कि विक्रय विलेख प्रतिवादियों के पक्ष में निष्पादित किया गया था । किंतु इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और प्रतिवादियों की ओर से किए गए निवेदनों को ध्यान में रखते हुए, यह प्रतीत होता है कि यह विधिपूर्ण प्रयोजन को पूरा करने के लिए दान दिया गया था । अर्थात्, "न्यास" संपत्ति के स्वामित्व से उपाबद्ध एक बाध्यता है और किसी अन्य या किसी अन्य स्वामी के फायदे के लिए स्वामी द्वारा आधारित या स्वीकृत या उसके द्वारा घोषित या स्वीकृत विश्वास से उद्भूत है । न्यायालय की राय में अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया आवेदन

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 की अपेक्षित परिधि के भीतर आ रहा था और विद्वान् जिला न्यायाधीश ने उचित ही अपीलार्थियों को वाद संस्थित करने की अनुज्ञा दी थी । न्यायालय की विचारित राय है कि उच्च न्यायालय ने विद्वान् न्यायाधीश के सुआधारित आदेश को अपास्त करने की गलती की और रजिस्ट्रीकृत विलेख तारीख 30 नवंबर, 1940 के आलोक में तथ्यों और परिस्थितियों की तत्परतापूर्वक परीक्षा न करने की घोर गलती की । न्यायालय इस तथ्य पर भी ध्यान दिया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन आवेदन के साथ वाद-पत्र संलग्न नहीं किया गया था जो वाद फाइल करने की इजाजत के लिए आवेदन फाइल करने हेतु पूर्व अपेक्षा है । वाद-पत्र के ही प्रकथनों के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि क्या धारा 92 के अधीन कोई आवेदन संधार्य है या नहीं । वर्ष 1976 में सिविल प्रक्रिया संहिता में संशोधन लाए जाने के पश्चात्, इस धारा के अधीन इजाजत देने के लिए इन बातों पर ध्यान देने के लिए महाधिवक्ता के बजाय न्यायालय पर कर्तव्य सौंपा गया । वर्ष 1976 के संशोधन के पूर्व, लोकन्यास के विरुद्ध वाद संस्थित करने के लिए सहमति देने के पूर्व महाधिवक्ता द्वारा इन सभी बातों पर ध्यान दिया जाया करता था । तद्नुसार, इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि और इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि तथा अन्य सुसंगत न्यायिक पूर्व निर्णयों के आधार पर, न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपीलार्थियों को इजाजत देते समय गलती की । न्यायालय का यह परीक्षा करने का कानूनी कर्तव्य था कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन आवेदन के साथ ऐसा वाद-पत्र संलग्न है या नहीं । न्यायालय ने यह ध्यान दिया कि उच्च न्यायालय ने भी इस तथ्य की अनदेखी की है । अभिलेख के संपूर्ण सामग्री के परिशीलन से, न्यायालय की राय में प्रस्तुत किए गए अभिकथनों का अवधारण धारा 92 के अधीन विशेष वाद में साक्ष्य द्वारा ही किया जा सकता है और प्रत्यर्थी सं. 2 विवादित स्थावर संपत्ति के स्वामित्व का उपभोग न्यासी के रूप में कार्य करते हुए कर रहा है । अतः, संपूर्ण न्याय के प्रयोजन के लिए अपीलार्थियों को, इस निर्णय की उद्घोषणा की तारीख से 30 दिनों की अवधि के भीतर विधि के अनुसार समुचित आवेदन प्रस्तुत करने की छूट दी जाती है । इस न्यायालय में कोई विवाद ग्रहण करने की अधिकारिता रखने वाले सिविल न्यायालयों से पूर्वोक्त चर्चा के अनुसार इस तरह के आवेदनों की सावधानीपूर्वक परीक्षा करने की प्रत्याशा की जाती है । इस अपील का निपटान पूर्वोक्त निबंधनों के अनुसार किया जाता है । (पैरा 7, 12, 13, 18, 19, 20, 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2004] (2004) 9 एस. सी. सी. 720 :
बी. एस. आदित्यन और अन्य बनाम **बी. रामचंद्रन आदित्यन और अन्य** ; 17

[1992] (1992) 2 एस. सी. सी. 429 :
सुकुमारन बनाम **अकामला श्रीधर्म संस्था** ; 9

[1991] [1991] 2 उम. नि. प. 516 = (1991) 1 एस. सी. सी. 48 :
आर. एम. नारायण चेटियार और अन्य बनाम **एन. लक्ष्मणन चेटियार और अन्य** ; 16

[1980] (1980) 2 एस. सी. सी. 31 :
आयकर अपर आयुक्त, गुजरात, अहमदाबाद बनाम **सूरत कला शिल्क कपड़ा विनिर्माता संगम, सूरत** ; 14

[1979] (1979) 4 एस. सी. सी. 602 :
मैसर्स शांति विजय एंड कंपनी और अन्य बनाम **प्रिंसेस फातिमा फौजिया और अन्य** ; 14

[1974] (1974) 2 एस. सी. सी. 695 :
स्वामी परमात्मानंद सरस्वती और एक अन्य बनाम **रामजी त्रिपाठी और एक अन्य** ; 15

[1972] (1972) 1 एस. सी. सी. 115 :
हरेन्द्रनाथ भट्टाचार्या और अन्य बनाम **कालीराम दास (मृत) उसके वारिसों और विधिक प्रतिनिधियों द्वारा तथा अन्य** ; 15

[1969] [1969] 3 एस. सी. आर. 83 = 1940 प्रिवी कौंसिल (10) :
सुगरा बीबी बनाम **हाजी कुम्मू** । 9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की सिविल अपील सं. 3166.

2008 की सिविल पुनरीक्षण सं. 69 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय,

नैनीताल द्वारा पारित तारीख 1 अगस्त, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री दिनेश द्विवेदी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) प्रितीका द्विवेदी, कृष्णम मिश्र, यशार्थ कांत, निशांत सिंह, मनीष शंकर एस. और गर्वेश काबा

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री प्रमोद स्वरूप, ज्येष्ठ अधिवक्ता, जतीन्दर कुमार भाटिया और कृष्णा प्रकाश दुबे

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पिनाकी चंद्र घोष ने दिया ।

न्या. घोष – इजाजत दी गई ।

2. विशेष इजाजत द्वारा यह अपील 2008 की सिविल पुनरीक्षण सं. 69 में नैनीताल स्थित उत्तराखंड उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 1 अगस्त, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई जिसके द्वारा इसमें प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल पुनरीक्षण याचिका मंजूर की गई और परिणामतः वाद संस्थित करने की अनुज्ञा अभिप्राप्त करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन अपीलार्थियों द्वारा फाइल आवेदन को नामंजूर किया गया ।

3. इस मामले में इस न्यायालय के विचारार्थ यह प्रश्न उद्भूत है कि क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के विश्लेषण और निचले न्यायालय के निष्कर्षों के आधार पर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए वाद आरंभ करने की अनुज्ञा देने के आदेश को अपास्त करना न्यायोचित था ।

4. संक्षेप में कथित मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि वर्ष 1936 में श्री स्वामी सत्यदेव नामक व्यक्ति ने कुछ भूमि खरीदी और उस पर एक भवन का निर्माण किया । इसके पश्चात् 30 नवंबर, 1940 को इस व्यक्त शर्त के साथ रजिस्ट्रीकृत विलेख द्वारा विवादित संपत्ति को प्रत्यर्थी सं. 2 को दान दिया कि प्रत्यर्थी सं. 2 को संपत्ति को बंधक रखने या विक्रय का अधिकार नहीं होगा । संपत्ति को पश्चिमी भारत में "हिंदी भाषा" के विकास और प्रचार के लिए और हिंदी के प्रचार के लिए केंद्र स्थापित करने के लिए

दान दिया गया था । विलेख में पुस्तकालय स्थापित करने और "व्याख्यान माला" आदि स्थापित करने का भी उल्लेख था और संपत्ति का प्रबंधन प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा गठित उप-समिति द्वारा किया जाना था ।

5. यह प्रतीत होता है कि संपत्ति के अंतरण का उद्देश्य विनिर्दिष्ट प्रयोजन अर्थात् हिंदी भाषा का प्रचार और विकास का लक्ष्य प्राप्त करना था। जब यह महसूस किया गया कि प्रत्यर्थी सं. 2 जिसे उस प्रयोजन जिसके लिए संपत्ति समर्पित की गई थी, को प्राप्त करने में कोई रुचि नहीं ले रहा है तो अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थी के विरुद्ध स्वीकृत कार्यवाहियां आरंभ कीं । श्री मुकुंद राम और श्री कृत्य राम व्यक्तियों ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन आवेदन सं. 23/2004 फाइल की और इसमें प्रत्यर्थियों ने भी विवादित संपत्ति के संबंध में इसमें प्रत्यर्थियों के विरुद्ध वाद फाइल करने की अनुज्ञा की ईप्सा करते हुए, उसी उपबंध के अधीन आवेदन सं. 7/2006 फाइल की । चूंकि एक ही अनुतोष की ईप्सा दोनों याचिकाओं में की गई थी इसलिए दोनों आवेदनों को समेकित किया गया और प्रकीर्ण मामला सं. 23/2004 को प्रमुख वाद बनाया गया । विद्वान् और जिला सेशन न्यायाधीश ने तारीख 12 नवंबर, 2008 के अपने आदेश द्वारा यह मत व्यक्त करते हुए कि "न्यास" शब्द का उदारतापूर्वक अर्थान्वयन किया जाए और धारा 92 के अधीन न्यायालय द्वारा अधिकारिता की यथासंभव अनुकूल उपधारणा की जाए, दोनों आवेदनों को अनुज्ञात किया और अपीलार्थियों को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन वाद फाइल करने की अनुज्ञा दी । विद्वान् जिला और सेशन न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि संपत्ति के समर्पण का उद्देश्य न्यास के रूप में माने जाने के लिए इसकी प्रकृति का विनिश्चय करेगा । आदेश के सुसंगत भाग को यहां दोहराया जा रहा है :–

> "अतः विलेख के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि संपत्ति के दान का प्रयोजन पूर्त था और आम जनता के फायदे के लिए था । अतः, प्रथमदृष्ट्या यह प्रतीत होता है कि विपक्षी पक्षकार सं. 2 को संपत्ति का दान देकर स्वामी सत्य देव द्वारा आन्वयिक न्यास का सृजन किया गया जिसमें दान के सभी उद्देश्य और संपत्ति के प्रबंधन का उल्लेख किया गया ।"

आदेश के बाद वाले भाग में यह मत व्यक्त किया गया कि –

> "अभिलेख के संपूर्ण साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात्, मेरा यह मत है कि प्रथमदृष्ट्या यह प्रतीत होता है कि वादांतर्गत संपत्ति

का दान विशिष्ट उद्देश्य व प्रयोजन अर्थात् हिंदी के प्रचार और विकास के लिए विपक्षी पक्षकार सं. 2 को दिया गया था । संपत्ति का प्रबंधन स्वामी सत्य देव के निदेशों के अनुसार विपक्षी पक्षकार सं. 2 द्वारा किया जाना है – विलेख के पाठ से प्रथमदृष्ट्या यह साबित होता है कि श्री सत्य देव ने विपक्षी पक्षकार सं. 2 को संपत्ति का दान देकर आन्वयिक न्यास का सृजन किया जो विपक्षी पक्षकार सं. 2 को इसका अनन्य स्वामी नहीं बनाता क्योंकि यह शर्त के साथ दान दिया गया था अर्थात् विपक्षी पक्षकार सं. 2 को संपत्ति का विक्रय करने या बंधक रखने का कोई अधिकार नहीं है ।

जहां तक इस तथ्य का संबंध है कि विपक्षी पक्षकार सं. 2 भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1960 के अधीन एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी है, वाद की संधार्यता को प्रभावित नहीं करता जैसाकि केरल उच्च न्यायालय द्वारा सुकुमारन **बनाम** अकामला श्रीधर्म संस्था, (1992) 2 एस. सी. सी. 429 वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है ।"

6. विद्वान् जिला और सेशन न्यायाधीश के आदेश से व्यथित होकर, प्रत्यर्थियों ने विद्वान् जिला और सेशन न्यायाधीश, हरिद्वार द्वारा पारित 12 नवंबर, 2008 के आदेश को अभिखंडित करने के लिए 2008 के सिविल पुनरीक्षण सं. 69, नैनीताल स्थित उत्तराखंड उच्च न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण याचिका खारिज की गई । उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 1 अगस्त, 2011 के अपने निर्णय द्वारा उक्त पुनरीक्षण याचिका को मंजूर किया गया जिसके द्वारा वाद संस्थित करने के सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन अनुज्ञा देने के आदेश को अपास्त और अभिखंडित किया गया था । अतः विशेष इजाजत द्वारा यह अपील की गई ।

7. हमने रजिस्ट्रीकृत विलेख 30 नवंबर, 1940 की सावधानीपूर्वक परीक्षा की जिसके द्वारा विवादित संपत्ति को कतिपय शर्तों पर अंतरित किया गया था । हमारे समक्ष विलेख के परिशीलन के पश्चात् विचारार्थ सर्वप्रथम प्रश्न यह है कि क्या न्यास का सृजन सशर्त दान के आधार पर किया जा सकता है ।

8. हमने विस्तार से पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना । क्योंकि अपीलार्थी उस प्रयोजन जिसके लिए संपत्ति का अंतरण किया गया था को प्राप्त करने में रुचि रखता था अतः वह प्रत्यर्थियों के विरुद्ध वाद फाइल

करने की अनुज्ञा चाहने के लिए विद्वान् जिला न्यायाधीश के न्यायालय में आवेदन किया । यह भी विवादित नहीं है कि संपत्ति का अंतरण प्रत्यर्थी सं. 2 को तारीख 30 नवंबर, 1940 के रजिस्ट्रीकृत विलेख के द्वारा किया गया था ।

9. याचियों के काउंसेल द्वारा यह निवेदन किया गया कि मात्र यह तथ्य कि प्रत्यर्थी सं. 2 एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी है, **सुकुमारन** बनाम **अकामला श्रीधर्म संस्था**[1] और **सुगरा बीबी** बनाम **हाजी कुम्मू**[2] वाले मामलों में दिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए वाद की संधार्यता को प्रभावित नहीं करता ।

10. अंत में, यह न्यास के प्रशासन के भंग का मामला था और इसे साक्ष्य द्वारा विनिश्चित किया जा सकता है और यह कि न्यायालय इजाजत देते समय पक्षकारों के अधिकार का विनिश्चय नहीं करता या मामले के गुणागुण का न्यायनिर्णयन नहीं करता । इस समय केवल यह विचार करना सुसंगत है कि क्या वाद के फाइल करने हेतु इजाजत देने के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है और इस निवेदन के आलोक में उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थियों के प्रथमदृष्ट्या मामले को अस्वीकार करना न्यायोचित नहीं था ।

11. समानांतर स्तंभ में, प्रत्यर्थियों के काउंसेल द्वारा यह तर्क दिया गया कि सोसाइटी काशी नागरी सभा एक रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी है और सत्य ज्ञान निकेतन आश्रम, ज्वालापुर की संपत्ति का एक मात्र स्वामी है और इसे न्यास में ही माना जा सकता तथा उच्च न्यायालय ने उचित ही प्रत्यर्थियों के पुनरीक्षण को मंजूर किया । तथापि, हमें यह प्रतीत होता है कि यह मामला वाद आरंभ करने के लिए हितबद्ध व्यक्तियों को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन इजाजत देने के मुद्दे के बारे में है ।

12. सिविल प्रक्रिया संहिता की वर्तमान धारा 92, 1883 की पुरानी संहिता की धारा 539 के तर्क समान है और भागतः युनाइटेड किंग्डम के रोमली अधिनियम नामक अधिनियम के 52 जियो 3सी.101 से उधार लिया गया है । उक्त धारा के मात्र परिशीलन से यह प्रकट होता है कि आरंभिक अधिकारिता के प्रधान सिविल न्यायालय में न्यायालय की इजाजत अभिप्राप्त करने के पश्चात् महाधिवक्ता या न्यास में हित रखने वाले दो या

---

[1] (1992) 2 एस. सी. सी. 429.

[2] [1969] 3 एस. सी. आर. 83 = 1940 प्रिवी कौंसिल (10).

अधिक व्यक्तियों द्वारा लोक न्यास की बाबत वाद संस्थित किया जा सकता है । इन उपबंधों के विश्लेषण से यह प्रकट होता है कि लोक न्यास को तंग किए जाने से निवारित करने या न्यासियों के विरुद्ध लाए जाने वाले आधारहीन या निरर्थक वादों द्वारा विधिक खर्च किए जाने को निवारित करने के लिए वांछनीय समझा गया । अतः, वाद संस्थित किए जाने के पूर्व न्यायालय की इजाजत अभिप्राप्त किए जाने का उपबंध बनाया गया ।

13. प्रत्यर्थी सं. 2 (प्रचारिणी सभा) के पक्ष में निष्पादित विलेख जो विवादित नहीं है, पर विचार करने के पश्चात्, हमने यह ध्यान दिया कि संपत्ति के स्वामित्व के अंतरण करने का प्रयोजन कतिपय शर्तों और प्रयोजनों के अधीन था जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 पर हिंदी भाषा के विकास और पुस्तकालय खोलने सहित कर्तव्य अधिरोपित किए गए थे । अतः, प्रचारिणी सभा की प्रकृति प्रदान करने का प्रयोजन न्यास का बनाया जाना है ।

14. वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में, दिए गए आवेदन के परिशीलन से आसानी से यह अनुमान निकाला जा सकता है कि अभिवाक् सभा को न्यास के रूप में कार्य करने का अभिकथन करते हुए वाद संस्थित करने के लिए ही अनुज्ञा चाहने की ईप्सा करता था । इस न्यायालय ने **आयकर अपर आयुक्त, गुजरात, अहमदाबाद** बनाम **सूरत कला शिल्क कपड़ा विनिर्माता संगम, सूरत**[1] वाले मामले के पैरा 17 में यह मत व्यक्त किया है :–

> " ..... प्रत्येक न्यास या संस्था का प्रयोजन होना चाहिए जिसके लिए इसकी स्थापना की गई है और प्रत्येक प्रयोजन को क्रियाकलाप के पालन में अंतर्वलित करते हुए पूरा किया जाना चाहिए ।"

आगे, इस न्यायालय ने **मैसर्स शांति विजय एंड कंपनी और अन्य** बनाम **प्रिंसेस फातिमा फौजिया और अन्य**[2] वाले मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "न्यासों के निष्पादन को शासित करने वाली विधि सुस्थिर है । प्राइवेट न्यास के मामले में जहां एक से अधिक न्यासी हैं, सभी को न्यास के निष्पादन में सम्मिलित होना चाहिए । न्यास संपत्ति को प्रभावित करने वाले संव्यवहार में सभी की सहमति सामान्यतः आवश्यक है और बहुमत न्यास संपदा को आबद्ध नहीं कर सकता ।

---

[1] (1980) 2 एस. सी. सी. 31.

[2] (1979) 4 एस. सी. सी. 602.

न्यास संपदा को आबद्ध करने के लिए कार्य सभी का कार्य होना चाहिए । वे विधि की दृष्टि में एक निकाय गठित करते हैं और सभी को एक साथ कार्य करना चाहिए । वस्तुतः यह अवस्थापक द्वारा दिए गए किसी व्यक्त निदेश के अधीन है ।"

15. इस न्यायालय ने **हरेन्द्रनाथ भट्टाचार्या और अन्य** बनाम **कालीराम दास (मृत) उसके वारिसों और विधिक प्रतिनिधियों द्वारा तथा अन्य**[1] वाले मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 की व्याप्ति और उपयोजिता पर विचार करते हुए पैरा 13 में इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

"13. इस न्यायालय के विनिश्चयों द्वारा यह सुस्थिर है कि धारा 92 के अधीन वाद एक विशेष प्रकृति का है जो धार्मिक या पूर्त प्रकृति के लोक न्यास के अस्तित्व की पूर्व कल्पना करता है । ऐसे वाद की कार्यवाही इस अभिकथन पर ही की जा सकती है कि ऐसे न्यास का भंग हुआ है या यह कि न्यायालय से निदेश न्यास के प्रशासक के लिए आवश्यक हैं । तथापि, वाद में एक या अन्य अनुतोषों की प्रार्थना की जानी चाहिए जो विनिर्दिष्टतः धारा में उल्लिखित हैं । केवल तभी वाद सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के उपबंधों के अनुरूप फाइल किया जाना चाहिए । यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वादियों द्वारा दावा किए गए अनुतोषों में से कोई एक भी अनुतोष धारा के भीतर नहीं आता । घोषणाएं जिनकी ईप्सा की गई थी, संभवतः सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 की उपयोज्यता को लागू नहीं हो सकती । अतः उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करना उचित था कि उपधारा का अनुपालन वाद की संधार्यता को प्रभावित नहीं किया ।"

आगे, **स्वामी परमात्मानंद सरस्वती और एक अन्य** बनाम **रामजी त्रिपाठी और एक अन्य**[2] वाले मामले में स्वीय या व्यक्तिगत अधिकारों को प्रमाणित करने के वादों पर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के लागू होने को अपवर्जित करते हुए इस न्यायालय ने इस प्रकार इंगित किया :–

"10. धारा 92 के अधीन वाद एक विशेष प्रकृति का वाद है जो धार्मिक या पूर्त प्रकृति के लोक न्यास के अस्तित्व की पूर्व कल्पना करता है । ऐसे वाद पर कार्यवाही इस अभिकथन पर ही की जा

---

[1] (1972) 1 एस. सी. सी. 115.

[2] (1974) 2 एस. सी. सी. 695.

सकती है कि ऐसे न्यास का भंग हुआ है या यह कि न्यायालय का निदेश न्यास के प्रशासन के लिए आवश्यक है और वादी को ऐसे एक या अधिक अनुतोषों की प्रार्थना करनी चाहिए जो धारा में वर्णित हैं । अतः यह स्पष्ट है कि यदि न्यास भंग के अभिकथन को प्रमाणित नहीं किया जाता है या यह कि वादी ने न्यास के उचित प्रशासन के लिए न्यायालय द्वारा किसी निदेश के लिए मामला साबित नहीं किया तो धारा के अधीन वाद का आधार ही विफल हो जाएगा और यदि धारा 92 के अधीन वाद के सभी अन्य तत्व साबित भी होते हैं तो यदि यह स्पष्ट है कि वादी आम जनता के अधिकार को प्रमाणित करने के लिए वाद फाइल नहीं कर रहा है किंतु अपने व्यक्तिगत या स्वीय अधिकारों या किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यक्तिगत या स्वीय अधिकारों जिसमें वह हितबद्ध हैं की घोषणा चाहता है तो वाद धारा 92 की व्याप्ति के बाहर होगा । एक ऐसा वाद जिसका आरंभिक उद्देश्य या प्रयोजन किसी व्यक्तिगत अधिकार के उल्लंघन का उपचार करना या प्राइवेट अधिकार का समर्थन करना है, धारा के अधीन नहीं आता । यह सही नहीं है कि धारा में विनिर्दिष्ट अनुतोषों का दावा करने वाले प्रत्येक वाद को धारा के अधीन लाया जा सके किंतु केवल ऐसे वाद जो किसी अनुतोषों का दावा करने के अलावा व्यक्तिगत व्यक्तियों द्वारा लोक अधिकार के समर्थन के लिए जनता के प्रतिनिधि के रूप में लाए जाते हैं और यह विनिश्चित करने के लिए कि क्या वाद धारा 92 के अधीन आता है, न्यायालय को अनुतोषों से परे जाना चाहिए और ऐसी हैसियत जिसमें वादी वाद फाइल कर रहे हैं और ऐसा प्रयोजन जिसके लिए वाद लाया गया, पर ध्यान दिया जाना चाहिए । यही कारण है कि धार्मिक प्रकृति के लोक न्यास के न्यासियों को अपने व्यक्तिगत या स्वीय अधिकारों का समर्थन करने के लिए धारा के अधीन वाद लाने से प्रतिवारित किया गया है । यह बिल्कुल महत्वहीन है कि क्या न्यासी अपने स्वीय अधिकारों की घोषणा का अनुरोध करते हैं या एक या अधिक प्रतिवादियों के स्वीय अधिकारों का खंडन करते हैं । जब किसी न्यासी के पद के अधिकार का प्राख्यान या इनकार किया जाता है और उस आधार पर अनुतोष की मांग की जाती है तो वाद धारा 92 की परिधि के बाहर आता है ।"

16. तथापि, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन इजाजत देने के पूर्व किसी मामले में प्रस्तावित प्रतिवादियों को नोटिस देने पर चर्चा करते हुए, इस न्यायालय ने **आर. एम. नारायण चेटियार और अन्य** बनाम

एन. लक्ष्मणन चेटियार और अन्य[1] वाले मामले के पैरा 17 में यह मत व्यक्त किया है :–

"संहिता की धारा 92 के पढ़ने मात्र से यह संकेत मिलता है कि न्यायालय की इजाजत उक्त धारा में वर्णित अनुतोषों के लिए लोक न्यास के विरुद्ध वाद संस्थित करने के लिए पूर्व-शर्त या पुरोभाव्य शर्त है । जब तक कि समस्त हिताधिकारी वाद संस्थित करने में सम्मिलित नहीं होते हैं, यदि ऐसा वाद बिना इजाजत के संस्थित किया जाता है तो वह बिल्कुल भी चलने योग्य नहीं होगा । धारा 92 में अंतर्निहित उद्देश्यों और उसकी भाषा को ध्यान में रखते हुए हमें यह प्रतीत होता है कि सावधानी के तौर पर न्यायालय को सामान्यतया, जब तक कि यह अव्यावहारिक या असुविधाजनक न हो, वाद संस्थित करने के लिए धारा 92 के अधीन इजाजत देने से पूर्व प्रस्तावित प्रतिवादियों को सूचना देनी चाहिए । प्रतिवादी न्यायालय की जानकारी में यह ला सकते हैं, जैसे, उदाहरण के लिए यह कि प्रतिवादी न्यायालय की जानकारी में यह ला सकते हैं, जैसे, उदाहरण के लिए यह कि वादपत्र में किए गए अभिकथन बेतुके या बेढंगे हैं । इसके अतिरिक्त वे किसी मामले में यह संकेत कर सकते हैं कि जो व्यक्ति धारा 92 के अधीन इजाजत के लिए आवेदन कर रहे हैं वे ऐसा न्यास को तंग करने की दृष्टि से कर रहे हैं अथवा उनका पूर्ववृत्त ऐसा है कि ऐसे व्यक्तियों को इजाजत देना अवांछनीय होगा । फिर भी प्रतिवादियों को ऐसी सूचना दिए जाने की वांछनीयता कानूनी अपेक्षा नहीं मानी जा सकती जिसका धारा 92 के अधीन इजाजत देने से पहले अनुपालन किया जाए, क्योंकि इससे अनावश्यक विलंब होगा और किसी मामले में लोक न्यास को पर्याप्त हानि भी हो सकती है । संहिता की धारा 92 के उपबंधों के ऐसे अर्थान्वयन से लोक न्यास के हिताधिकारियों के लिए न्यायालय से तत्काल अंतरिम आदेश अभिप्राप्त करना कठिन होगा भले ही परिस्थितियों के अंतर्गत ऐसा अनुतोष दिया जाना अपेक्षित हो । हमारी राय में, इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए, यद्यपि सावधानी के तौर पर न्यायालय को सामान्यतया वाद संस्थित करने के लिए उक्त धारा के अधीन इजाजत देने से पूर्व प्रतिवादियों को सूचना देनी चाहिए फिर भी न्यायालय ऐसा करने के लिए आबद्ध नहीं है यदि वाद ऐसी इजाजत के आधार पर संस्थित किया जाता है

---

[1] [1991] 2 उम. नि. प. 516 = (1991) 1 एस. सी. सी. 48.

जो प्रतिवादियों को सूचना दिए बिना दी गई थी तो उससे वाद विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण या न चलने योग्य नहीं हो जाता है । इजाजत देना प्रस्तावित प्रतिवादियों के किसी अधिकार को विफल करने या गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव डालने के रूप में नहीं माना जा सकता क्योंकि वे हमेशा इजाजत के प्रतिसंहरण के लिए आवेदन फाइल कर सकते हैं जिसमें गुणागुण पर और विधि के अनुसार विचार किया जा सकता है ।"

17. **बी. एस. आदित्यन और अन्य** बनाम **बी. रामचंद्रन आदित्यन और अन्य**[1] वाले मामले का उल्लेख करना भी प्रासंगिक है जिसमें इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

"5. सामान्य अनुक्रम में यदि कोई अपील रिट याचिका सं. 92 के अधीन आने वाले वाद को फाइल करने के लिए किसी पक्षकार को दी गई अनुज्ञा वाले आदेश के विरुद्ध फाइल की जाती है तो हम प्रसामान्यतः उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए आदेश में हस्तक्षेप नहीं करते न ही संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन इस प्रकृति के कार्यवाही को ग्रहण करने पर विचार करते हैं क्योंकि इसके अधीन किया गया आदेश पक्षकारों के अधिकारों को अवधारित नहीं करेगा किंतु किसी पक्षकार को केवल कार्यवाही आरंभ करने के लिए समर्थ बनाएगा ।"

बाद में पैरा 13 में यह अभिनिर्धारित किया गया :–

"7. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह आग्रह किया कि ऐसा आदेश जो वाद फाइल करने की अनुज्ञा देने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन पारित किया गया था, क्या प्रशासनिक प्रकृति का या अन्यथा है ; यह कि यह तभी पैदा होता है जब प्रतिवादियों के आक्षेपों पर विचार किया जाता है ; यह कि "आदेश, निर्णय, डिक्री और अधिनिर्णय" पद के अर्थ की व्याप्ति के बारे में है । उन्होंने इस आशय के पिछया **बनाम** बेंकट कृष्णन मचारलू ए. आई. आर. 1930 मद्रास 129 वाले मामले के विनिश्चय की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 का उद्देश्य आम जनता और न्यासियों के अधीन संस्थाओं के अधिकारों का सुरक्षोपाय करना है । इस बाबत उन्होंने विनिर्दिष्टतः

[1] (2004) 9 एस. सी. सी. 720.

हमारा ध्यान नेशनल स्विंग थ्रेड कंपनी लिमिटेड **बनाम** जेम्स चैडविक एंड ब्रदर्स लिमिटेड [1953] एस. सी. आर. 1028 की ओर हमारा ध्यान विनिर्दिष्ट किया । उन्होंने यह तर्क देने के लिए आर. एम. ए. आर. ए. अडाइकप्पा चेटियार **बनाम** आर. चंद्रशेखर थेवर ए. आई. आर. 1948 पी. सी. 12 वाले विनिश्चय का भी उल्लेख किया जहां विधिक अधिकार विवादित है और देश के सामान्य न्यायालयों के समक्ष ऐसे विवाद विचाराधीन हैं वहां न्यायालय उनको लागू प्रक्रिया के साधारण नियमों द्वारा शासित हैं और अपील की जाती है यदि इस बात के होते हुए ऐसे निर्णयों द्वारा प्राधिकृत हैं कि दावाकृत विधिक अधिकार विशेष कानून के अधीन उद्भूत होता है जो निबंधनानुसार अपना एकाधिकार प्रदत्त नहीं करता । आर. एम. नारायण चेटियार **बनाम** एन. लक्ष्मणन चेटियार (1991) 1 एस. सी. सी. 48 वाले मामले में, इस न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 की व्याप्ति की विस्तार से परीक्षा की और वाद फाइल करने की अनुज्ञा देने में उसके पीछे छिपे उद्देश्य को स्पष्ट किया । इस मामले में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय को सतर्कता के नियम के रूप में इजाजत देने के पूर्व प्रतिवादियों को प्रसामान्यतः नोटिस देना चाहिए किंतु न्यायालय सभी परिस्थितियों में ऐसा करने के लिए आबद्ध नहीं है और नोटिस का जारी न किया जाना वाद को दोषपूर्ण या गैर-संधार्य नहीं ठहराएगा और प्रतिवादी किसी भी समय इजाजत के प्रतिसंहरण के लिए अर्जन कर सकते हैं और इजाजत देने की इनकारी के विरुद्ध अपील के लिए धारा 104(1)(चचक) के अधीन उपबंध भिन्न निष्कर्ष की ओर नहीं ले जाता । इस विनिश्चय के आलोक में, हम विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्धृत अन्य विनिश्चयों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझते । तथापि, इस विषय पर विधि आयोग द्वारा अप्रैल, 1992 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में इस पहलू पर विचार किया गया था । विभिन्न न्यायालयों के भिन्न-भिन्न विनिश्चयों और आर. एम. नारायण चेटियार के विनिश्चय पर ध्यान देने के पश्चात् विधि आयोग ने सिफारिश की कि न्यायालय से नोटिस जारी करने की प्रत्याशा करने और तब संबद्ध प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत आक्षेपों के आलोक में इजाजत देने के पूर्व विस्तार से अनेक बिंदुओं पर विचारण करने का यह अर्थ होगा कि विचारण के पूर्व एक विचारण होगा और यह वांछनीय नहीं होगा । अतः, विधि आयोग की यह सिफारिश थी कि इस आशय का सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के नीचे एक

स्पष्टीकरण अंतःस्थापित किया जाए कि न्यायालय किसी अन्य व्यक्ति को नोटिस जारी किए बिना इस धारा के अधीन इजाजत दे सकेगा किंतु वस्तुतः इसका यह अर्थ नहीं होता कि न्यायालय सहज ही इजाजत देगा । विशिष्ट बल दिया गया है और शंकर लाल अग्रवाल **बनाम** शंकर लाल पोद्दार [1964] 1 एस. सी. आर. 717 वाले मामले के विनिश्चय का प्रशासनिक और न्यायिक आदेशों के बीच विभेद पर बल देने के लिए गंभीर अवलंब लिया गया । यह आग्रह किया गया कि ऐसा आदेश जिसके विरुद्ध अपील की गई, लेटर्स पेटेंट के खंड 15 के अर्थान्तर्गत निर्णय नहीं था और इस प्रकार खंड न्यायपीठ के समक्ष कोई अपील नहीं की जा सकती । प्रशासनिक और न्यायिक आदेश के बीच अंतर करने के लिए भारतीय चार्टर्ड अकाउंटेंट संस्था **बनाम** एल. के. रत्न (1986) 4 एस. सी. सी. 537 वाले मामले के इस न्यायालय के विनिश्चय का प्रतिनिर्देश किया गया । चरण सिंह **बनाम** दर्शन सिंह, (1975) 1 एस. सी. सी. 298 वाले मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 की व्याप्ति की परीक्षा की गई जहां उस विशिष्ट मामले में उद्भूत तथ्यों पर संपूर्ण मामला परिवर्तित हो गया ।"

और अंततः, इस न्यायालय द्वारा पैरा 9 में यह राय दी गई :–

"....... यद्यपि सतर्कता नियम के अनुसार, न्यायालय को वाद संस्थित करने के लिए उक्त धारा के अधीन इजाजत देने के पहले प्रतिवादियों को प्रसामान्यतः नोटिस देना चाहिए । किंतु न्यायालय ऐसा करने के लिए आबद्ध नहीं है । यदि प्रतिवादियों को नोटिस दिए बिना ऐसी इजाजत दिए जाने के आधार पर वाद संस्थित किया जाता है तो वाद तद्द्वारा विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण या असंधार्य नहीं होगा । इजाजत दिए जाने को प्रस्तावित प्रतिवादियों के किसी अधिकार को विफल करने या गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला नहीं माना जा सकता । क्योंकि उन्हें इजाजत के प्रतिसंहरण के लिए आवेदन फाइल करने की हमेशा स्वतंत्रता है जिस पर गुणागुण के आधार पर विचार किया जा सकता है और विधि के अनुसार या वाद के अनुक्रम के दौरान भी जो स्थापित किया जाए कि वाद सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 की व्याप्ति के भीतर नहीं आता । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए हम यह नहीं समझते कि हमारे लिए उच्च न्यायालय द्वारा किए गए आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण है ।"

18. हमने यह पाया कि विक्रय-विलेख प्रतिवादियों के पक्ष में निष्पादित किया गया था । किंतु इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और प्रतिवादियों की ओर से किए गए निवेदनों को ध्यान में रखते हुए, यह प्रतीत होता है कि यह विधिपूर्ण प्रयोजन को पूरा करने के लिए दान दिया गया था । अर्थात्, "न्यास" संपत्ति के स्वामित्व से उपाबद्ध एक बाध्यता है और किसी अन्य या किसी अन्य स्वामी के फायदे के लिए स्वामी द्वारा आधारित या स्वीकृत या उसके द्वारा घोषित या स्वीकृत विश्वास से उद्भूत है (भारतीय न्यास अधिनियम, 1882, धारा 3) । तद्नुसार, हमारी राय में अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 की अपेक्षित परिधि के भीतर आ रहा था और विद्वान् जिला न्यायाधीश ने उचित ही अपीलार्थियों को वाद संस्थित करने की अनुज्ञा दी थी । हमारी विचारित राय है कि उच्च न्यायालय ने विद्वान् न्यायाधीश के सुआधारित आदेश को अपास्त करने की गलती की और रजिस्ट्रीकृत विलेख तारीख 30 नवंबर, 1940 के आलोक में तथ्यों और परिस्थितियों की तत्परतापूर्वक परीक्षा न करने की घोर गलती की ।

19. उपरोक्त चर्चा के अलावा, हमने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन आवेदन के साथ वादपत्र संलग्न नहीं किया गया था जो वाद फाइल करने की इजाजत के लिए आवेदन फाइल करने हेतु पूर्व अपेक्षा है । वादपत्र के ही प्रकथनों के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि क्या धारा 92 के अधीन कोई आवेदन संधार्य है या नहीं । इस न्यायालय ने **आर. एम. नारायण चेटियार** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 10 में यह मत व्यक्त किया :–

> "10. इस न्यायालय के उपरोक्त किसी भी विनिश्चय में इस प्रश्न पर विचार नहीं किया गया था कि क्या धारा 92 के अधीन वाद संस्थित करने की इजाजत देने से पहले महाधिवक्ता अथवा वाद में न्यायालय से यह अपेक्षित है कि वह प्रस्तावित प्रतिवादियों को यह कारण बताने का अवसर प्रदान करके इजाजत क्यों नहीं दी जानी चाहिए । किंतु अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने इस बात पर जोर दिया कि इन विनिश्चयों से यह पता चलता है कि जिस समय महाधिवक्ता अथवा न्यायालय से इस बात पर विचार करना अपेक्षित होता है कि क्या धारा 92 के अधीन यथा-अनुध्यात वाद संस्थित करने की इजाजत दी जानी है, वादपत्र में किए गए प्रकथनों पर ही विचार करना होगा और इस प्रकार प्रतिवादी की उपस्थिति आवश्यक नहीं है ।

अब हम उच्च न्यायालय के विनिश्चयों पर विचार करना चाहेंगे जिनका अवलंब अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने लिया है ।"

20. वर्ष 1976 में सिविल प्रक्रिया संहिता में संशोधन लाए जाने के पश्चात्, इस धारा के अधीन इजाजत देने के लिए इन बातों पर ध्यान देने के लिए महाधिवक्ता के बजाय न्यायालय पर कर्तव्य सौंपा गया । वर्ष 1976 के संशोधन के पूर्व, लोकन्यास के विरुद्ध वाद संस्थित करने के लिए सहमति देने के पूर्व महाधिवक्ता द्वारा इन सभी बातों पर ध्यान दिया जाया करता था ।

21. तद्नुसार, इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि और इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि तथा अन्य सुसंगत न्यायिक पूर्व निर्णयों के आधार पर, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपीलार्थियों को इजाजत देते समय गलती की । न्यायालय का यह परीक्षा करने का कानूनी कर्तव्य था कि क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन आवेदन के साथ ऐसा वादपत्र संलग्न है या नहीं । हमने यह ध्यान दिया कि उच्च न्यायालय ने भी इस तथ्य की अनदेखी की है ।

22. अभिलेख की संपूर्ण सामग्री के परिशीलन से, हमारी राय में प्रस्तुत किए गए अभिकथनों का अवधारण धारा 92 के अधीन विशेष वाद में साक्ष्य द्वारा ही किया जा सकता है और प्रत्यर्थी सं. 2 विवादित स्थावर संपत्ति के स्वामित्व का उपभोग न्यासी के रूप में कार्य करते हुए कर रहा है । अतः, संपूर्ण न्याय के प्रयोजन के लिए अपीलार्थियों को, इस निर्णय की उद्घोषणा की तारीख से 30 दिनों की अवधि के भीतर विधि के अनुसार समुचित आवेदन प्रस्तुत करने की छूट दी जाती है । इस न्यायालय में कोई विवाद ग्रहण करने की अधिकारिता रखने वाले सिविल न्यायालयों से पूर्वोक्त चर्चा के अनुसार इस तरह के आवेदनों की सावधानीपूर्वक परीक्षा करने की प्रत्याशा की जाती है । इस अपील का निपटान पूर्वोक्त निबंधनों के अनुसार किया जाता है ।

अपील का निपटान किया गया ।

पां.

एम. जी. ईश्वरप्पा और अन्य

बनाम

कर्नाटक राज्य

2 मार्च, 2017

न्यायमूर्ति एन. वी. रमन और न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 34 – हत्या – सामान्य आशय – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अभिलेख के संपूर्ण साक्ष्य, चिकित्सक के कथन, क्षति प्रमाणपत्र, मृतक के मृत्युकालिक कथन के परिशीलन और हत्या के हेतु से यदि दो मत संभव हों तो उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए किंतु इस मामले में विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त मत अनुचित है, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही उलटा गया है और अभियुक्तों को दोषसिद्ध ठहराया गया है ।

संक्षेप में अभियोजन वृत्तान्त इस प्रकार है कि शिकायतकर्ता निरंजनप्पा, एम. जी. ईश्वरप्पा का बड़ा भाई था । एम. जी. शिवराज और एम. जी. गिरीश, दोनों ही एम. जी. ईश्वरप्पा के पुत्र हैं । हेवल्ली शिवप्पा एम. जी. शिवराज का जीजा/साला है । शिकायतकर्ता और उसके भाई ईश्वरप्पा के बीच स्थावर संपत्ति और शिकायतकर्ता के मकान के पिछवाड़े में लगे हुए इमली की फसल काटने को लेकर विवाद चल रहा था । दोनों भाइयों के परिवारों के बीच प्रायः झगड़ा होता रहता था । घटना के पूर्व तारीख 3 मार्च, 1998 को लगभग 3 बजे अपराह्न में अभियुक्त घातक आयुधों से लैस होकर शिकायतकर्ता के घर पर आए और उन्होंने शिकायतकर्ता के परिवार द्वारा इमली के फल तोड़े जाने पर आक्षेप किया और उन्हें गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी । पड़ोसियों के हस्तक्षेप द्वारा थोड़े समय के लिए विवाद शान्त हो गया । इसके पश्चात्, जैसे ही अभियुक्त वापस गए, शिकायतकर्ता अपने पुत्र बसवराज (मृतक) और पुत्री राजेश्वरी के साथ अपने विधि परामर्शी से परामर्श करने तथा अभियुक्तों के विरुद्ध शिकायत दर्ज कराने के लिए होन्नली गए । ये तीनों लोग ग्राम मरीगोंडानाहल्ली से होन्नली के लिए लगभग 5 बजे अपराह्न में रवाना हुए

किंतु काउंसेल अपने निवास पर नहीं मिला । इस पर, शिकायतकर्ता निरंजनप्पा ने अपने पुत्र और पुत्री से ग्राम वापस जाने को कहा क्योंकि शिकायतकर्ता को काउंसेल के आने की प्रतीक्षा करनी थी । लगभग 6.30 बजे अपराह्न में बसवराज और राजेश्वरी होन्नली से अपने ग्राम के लिए रवाना हो गए । जब ये दोनों लगभग दो किलोमीटर दूर चले गए और अपने ग्राम से केवल एक किलोमीटर दूर थे, तब चार अभियुक्त अर्थात् एम. जी. ईश्वरप्पा, एम. जी. शिवराज, एम. जी. गिरीश और हेवल्ली शिवप्पा ने उन्हें रोका । ईश्वरप्पा के पास गदा था, शिवराज के पास कंडली (तेज धार वाला भारी आयुध), गिरीश और शिवप्पा के पास लोहे के सरिये थे । पहला वार शिवराज ने कंडली से बसवराज के सिर पर किया जिसके परिणामस्वरूप वह नीचे गिर गया । उसकी बहिन राजेश्वरी अपने भाई को बचाने के लिए उस पर लेट गई और अभियुक्तों से अपने भाई को छोड़ देने का निवेदन किया । इस पर शिवराज ने राजेश्वरी को खींचकर एक ओर कर दिया । इसी दौरान राजेश्वरी को छोटी-मोटी क्षतियां कारित हुईं । इसके पश्चात् गिरीश और शिवप्पा ने पहले से क्षतिग्रस्त बसवराज पर लोहे के सरियों से हमला किया । बसवराज की क्षतियों से रक्तस्राव होने लगा । अभियुक्तों ने यह सोचकर कि आहत की मृत्यु हो चुकी है, घटनास्थल से चले गए । राजेश्वरी रोने लगी । एक कम्मार रुद्रेश नाम का व्यक्ति ने, जो अपने फूल बेचने के पश्चात् सिमोगा से साइकिल पर वापस आ रहा था, राजेश्वरी से मालूम किया कि उसके साथ क्या हुआ है, और इसके पश्चात् वह उसके परिवार के सदस्यों को आहत के संबंध में सूचना देने और बैलगाड़ी लेने के लिए ग्राम चला गया । यह घटना लगभग 7.30 बजे अपराह्न में घटित हुई । उस समय चांदनी रात थी । लगभग 8 बजे अपराह्न में पर्वतम्मा अर्थात् आहत की माता अन्य ग्रामवासियों के साथ घटनास्थल पर पहुंची और आहत बसवराज को सबसे पहले चेल्लूर ले जाया गया । थोड़ी देर बाद निरंजनप्पा भी वहां पहुंच गया और मोटर वैन लेने के पश्चात्, आहत को सिमोगा अस्पताल ले जाया गया और उसे वहां पर 10.45 बजे अपराह्न में भर्ती करा दिया गया । तथापि, बसवराज की जान नहीं बचाई जा सकी और लगभग रात 12.40 बजे ही क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । इस संबंध में एक रिपोर्ट निकट के पुलिस थाना, डोडापेट में दर्ज कराई गई और इसके परिणामस्वरूप थानाध्यक्ष एम. गोपालप्पा तुरन्त अस्पताल पहुंचा । थानाध्यक्ष ने संबंधित पुलिस थाना, न्यामति में एक संसूचना भेजी जिसे अपराध सं. 49/1998 के रूप में दर्ज किया गया ।

पुलिस निरीक्षक एस. जी. पाटिल ने अन्वेषण संभाला और अपने कब्जे में शव लेने के पश्चात् मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट तैयार की और राजेश्वरी, निरंजनप्पा और पर्वतम्मा सहित कई साक्षियों से पूछताछ की । डा. सी. फ्रांसिस ने तारीख 4 मार्च, 1988 को 11 बजे पूर्वाह्न में शवारीक्षण किया और शव-परीक्षण रिपोर्ट तैयार की । इस साक्षी ने यह राय व्यक्त की कि मृतक की मृत्यु उसके सिर पर क्षति कारित होने के परिणामस्वरूप आघात और रक्तस्राव से हुई है । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, चारों अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 506, 354 और 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उनका विचारण किए जाने हेतु आरोप पत्र फाइल किया गया । मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने के पश्चात् विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 506, 323, 354 और 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप विरचित किए जिस पर अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की । अभियोजन पक्ष द्वारा कुल मिलाकर 33 साक्षियों की परीक्षा कराई गई । अभियुक्तों के समक्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया गया और पक्षकारों को सुनने के पश्चात् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया कि उनके विरुद्ध युक्तियुक्त संदेह के परे आरोप साबित नहीं किया गया है । कर्नाटक राज्य ने उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्तों की दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील फाइल की है । उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का पूनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया है कि विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के प्रतिकूल है । उच्च न्यायालय द्वारा अपील मंजूर की गई । चूंकि अभियुक्त-3 अर्थात् एम. जी. गिरीश की मृत्यु सुनवाई के दौरान हो चुकी है इसलिए उसकी अपील उपशमित की जाती है । उच्च न्यायालय ने शेष तीनों अभियुक्तों अर्थात् ईश्वरप्पा, शिवराज और हेवल्ली शिवप्पा को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 506, 354 और 302 के अधीन दोषसिद्ध किया और दंड की मात्रा पर सुनवाई करने के पश्चात् प्रत्येक दोषसिद्ध व्यक्ति को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास भोगने तथा 10,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय किए जाने के लिए दंडादिष्ट किया । जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने का निदेश भी दिया गया । दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन

दंडनीय अपराध के लिए अधिनिर्णीत दंडादेश को दृष्टिगत करते हुए अन्य अपराधों के लिए उच्च न्यायालय द्वारा कोई भी दंड अधिनिर्णीत नहीं किया गया । दोषसिद्ध व्यक्तियों ने यह अपील दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 379 के अधीन प्रस्तुत की है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख पर उपलब्ध सम्पूर्ण साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात्, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, यह न्यायालय, उच्च न्यायालय से सहमत है कि विचारण न्यायालय ने प्रतिरक्षा पक्ष के पक्षकथन को स्वीकार करने में गंभीर रूप से गलती की है कि मृतक की मृत्यु दुर्घटना में पहुंची क्षतियों के कारण हुई है क्योंकि डा. सी. फ्रांसिस द्वारा इस संभावना से इनकार नहीं किया गया है । न्यायालय ने डा. सी. फ्रांसिस के कथन का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि ऐसी क्षतियां किसी भी व्यक्ति को दुर्घटना के परिणामस्वरूप पहुंच सकती हैं । इस तथ्य की बाबत कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि घटनास्थल से होकर घटना के समय कोई वाहन गुजरा था । ऐसा प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने अनुमानों और अटकलों का सहारा लिया है । इन परिस्थितियों में, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत अनुचित है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के विरुद्ध है । (पैरा 16)

अभियुक्त/अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री बी. एच. मारलपल्ले द्वारा यह दलील दी गई है कि यदि घटना अभियोजन पक्ष द्वारा बताई गई रीति के अनुसार घटित हुई होती तब आहत को निकटतम स्थित अस्पताल ले जाया गया होता जो कि चेल्लूर में है किंतु आहत को सिमोगा में स्थित अस्पताल ले जाया गया जिससे घटनास्थल पर संदेह होता है । हमें इस दलील में कोई बल दिखाई नहीं देता है जिसका यह कारण है कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि चेल्लूर वाले अस्पताल में गंभीर रूप से आहत हुए व्यक्ति का उपचार किए जाने के लिए सुविधाएं उपलब्ध थीं । अभिलेख पर यह भी उपलब्ध है कि आहत की दशा नाजुक थी और वह उस समय अचेत था जब उसे सिमोगा के अस्पताल में भर्ती कराया गया था । मात्र इस कारण से कि चेल्लूर में एक चिकित्सक को नियुक्त किया जाता था, यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि गंभीर रूप से आहत हुए रोगी का उपचार किए जाने के लिए वहां पर सुविधाएं उपलब्ध थीं, इस प्रकार हमारी राय में यह अस्वाभाविक

नहीं है कि आहत को ऐसे अस्पताल ले जाया गया जहां उसका उपचार समय नष्ट किए बिना बेहतर तरीके से किया जा सके । (पैरा 18)

अपीलार्थियों की ओर से एक अन्य दलील यह दी गई है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में हमला किए जाने के ब्यौरे नहीं दिए हैं और राजेश्वरी द्वारा बताई गई कहानी साक्ष्य में सुधार किए जाने के सिवाए कुछ नहीं है । तथापि, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि सभी आवश्यक तथ्यों का वर्णन किया गया है और केवल ये ब्यौरे नहीं दिए गए हैं कि कौन-कौन सा अभियुक्त किस-किस ओर से आया । विधि इस संबंध में सुस्थापित है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सार्वभौमिक नहीं है और यदि उसमें आवश्यक ब्यौरे उपलब्ध हैं तब उसके आधार पर साक्षियों द्वारा विस्तार से किए गए वर्णन पर संदेह नहीं किया जा सकता । (पैरा 19)

न्यायालय के समक्ष तीसरा मुद्दा यह उठाया गया है कि क्षति प्रमाणपत्र में केवल दो क्षतियां अर्थात् दायीं टांग में अस्थिभंग और जबड़े के बाएं कोण के नीचे रक्तमय छिद्र, दर्शाई गई हैं जबकि शवपरीक्षण रिपोर्ट में मृत्यु-पूर्व में नौ क्षतियों का उल्लेख है । इस प्रकार दोनों दस्तावेजों में स्पष्ट विरोधाभास दिखाई पड़ता है । गहराई से संवीक्षा करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि इसमें कोई भी सारभूत फर्क नहीं है क्योंकि डा. नन्दा कोटि ने प्रदर्श पी. 4-बी को साबित किया है जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि रोगी को तत्काल उपचार की आवश्यकता थी । इसलिए छोटी-मोटी क्षतियों का नहीं अपितु केवल गंभीर क्षतियों का ही उल्लेख रजिस्टर में किया गया है और रोगी को आपातकालीन वार्ड में भेज दिया गया । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि मृतक बसवराज अचेत था । इन परिस्थितियों में, शवपरीक्षण रिपोर्ट में टांका लगे हुए घावों का अतिरिक्त उल्लेख किए जाने से प्रश्नगत घटना पर संदेह नहीं होता है । (पैरा 20)

श्री बी. एच. मरलापल्ले ने यह भी दलील दी है कि मृतक का मृत्युकालिक कथन अभिलिखित न किया जाना वर्तमान मामले में एक महत्वपूर्ण तथ्य है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल की दलील से सहमत होना हमारी समझ से बाहर है क्योंकि अभिलेख पर यह उपलब्ध है कि मृतक उस समय होश में नहीं था जब उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया था । इस प्रकार ऐसी गंभीर अवस्था में रोगी का मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता है । (पैरा 22)

अन्ततः, अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने एक अन्य मामले को निर्दिष्ट करते हुए यह दलील दी है कि जब दो मत संभव हों, तब उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । यह न्यायालय, विधि के इस सिद्धांत से सहमत है कि जब दो मत संभव हों, तब विचारण न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए किंतु वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय द्वारा जो मत व्यक्त किया गया है, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है, अनुचित है और उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा ठीक ही अभिनिर्धारित किया गया है । (पैरा 25)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2003]	(2003) 1 एस. सी. सी. 465 : **जोसेफ** बनाम **केरल राज्य ;**	24
[1976]	(1976) 1 एस. सी. सी. 37 : **मुलुवा पुत्र बिन्दा और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य ;**	25
[1974]	(1974) 4 एस. सी. सी. 293 : **इरलापति सुब्बाया** बनाम **लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश** ।	23

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2006 की दांडिक अपील सं. 435.

1999 की दांडिक अपील सं. 1055 में कर्नाटक उच्च न्यायालय, बंगलूरू द्वारा तारीख 7 फरवरी, 2006 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री बी. एच. मरलापल्ले (ज्येष्ठ अधिवक्ता), सन्त कुमार बी. महाले, अमित जे., राजेश महाले, अपूर्व शुक्ला, आदित्य गग्गर, अजीत वाघ और एस. के. पाठक

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री वी. एन. रघुपति, लगनेश मिश्रा, परीक्षित पी. अंगदी और प्रकाश जाधव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत ने दिया ।

न्या. पंत – यह अपील 1999 की दांडिक अपील सं. 1055 में कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 7 फरवरी, 2006 को पारित किए गए उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने राज्य द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की और 1998 के सेशन मामला सं. 40 में अपर सेशन न्यायाधीश, सिमोगा द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि के निर्णय को उलट दिया ।

2. संक्षेप में अभियोजन वृत्तान्त इस प्रकार है कि शिकायतकर्ता निरंजनप्पा (अभि. सा. 16), एम. जी. ईश्वरप्पा (अभियुक्त-1) का बड़ा भाई था । एम. जी. शिवराज (अभियुक्त-2) और एम. जी. गिरीश (अभियुक्त-3), दोनों ही एम. जी. ईश्वरप्पा के पुत्र हैं । हेवल्ली शिवप्पा (अभियुक्त-4) एम. जी. शिवराज (अभियुक्त-2) का जीजा/साला है । शिकायतकर्ता और उसके भाई ईश्वरप्पा के बीच स्थावर संपत्ति और शिकायतकर्ता के मकान के पिछवाड़े में लगे हुए इमली की फसल काटने को लेकर विवाद चल रहा था । दोनों भाइयों के परिवारों के बीच प्रायः झगड़ा होता रहता था । घटना के पूर्व तारीख 3 मार्च, 1998 को लगभग 3 बजे अपराह्न में अभियुक्त घातक आयुधों से लैस होकर शिकायतकर्ता के घर पर आए और उन्होंने शिकायतकर्ता के परिवार द्वारा इमली के फल तोड़े जाने पर आक्षेप किया और उन्हें गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी । पड़ोसियों के हस्तक्षेप द्वारा थोड़े समय के लिए विवाद शान्त हो गया । इसके पश्चात्, जैसे ही अभियुक्त वापस गए, शिकायतकर्ता अपने पुत्र बसवराज (मृतक) और पुत्री राजेश्वरी (अभि. सा. 1) के साथ अपने विधि परामर्शी से परामर्श करने तथा अभियुक्तों के विरुद्ध शिकायत दर्ज कराने के लिए होन्नली गए । ये तीनों लोग ग्राम मरीगोंडानाहल्ली से होन्नली के लिए लगभग 5 बजे अपराह्न में रवाना हुए किंतु काउंसेल अपने निवास पर नहीं मिला । इस पर, शिकायतकर्ता निरंजनप्पा (अभि. सा. 16) ने अपने पुत्र और पुत्री से ग्राम वापस जाने को कहा क्योंकि शिकायतकर्ता को काउंसेल के आने की प्रतीक्षा करनी थी । लगभग 6.30 बजे अपराह्न में बसवराज और राजेश्वरी होन्नली से अपने ग्राम के लिए रवाना हो गए । जब ये दोनों लगभग दो किलोमीटर दूर चले गए और अपने ग्राम से केवल एक किलोमीटर दूर थे, तब चार अभियुक्त अर्थात् एम. जी. ईश्वरप्पा, एम. जी. शिवराज, एम. जी. गिरीश और हेवल्ली शिवप्पा ने उन्हें रोका । ईश्वरप्पा (अभियुक्त-1) के पास गदा था, शिवराज (अभियुक्त-2) के पास कंडली (तेज धार वाला भारी आयुध) और गिरीश

(अभियुक्त-3) और शिवप्पा (अभियुक्त-4) के पास लोहे के सरिये थे । पहला वार शिवराज ने कंडली से बसवराज के सिर पर किया जिसके परिणामस्वरूप वह नीचे गिर गया । उसकी बहिन राजेश्वरी (अभि. सा. 1) अपने भाई को बचाने के लिए उस पर लेट गई और अभियुक्तों से अपने भाई को छोड़ देने का निवेदन किया । इस पर शिवराज (अभियुक्त-2) ने राजेश्वरी को खींचकर एक ओर कर दिया । इसी दौरान राजेश्वरी को छोटी-मोटी क्षतियां कारित हुईं । इसके पश्चात् गिरीश (अभियुक्त-3) और शिवप्पा (अभियुक्ता-4) ने पहले से क्षतिग्रस्त बसवराज पर लोहे के सरियों से हमला किया । बसवराज की क्षतियों से रक्तस्राव होने लगा । अभियुक्तों ने यह सोचकर कि आहत की मृत्यु हो चुकी है, घटनास्थल से चले गए । राजेश्वरी (अभि. सा. 1) रोने लगी । एक कम्मार रुद्रेश नाम का व्यक्ति ने, जो अपने फूल बेचने के पश्चात् सिमोगा से साइकिल पर वापस आ रहा था, राजेश्वरी से मालूम किया कि उसके साथ क्या हुआ है, और इसके पश्चात् वह उसके परिवार के सदस्यों को आहत के संबंध में सूचना देने और बैलगाड़ी लेने के लिए ग्राम चला गया । यह घटना लगभग 7.30 बजे अपराह्न में घटित हुई । उस समय चांदनी रात थी । लगभग 8 बजे अपराह्न में पर्वतम्मा (अभि. सा. 29) अर्थात् आहत की माता अन्य ग्रामवासियों के साथ घटनास्थल पर पहुंची और आहत बसवराज को सबसे पहले चेल्लूर ले जाया गया । थोड़ी देर बाद निरंजनप्पा (अभि. सा. 16) भी वहां पहुंच गया और मोटर वैन लेने के पश्चात्, आहत को सिमोगा अस्पताल ले जाया गया और उसे वहां पर 10.45 बजे अपराह्न में भर्ती करा दिया गया । तथापि, बसवराज की जान नहीं बचाई जा सकी और लगभग रात 12.40 बजे ही क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । इस संबंध में एक रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 5) निकट के पुलिस थाना, डोडापेट में दर्ज कराई गई और इसके परिणामस्वरूप थानाध्यक्ष एम. गोपालप्पा (अभि. सा. 28) तुरन्त अस्पताल पहुंचा । थानाध्यक्ष ने संबंधित पुलिस थाना, न्यामति में एक संसूचना (प्रदर्श पी. 6) भेजी जिसे अपराध सं. 49/1998 के रूप में दर्ज किया गया । पुलिस निरीक्षक एस. जी. पाटिल (अभि. सा. 33) ने अन्वेषण संभाला और अपने कब्जे में शव लेने के पश्चात् मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 28) तैयार की और राजेश्वरी (अभि. सा. 1), निरंजनप्पा (अभि. सा. 16) और पर्वतम्मा (अभि. सा. 29) सहित कई साक्षियों से पूछताछ की । डा. सी. फ्रांसिस (अभि. सा. 2) ने तारीख 4 मार्च, 1988 को 11 बजे पूर्वाह्न में शवपरीक्षण किया और शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 2) तैयार की । इस साक्षी ने यह राय व्यक्त की कि मृतक की मृत्यु उसके सिर पर क्षति

कारित होने के परिणामस्वरूप आघात और रक्तस्राव से हुई है । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, चारों अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 34 के साथ पठित धारा 506, 354 और 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उनका विचारण किए जाने हेतु आरोप पत्र फाइल किया गया ।

3. मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने के पश्चात् विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 506, 323, 354 और 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप विरचित किए जिस पर अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की । अभियोजन पक्ष द्वारा कुल मिलाकर 33 साक्षियों की परीक्षा कराई गई । अभियुक्तों के समक्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया गया और पक्षकारों को सुनने के पश्चात् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया कि उनके विरुद्ध युक्तियुक्त संदेह के परे आरोप साबित नहीं किया गया है ।

4. कर्नाटक राज्य ने उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्तों की दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील फाइल की है । उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का पूनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया है कि विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अनुचित है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के प्रतिकूल है । उच्च न्यायालय द्वारा अपील मंजूर की गई । चूंकि अभियुक्त-3 अर्थात् एम. जी. गिरीश की मृत्यु सुनवाई के दौरान हो चुकी है इसलिए उसकी अपील उपशमित की जाती है । उच्च न्यायालय ने शेष तीनों अभियुक्तों अर्थात् ईश्वरप्पा, शिवराज और हेवल्ली शिवप्पा को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 506, 354 और 302 के अधीन दोषसिद्ध किया और दंड की मात्रा पर सुनवाई करने के पश्चात् प्रत्येक दोषसिद्ध व्यक्ति को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास भोगने तथा 10,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय किए जाने के लिए दंडादिष्ट किया । जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने का निदेश भी दिया गया । दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए अधिनिर्णीत दंडादेश को दृष्टिगत करते हुए अन्य अपराधों के लिए उच्च न्यायालय द्वारा कोई भी दंड अधिनिर्णीत नहीं किया गया । दोषसिद्ध व्यक्तियों ने यह अपील दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 379 के अधीन

प्रस्तुत की है । इस न्यायालय के समक्ष अपील के लंबित रहने के दौरान एम. जी. ईश्वरप्पा अर्थात् अपीलार्थी-1 की मृत्यु हो गई थी, इसीलिए उसकी अपील उपशमित की जाती है ।

5. हमने एम. जी. शिवराज (अभियुक्त-2) और हेवल्ली शिवप्पा (अभियुक्त-4) अर्थात् दोनों अपीलार्थियों तथा राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना है और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य का परिशीलन किया है ।

6. अभिलेख का परिशीलन करने पर यह दर्शित होता है कि अभियोजन पक्ष ने मृतक की बहिन राजेश्वरी (अभि. सा. 1), शवपरीक्षण करने वाले चिकित्सक डा. सी. फ्रांसिस (अभि. सा. 2), डा. नन्दा कोटि (अभि. सा. 3), कम्मार रुद्रेशी **उर्फ** रुद्रचारी (अभि. सा. 4), एच. आर. हलेशी (अभि. सा. 5), बसावनगौड़ा (अभि. सा. 6), ईश्वरप्पा (जो अभियुक्त नहीं है अर्थात् अभि. सा. 7), पालक्षप्पा (अभि. सा. 8) शंकरप्पा (अभि. सा. 9), एम. राजू (अभि. सा. 10), चन्द्रशेखरिया (अभि. सा. 11), वी. वसवराजप्पा (अभि. सा. 12), टी. आर. महादेवप्पा (अभि. सा. 13), सी. चन्द्रप्पा (अभि. सा. 14), एस. एच. परमेश्वरप्पा (अभि. सा. 15), शिकायतकर्ता एम. जी. निरंजनप्पा (अभि. सा. 16), एच. एन. पुटय्या (अभि. सा. 17), शंकर (अभि. सा. 18), अरविंद (अभि. सा. 19), बसवराजप्पा **उर्फ** बसप्पा (अभि. सा. 20), एम. आर. हलेशप्पा (अभि. सा. 21), रुद्रेशप्पा (अभि. सा. 22), अंगदी नटराजा (अभि. सा. 23), कोटी रुद्रेशी **उर्फ** रुद्रेशप्पा (अभि. सा. 24), जनरल अस्पताल, होन्नली के भारसाधक डा. सुरेश (अभि. सा. 25), सी. आर. उमेश (अभि. सा. 26), एन. एम. शंकर (अभि. सा. 27), पुलिस थाना डोडापेट के थानाध्यक्ष एम. गोपालप्पा (अभि. सा. 28). मृतक की माता पर्वतम्मा (अभि. सा. 29), चनबसप्पा (अभि. सा. 30), लक्ष्मप्पा (अभि. सा. 31), एम. के. गंगल (अभि. सा. 32) और मामले का अन्वेषण करने वाले पुलिस निरीक्षक एस. जी. पाटिल (अभि. सा. 33) की परीक्षा कराई ।

7. आगे चर्चा करने के पूर्व हम मृतक के शरीर पर प्रदर्श पी. 2 में डा. सी. फ्रांसिस (अभि. सा. 2) द्वारा अभिलिखित की गई मृत्यु-पूर्व क्षतियों का उल्लेख करना न्यायोचित समझते हैं जो निम्न प्रकार हैं :–

> "(1) करोटि और बाएं पार्श्वकपालीय भाग में 3 इंच × 0.5 इंच माप का विदीर्ण घाव जिसकी गहराई अस्थि तक है ।
>
> (2) बाईं कर्णसर्पिला पर 0.5 इंच × 0.25 इंच माप का सिला

हुआ घाव ।

(3) बाएं मासपेशीय भाग में 0.5 इंच × 0.5 इंच माप का सिला हुआ घाव ।

(4) बाईं कोहनी के पीछे की ओर 0.5 इंच × 0.25 इंच माप का सिला हुआ घाव ।

(5) दाएं बाहु के निचले भाग के पीछे की ओर 0.5 इंच × 0.25 इंच माप का सिला हुआ घाव ।

(6) बाईं टांग की पूरी सतह पर 0.5 इंच × 0.75 इंच माप का सिला हुआ घाव ।

(7) दाईं टांग की पूरी सतह पर कई अनियमित सिले हुए घाव ।

(8) दाईं टांग के निचले एक-तिहाई भाग के मध्य में 0.25 इंच × 0.25 इंच माप का सिला हुआ छिद्रयुक्त घाव जिसकी गहराई अस्थि तक है । विच्छेदन करने पर मांस-पेशियां अनियमित रूप से विदीर्ण पाई गई हैं और अंतर्जंघिका तथा बहिर्जंघिका के ऊपरी एक-तिहाई भाग में विचूर्णित अस्थिभंग बना हुआ है ।

(9) बाईं बाहु पर सूजन है, विच्छेदन करने पर मांस-पेशियां विदीर्ण दिखाई देती है और काफी मात्रा में रक्त का थक्का मौजूद है ।"

प्रदर्श पी. 2 में उल्लिखित डा. सी. फ्रांसिस (अभि. सा. 2) की राय के अनुसार मृतक की मृत्यु नाजुक अंग अर्थात् मस्तिष्क को क्षति पहुंचने के परिणामस्वरूप आघात और रक्तस्राव से हुई है ।

8. अभियोजन पक्षकथन के अनुसार सबसे महत्वपूर्ण साक्षी कुमारी एम. एन. राजेश्वरी (अभि. सा. 1) है, जो मृतक की बहिन है । तारीख 3 मार्च, 1998 को 3 बजे अपराह्न में घटित घटना का उल्लेख करते हुए अभि. सा. 1 ने यह कथन किया है कि वह अपने पिता निरंजनप्पा (अभि. सा. 16) और भाई (मृतक) के साथ ग्राम मरीगोंडानाहल्ली से लगभग 5 बजे अपराह्न में रिपोर्ट दर्ज कराने से संबंधित अपने अधिवक्ता से परामर्श लेने के लिए होन्नली जाने हेतु रवाना हुई थी । इस साक्षी ने यह भी बताया कि अधिवक्ता श्रीनिवास, जिनसे वे मिलने गए थे, होन्नली में उपलब्ध नहीं था और उसके पिता ने अधिवक्ता की प्रतीक्षा करने का विनिश्चय किया और अभि. सा. 1 और उसके भाई को यह सलाह दी कि

वे ग्राम वापस चले जाएं । अभि. सा. 1 ने यह भी बताया कि वह होन्नली के लिए 6.30 बजे अपराह्न में रवाना हुई थी और अपने भाई बसवराज के साथ कडाकट्टे वापस आ गई थी । राजेश्वरी (अभि. सा. 1) ने यह भी कथन किया है कि वह और उसका भाई 7 बजे अपराह्न में कडाडाकट्टे पहुंचे थे और जब चारों अभियुक्त अर्थात् ईश्वरप्पा, गिरीश, शिवराज और शिवप्पा वहां पहुंचे और उन्होंने अभि. सा. 1 और उसके भाई को रोका तब तक अर्थात् 7.30 बजे अपराह्न तक उन्होंने लगभग दो किलोमीटर की दूरी पैदल चलकर तय कर ली थी । अभियुक्त गिरीश ने कहा, अन्ना बंडारु (भाई, वे आ गए) और शिवराज (अभियुक्त-2) ने कंडली (तेज धार वाला भारी आयुध) से बसवराज के सिर पर वार किया । इस साक्षी ने यह भी बताया कि वह अपने भाई के ऊपर उसे बचाने के लिए लेट गई थी और उसने अभियुक्तों से अपने भाई को छोड़ देने को कहा किंतु शिवराज (अभियुक्त-2) ने उसे खींचकर अलग कर दिया और इसके पश्चात् गिरीश (अभियुक्त-3) और शिवप्पा (अभियुक्त-4) ने लोहे के सरिये से बसवराज पर हमला किया । इस साक्षी ने यह भी बताया कि शिवप्पा (अभियुक्त-4) ने उसकी टांग पर भी हमला किया । ईश्वरप्पा, जो कि गदा लिए हुए था, ने उसके भाई के कान के निकट हमला किया और उसकी कोहनी पर भी वार किया । इन दोनों पर हमला करने के पश्चात् अभियुक्त सूलेमागा साथु होडा (वह मर गया) कहते हुए ग्राम की ओर चले गए ।

9. राजेश्वरी (अभि. सा. 1) ने घटना का वर्णन करते हुए यह भी बताया कि घटना के पश्चात् कोई सहारा दिखाई न देने पर वह रोने लगी और जब कम्मार रुद्रेश नाम का एक व्यक्ति, जो साइकिल से वहां से गुजर रहा था, आया और अभि. सा. 1 ने उसे घटना के बारे में बताया । उक्त रुद्रेश ग्राम की ओर चला गया और उसने ग्रामवासियों को सूचित किया और ग्रामवासी बैलगाड़ी से वहां पहुंचे । इसके पश्चात् एक अन्य बैलगाड़ी से अभि. सा. 1 के माता-पिता अर्थात् पर्वतम्मा (अभि. सा. 29) वहां पहुंची । बसवराज को कडाडाकट्टे चौराहे तक बैलगाड़ी से ले जाया गया और वहां से चेल्लूर के लिए एक आटो रिक्शे से ले जाया गया । अभि. सा. 1 के अनुसार घटना की सूचना प्राप्त होने पर उसके पिता भी चेल्लूर पहुंच गए और वहां से वे सब मेटाडोर वैन से बसवराज को सिमोगा अस्पताल ले गए । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि लगभग 10.30 बजे अपराह्न में बसवराज को अस्पताल में भर्ती कराया गया किंतु रात्रि में ही क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । अन्त में, अभि. सा. 1 ने यह बताया कि

उसके पिता निरंजनप्पा (अभि. सा. 16) ने पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराई । अभि. सा. 1 ने इस तथ्य की भी संपुष्टि की है कि पुलिस ने मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट तैयार की और उसने परिप्रश्न के दौरान पुलिस को घटनास्थल भी दिखाया था । राजेश्वरी की विस्तार से प्रतिपरीक्षा कराई गई है किंतु उसके साक्ष्य से ऐसी कोई सामग्री उद्‌भूत नहीं हुई है जिससे उसके परिसाक्ष्य पर संदेह किया जा सके ।

10. एम. जी. निरंजनप्पा (शिकायतकर्ता) अर्थात् अभि. सा. 16 ने अपराध कारित किए जाने के हेतु को स्पष्ट करते हुए यह कथन किया है कि उसके और उसके भाई अर्थात् अभियुक्त-1 (ईश्वरप्पा) के बीच विभाजन के 15 वर्ष पूर्व से संपत्ति विवाद चल रहा था । निरंजनप्पा (अभि. सा. 16) द्वारा यह भी कथन किया गया है कि जब भूमि का विभाजन किया गया था, चार एकड़ भूमि उनकी माता के भरणपोषण के लिए अलग कर दी गई थी जो अभियुक्त-1 अर्थात् ईश्वरप्पा के साथ रहती थी । किंतु अभियुक्त-1 ने माता को दी गई संपत्ति बेच दी । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि जब माता ने ग्राम मरीगोंडानाहल्ली में संपत्ति क्रय की थी तब शिकायतकर्ता ने अपने हिस्से की मांग की थी जो उसे दिए जाने से इनकार किया गया । केवल इतना ही नहीं जिस मकान में दोनों भाई अपने परिवार के साथ अलग-अलग रहते थे, शिकायतकर्ता के नाम में था जिसे ईश्वरप्पा (अभियुक्त-1) ने अपने नाम में स्थानांतरित किए जाने किए जाने की मांग की । इस संबंध में एक पंचायत बैठाई गई जिसमें विवाद का निपटारा करते हुए यह निदेश दिया कि अभियुक्त-1 15,000/- रुपए शिकायतकर्ता को संदत्त करेगा किंतु अभियुक्त-1 ने केवल 5,000/- रुपयों का संदाय किया । निरंजनप्पा (अभि. सा. 16) ने यह भी बताया कि इस घटना के लगभग 11 मास पूर्व उपरोक्त विवाद के कारण परस्पर विरोधी पक्षकारों के बीच झगड़ा हो गया था जिसके परिणामस्वरूप आपराधिक मामला दर्ज कराया गया जो ईश्वरप्पा (अभियुक्त-1) और गिरीश (अभियुक्त-3) के विरुद्ध लंबित चल रहा था । इसके अतिरिक्त प्रश्नगत घटना के 15 दिन पूर्व शिकायतकर्ता के परिवार द्वारा इमली तोड़े जाने को लेकर झगड़ा हो गया था । निरंजनप्पा (अभि. सा. 16) ने इस तथ्य की भी पुष्टि की है कि घटना के दिन अर्थात् 3 मार्च, 1998 को पांच बजे अपराह्न में वह अपने पुत्र बसवराज और पुत्री राजेश्वरी (अभि. सा. 1) के साथ अपने काउंसेल से मिलने गया था किंतु वह मौजूद नहीं था और निरंजनप्पा ने बसवराज तथा राजेश्वरी को ग्राम वापस जाने के लिए कहा

क्योंकि उसे काउंसेल से मिलने के लिए उसकी प्रतीक्षा करनी थी । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि उसने पुलिस में शिकायत (प्रदर्श पी. 17) दर्ज कराई थी जिस पर उसने अपने हस्ताक्षर किए थे ।

11. चनबसप्पा (अभि. सा. 30) ने इस तथ्य की संपुष्टि की है कि रुद्रेश नाम का व्यक्ति तारीख 3 मार्च, 1998 को 8 बजे अपराह्न में उसके घर पर आया और उसने घटना के बारे में सूचना दी जिस पर वह चेल्लूर गया और उसने बसवराज को क्षतिग्रस्त अवस्था में देखा ।

12. बसवराज को घटना के पश्चात् मैक गन अस्पताल, सिमोगा ले जाया गया और वहां के डा. नन्दा कोटि (अभि. सा. 3) ने यह कथन किया है कि 10.40 बजे अपराह्न में आहत को चार अभियुक्तों (ईश्वरप्पा और अन्य) द्वारा हमला किए जाने की शिकायत के साथ अस्पताल लाया गया । इस साक्षी ने क्षति प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी. 4) को साबित किया है और यह कथन किया है कि आहत की मृत्यु रात्रि में लगभग 12.45 बजे क्षतियों के कारण हुई थी । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि अस्पताल में भर्ती किए जाने के समय पर बसवराज अचेत था ।

13. पर्वतम्मा (अभि. सा. 29) ने अभियोजन वृत्तांत की संपुष्टि की है और यह कथन किया है कि कम्मार रुद्रेश नाम के व्यक्ति के माध्यम से घटना की सूचना प्राप्त होने के पश्चात् वह हलेश, नटराज, कम्मार रुद्रेश के साथ बैलगाड़ी से तुरन्त घटनास्थल पर पहुंची । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि गुरुसंतप्पा, बसवानागौडा, उमेशा और शंकरा अपनी बैलगाड़ी से पहले ही घटनास्थल पर पहुंच गए थे । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि वे सब बैलगाड़ी से मृतक को कुछ दूर लेकर गए थे और फिर वहां से एक आटोरिक्शा द्वारा चेल्लूर तक ले जाया गया और चेल्लूर से, जहां से उसका पति निरंजनप्पा भी उनके साथ सम्मिलित हो गया था, वे आहत को वैन द्वारा मैक गन अस्पताल, सिमोगा लेकर गए । पर्वतम्मा ने यह भी कथन किया है कि उसकी पुत्री राजेश्वरी (अभि. सा. 1) को भी छोटी-मोटी क्षतियां पहुंची थीं ।

14. डा. सुरेश (अभि. सा. 25) ने यह कथन किया है कि तारीख 4 मार्च, 1998 (अर्थात् घटना के अगले दिन) को उसने राजेश्वरी (अभि. सा. 1) की चिकित्सा परीक्षा की और उसके शरीर पर निम्न क्षतियां देखीं :–

"(i) दाईं टांग के मध्य भाग में गुमटा है जिसकी माप लगभग 3

सेमी. × 1 सेमी. है ।

(ii) गर्दन के बाईं ओर दर्द और क्षीणता है ।

(iii) बाएं हाथ पर 1 सेमी. × 0.5 सेमी. व्यास की रगड़ मौजूद है ।

(iv) पूरे शरीर पर क्षीणता है ।

इस साक्षी ने क्षति प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी. 25) को भी साबित किया है ।

15. विचारण न्यायालय ने आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अर्थात् राजेश्वरी (अभि. सा. 1) के साक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराया है और यह मत व्यक्त किया है कि इस साक्ष्य की संपुष्टि तथ्य से संबंधित अन्य ऐसे किसी भी साक्षी द्वारा नहीं हुई है जो पूर्णतया या भागतः पक्षद्रोही हुआ हो । किंतु विचारण न्यायालय ने इस तथ्य को अनदेखा करके भारी त्रुटि की है कि ऐसे साक्षी घटना के साक्षी नहीं हैं । अभियोजन पक्षकथन यह है कि वे तत्पश्चात् घटनास्थल पर पहुंचे थे । आश्चर्य की बात है कि विचारण न्यायालय ने इस आधार पर अभियोजन वृत्तान्त पर विश्वास नहीं किया है कि अधिवक्ता श्रीनिवास को अभियोजन पक्ष द्वारा न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया गया था । यह उल्लेख करना सुसंगत होगा कि अभियोजन वृत्तान्त के अनुसार अधिवक्ता उस समय अपने निवास पर उपलब्ध नहीं था जब निरंजनप्पा (अभि. सा. 16) अपने पुत्र और पुत्री के साथ पूर्ववर्ती घटना के संबंध में परामर्श करने के लिए मिलने गए थे ।

16. अभिलेख पर उपलब्ध सम्पूर्ण साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात्, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, हम उच्च न्यायालय से सहमत हैं कि विचारण न्यायालय ने प्रतिरक्षा पक्ष के पक्षकथन को स्वीकार करने में गंभीर रूप से गलती की है कि मृतक की मृत्यु दुर्घटना में पहुंची क्षतियों के कारण हुई है क्योंकि डा. सी. फ्रांसिस (अभि. सा. 2) द्वारा इस संभावना से इनकार नहीं किया गया है । हमने डा. सी. फ्रांसिस के कथन का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि ऐसी क्षतियां किसी भी व्यक्ति को दुर्घटना के परिणामस्वरूप पहुंच सकती हैं । इस तथ्य की बाबत कोई सुझाव नहीं दिया गया है कि घटनास्थल से होकर घटना के समय कोई वाहन गुजरा था । ऐसा प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने अनुमानों और अटकलों का सहारा लिया है । इन परिस्थितियों में, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त

किया गया मत अनुचित है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के विरुद्ध है ।

17. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, राजेश्वरी (अभि. सा. 1) अर्थात् आहत के कथन की संपुष्टि न केवल निरंजनप्पा (अभि. सा. 16), पर्वतम्मा (अभि. सा. 29) और चनबसप्पा (अभि. सा. 30) के कथनों से होती है अपितु अभिलेख पर उपलब्ध चिकित्सीय साक्ष्य से भी प्रबलित होती है । वर्तमान मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तत्काल दर्ज कराई गई है और उसकी प्रति घटना के ठीक अगले दिन बिना किसी विलंब के मजिस्ट्रेट को भेज दी गई थी । याची की ओर से यह इंगित किया गया है कि अभिलेख से यह स्पष्ट हो गया है कि तीनों अपीलार्थी घटना के पश्चात् ग्राम से फरार हो गए थे और वे तारीख 10 मार्च, 1998 को ही गिरफ्तार किए जा सके । डा. नन्दकोटि (अभि. सा. 3) द्वारा जारी किए गए क्षति प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी. 4-बी) में हमला किए जाने की शिकायत का उल्लेख किया गया है जो निम्न प्रकार है :-

"क्षति प्रमाणपत्र

> एक पुरुष के शरीर पर, जिसकी आयु 28 वर्ष है और नाम बसवराज है तथा मरीगोंडानाहल्ली का निवासी है जिसे चनप्पा के साथ रिपोर्ट के लिए भेजा गया है क्योंकि यह बताया गया है कि उसके शरीर पर तारीख 3 मार्च, 1998 को क्षतियां कारित हुई हैं और उस पर चार व्यक्तियों अर्थात् ईश्वरप्पा तथा अन्य द्वारा तारीख 3 मार्च, 1998 को लगभग 7.30 बजे अपराह्न में हमला किया गया है .... ।"

18. अभियुक्त/अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री बी. एच. मरलापल्ले द्वारा यह दलील दी गई है कि यदि घटना अभियोजन पक्ष द्वारा बताई गई रीति के अनुसार घटित हुई होती तब आहत को निकटतम स्थित अस्पताल ले जाया गया होता जो कि चेल्लूर में है किंतु आहत को सिमोगा में स्थित अस्पताल ले जाया गया जिससे घटनास्थल पर संदेह होता है । हमें इस दलील में कोई बल दिखाई नहीं देता है जिसका यह कारण है कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि चेल्लूर वाले अस्पताल में गंभीर रूप से आहत हुए व्यक्ति का उपचार किए जाने के लिए सुविधाएं उपलब्ध थीं । अभिलेख पर यह भी उपलब्ध है कि आहत की दशा नाजुक थी और वह उस समय अचेत था जब उसे सिमोगा के अस्पताल में भर्ती कराया गया था । मात्र इस कारण से कि चेल्लूर में एक चिकित्सक को नियुक्त किया जाता था, यह अर्थ

नहीं लगाया जा सकता है कि गंभीर रूप से आहत हुए रोगी का उपचार किए जाने के लिए वहां पर सुविधाएं उपलब्ध थीं, इस प्रकार हमारी राय में यह अस्वाभाविक नहीं है कि आहत को ऐसे अस्पताल ले जाया गया जहां उसका उपचार समय नष्ट किए बिना बेहतर तरीके से किया जा सके ।

19. अपीलार्थियों की ओर से एक अन्य दलील यह दी गई है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में हमला किए जाने के ब्यौरे नहीं दिए हैं और राजेश्वरी (अभि. सा. 1) द्वारा बताई गई कहानी साक्ष्य में सुधार किए जाने के सिवाय कुछ नहीं है । तथापि, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि सभी आवश्यक तथ्यों का वर्णन किया गया है और केवल ये ब्यौरे नहीं दिए गए हैं कि कौन-कौन सा अभियुक्त किस-किस ओर से आया । विधि इस संबंध में सुस्थापित है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सार्वभौमिक नहीं है और यदि उसमें आवश्यक ब्यौरे उपलब्ध हैं तब उसके आधार पर साक्षियों द्वारा विस्तार से किए गए वर्णन पर संदेह नहीं किया जा सकता ।

20. हमारे समक्ष तीसरा मुद्दा यह उठाया गया है कि क्षति प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी. 4) में केवल दो क्षतियां अर्थात् दाईं टांग में अस्थिभंग और जबड़े के बाएं कोण के नीचे रक्तमय छिद्र, दर्शाईं गई हैं जबकि शवपरीक्षण रिपोर्ट में मृत्यु-पूर्व में नौ क्षतियों का उल्लेख है । इस प्रकार दोनों दस्तावेजों में स्पष्ट विरोधाभास दिखाई पड़ता है । गहराई से संवीक्षा करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि इसमें कोई भी सारभूत फर्क नहीं है क्योंकि डा. नन्दा कोटि (अभि. सा. 3) ने प्रदर्श पी. 4-बी को साबित किया है जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि रोगी को तत्काल उपचार की आवश्यकता थी । इसलिए छोटी-मोटी क्षतियों का नहीं अपितु केवल गंभीर क्षतियों का ही उल्लेख रजिस्टर में किया गया है और रोगी को आपातकालीन वार्ड में भेज दिया गया । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि मृतक बसवराज अचेत था । इन परिस्थितियों में, शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पी. 2) में टांका लगे हुए घावों का अतिरिक्त उल्लेख किए जाने से प्रश्नगत घटना पर संदेह नहीं होता है ।

21. जहां तक रोशनी के स्रोत का संबंध है, यह दलील दी गई है कि यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि राजेश्वरी (अभि. सा. 1) ने अभियुक्त की शनाख्त किस प्रकार की । यदि अभियुक्त उसकी जान-पहचान के नहीं थे, तब हम इस दलील को स्वीकार कर सकते थे । किंतु अभियुक्त साक्षी के

घर में रहने वाले निकट नातेदार थे, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि राजेश्वरी के लिए सभी अभियुक्तों को पहचानना कठिन था कि उन्होंने राजेश्वरी के भाई पर होन्नली से मरीगोंडानाहल्ली वापस जाते समय 7.30 बजे अपराह्न में हमला किया था ।

22. श्री बी. एच. मरलापल्ले ने यह भी दलील दी है कि मृतक का मृत्युकालिक कथन अभिलिखित न किया जाना वर्तमान मामले में एक महत्वपूर्ण तथ्य है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल की दलील से सहमत होना हमारी समझ से बाहर है क्योंकि अभिलेख पर यह उपलब्ध है कि मृतक उस समय होश में नहीं था जब उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया था । इस प्रकार ऐसी गंभीर अवस्था में रोगी का मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता है ।

23. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने हमारा ध्यान **इरलापति सुब्बाया** बनाम **लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश**[1] वाले मामले की ओर दिलाया है और यह दलील दी है कि ऐसी ही परिस्थितियों में इस न्यायालय ने ऐसा कोई पर्याप्त कारण नहीं देखा है जिसके आधार पर उच्च न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त कर सके । उक्त निर्णय विधि का परिशीलन करने पर, हमारा यह निष्कर्ष है कि यह ऐसा मामला था जिसमें अभियोजन साक्षियों ने दोपहर और सूर्यास्त के ठीक पूर्व के बीच के समय का उल्लेख किया है जोकि भिन्न है । उक्त मामले में घटनास्थल भी संदिग्ध है । किंतु वर्तमान मामले में घटना घटित होने के समय या घटनास्थल दोनों के संबंध में कोई भी संदेह नहीं है ।

24. अपीलार्थियों की ओर से **जोसेफ** बनाम **केरल राज्य**[2] वाला मामला निर्दिष्ट किया गया है और यह दलील दी गई है कि संपुष्टि और सतर्कता के बिना एकमात्र आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के भी साक्ष्य को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए । निर्दिष्ट किए गए निर्णय विधि का परिशीलन करने पर, हमारा यह निष्कर्ष है कि उक्त मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि एकमात्र आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का परिसाक्ष्य विश्वसनीय नहीं था क्योंकि दो प्रथम इत्तिला रिपोर्टों में घटना के दो अलग-अलग वृत्तांत उल्लिखित किए गए थे जिनमें से एक को

---

[1] (1974) 4 एस. सी. सी. 293.

[2] (2003) 1 एस. सी. सी. 465.

दबाया गया था । जिस प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का अवलंब लिया गया था वह संदिग्ध पाई गई क्योंकि स्वयं अभि. सा. 1 अभियोजन पक्ष द्वारा अवलंब ली गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर किए गए अपने हस्ताक्षर की शनाख्त नहीं की । वर्तमान मामले में हमारे मतानुसार राजेश्वरी (अभि. सा. 1) के साक्ष्य की पर्याप्त रूप से निरंजनप्पा (अभि. सा. 16), पर्वतम्मा (अभि. सा. 29) और चनबसप्पा (अभि. सा. 30) के कथनों से संपुष्टि होती है ।

25. अन्ततः, अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने **मुलुवा पुत्र बिन्दा और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले को निर्दिष्ट करते हुए यह दलील दी है कि जब दो मत संभव हों, तब उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । हम विधि के इस सिद्धांत से सहमत हैं कि जब दो मत संभव हों, तब विचारण न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए किंतु वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय द्वारा जो मत व्यक्त किया गया है, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है, अनुचित है और उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा ठीक ही अभिनिर्धारित किया गया है ।

26. ऊपर चर्चा किए गए कारणों के आधार पर, हमें इस अपील में कोई बल दिखाई नहीं देता है और यह खारिज किए जाने योग्य है । तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है ।

27. एम. जी. शिवराज (अपीलार्थी-2) और हेवल्ली शिवप्पा (अपीलार्थी-3) जमानत पर हैं । उनके बंधपत्र रद्द किए जाते हैं और प्रतिभूतियों को उन्मोचित किया जाता है । वे उच्च न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश भोगने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष तत्काल अभ्यर्पण करेंगे ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

---

[1] (1976) 1 एस. सी. सी. 37.

[2017] 3 उम. नि. प. 202

देवेन्द्र नाथ श्रीवास्तव

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

6 अप्रैल, 2017

न्यायमूर्ति एन. वी. रमना और न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 304 भाग 1 – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अपनी पत्नी की मृत्यु कारित किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा मृत्यु दंडादेश दिया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को हत्या के बजाय आपराधिक मानव वध के लिए दोषसिद्ध करते हुए धारा 304 भाग 1 के अधीन दंडादिष्ट किया जाना – अभिलेख के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होने पर कि अभियुक्त-अपीलार्थी शराबी था और दोनों के बीच झगड़ा होने के पश्चात् गुस्से की तीव्रता में उसने ईंट से क्षतियां कारित करके अपनी पत्नी की मानव वध मृत्यु कारित की थी, जो कि योजनाबद्ध कृत्य नहीं था, अतः उच्च न्यायालय द्वारा धारा 304 के भाग 1 के अधीन की गई उसकी दोषसिद्धि और दिए गए दंडादेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

अपीलार्थी देवेन्द्र नाथ श्रीवास्तव का विवाह तारीख 4 मार्च, 1994 को मधु श्रीवास्तव (मृतका) के साथ हुआ था । पति-पत्नी के चार बालक थे । तारीख 12 मई, 2005 को लगभग 7.30 बजे अपराह्न में शिकायतकर्ता शैलेन्द्र कुमार श्रीवास्तव ने, जो अपीलार्थी का भतीजा है, अपीलार्थी के बालकों के रोने की आवाज सुनी और भागकर अपने चाचा (अपीलार्थी) के मकान पर गया, जहां उसने अपीलार्थी को अपनी पत्नी पर ईंट से हमला करते हुए देखा । आस-पड़ोस से अभि. सा. 6 और अन्य व्यक्तियों को आता देखकर अपीलार्थी भाग गया । अभि. सा. 6, शैलेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा एक एम्बुलेंस की व्यवस्था करने के पश्चात् अपीलार्थी की पत्नी (मधु श्रीवास्तव) को जिला अस्पताल ले जाया गया । तथापि, डाक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया । अभि. सा. 6 द्वारा उसी दिन लगभग 9.45 बजे अपराह्न में पुलिस थाना कोतवाली शहर, गोंडा में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श ए-9) दर्ज कराई गई । उक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर 2005 का अपराध सं. 169 रजिस्ट्रीकृत किया गया । अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया और उसके बताने पर अपराध करने में प्रयुक्त की गई

ईंट की बरामदगी की गई । पुलिस द्वारा अपीलार्थी की रक्त-रंजित कमीज और पतलून भी कब्जे में ली गईं । अन्वेषण पूर्ण होने के पश्चात् अपीलार्थी के विचारण के लिए उसके विरुद्ध एक आरोपपत्र प्रस्तुत किया गया । विचारण न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् यह पाया कि अभियुक्त के विरुद्ध धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध की बाबत आरोप साबित होता है और तद्नुसार उसे दोषसिद्ध किया । दंडादेश पर भी पक्षकारों को सुना गया और विचारण न्यायालय ने सिद्धदोष व्यक्ति को तारीख 18 जनवरी, 2007 के निर्णय और आदेश द्वारा मृत्यु दंडादेश दिया और दंडादेश की अभिपुष्टि के लिए अभिलेख उच्च न्यायालय को प्रस्तुत किया । विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर सिद्धदोष व्यक्ति ने उच्च न्यायालय में अपील (2007 की दांडिक अपील सं. 201) फाइल की । उसने फिर कारागार से एक अन्य अपील (2007 की दांडिक अपील सं. 237) प्रस्तुत की । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि घटना मृतका और अभियुक्त, जिसने शराब पी हुई थी, के बीच हुए झगड़े के पश्चात् घटित हुई थी और अपीलार्थी द्वारा मानव वध कारित किया गया है और यह कृत्य भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग-1 के अंतर्गत आता है, न कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन । तद्नुसार, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अभिलिखित की गई दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त कर दिया और अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 के अधीन दोषसिद्धि की और उसे दस वर्ष का कठोर कारावास भोगने तथा 10,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर छह मास का और कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया । सिद्धदोष देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव और विपदग्रस्त की बहिन प्रीति श्रीवास्तव ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को चुनौती देते हुए अलग-अलग विशेष इजाजत याचिकाओं के माध्यम से उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल कीं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – संपूर्ण साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की दलीलों पर विचार करने के पश्चात्, यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण से सहमत है कि अभिलेख पर साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि अपीलार्थी ने अपनी पत्नी की, दोनों के बीच झगड़ा होने के पश्चात्, मानव वध मृत्यु कारित की थी । अभिलेख से यह सिद्ध होता है कि अपीलार्थी एक शराबी था । प्रथम

इत्तिला रिपोर्ट घटना के ठीक पश्चात् किसी और ने नहीं अपितु अपीलार्थी के अपने भतीजे ने दर्ज कराई थी । अपीलार्थी द्वारा ऐसा कोई वृत्तांत नहीं दिया गया कि उसकी पत्नी की उसके घर में कैसे मानव वध मृत्यु हुई । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने गुस्से की तीव्रता में कृत्य किया था । किसी का भी यह पक्षकथन नहीं है कि अपीलार्थी की कोई रखैल थी । बल्कि अभि. सा. 5 प्रीति श्रीवास्तव के कथन से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन का वाद समझौते के निबंधनों के अनुसार विनिश्चित किया गया था और वे अपने बालकों सहित एक साथ रहने लगे थे । अपीलार्थी द्वारा किए गए कृत्य से क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध का गठन होता है या भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 के अधीन दंडनीय अपराध का, इस न्यायालय का यह मत है कि घटना अपीलार्थी और मृतका के बीच झगड़ा होने के पश्चात् घटी थी, जो कि योजनाबद्ध कृत्य नहीं है । यह भी सिद्ध होता है कि अपीलार्थी शराबी था । इस न्यायालय की राय में, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण में कि अपीलार्थी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 के अधीन दंडनीय अपराध किया है, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । (पैरा 17 और 18)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[1977]	[1977] 3 उम. नि. प. 1104 = (1976) 4 एस. सी. सी. 382 : **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **रायवरपू पुन्नय्या और एक अन्य** ।	19, 20

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 87 और इसके साथ 2008 की दांडिक अपील सं. 88-90.

2007 के मृत्यु दंडादेश सं. 2 और इससे संबद्ध 2007 की दांडिक अपील सं. 201 तथा 237 (कारागार से) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 24 अगस्त, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री के. के. त्यागी, इफ्तिखार

अहमद, अनूप कुमार, संजीव के. रे (पी. नरसिम्हन की ओर से), मनोज स्वरूप, (सुश्री) ललिता कोहली और अभिषेक स्वरूप (मैसर्स मनोज स्वरूप एंड कं. की ओर से)

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री सी. डी. सिंह, (सुश्री) साक्षी कक्कड़ और विकास बंसल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत ने दिया ।

न्या. पंत – ये अपीलें 2007 की दांडिक अपील सं. 201 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय, लखनऊ न्यायपीठ द्वारा तारीख 24 अगस्त, 2007 को पारित किए गए उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं, जिसके द्वारा उक्त न्यायालय ने 2005 के सेशन विचारण सं. 258 में अपर सेशन न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (आवश्यक वस्तु अधिनियम) गोंडा द्वारा तारीख 18 जनवरी, 2007 के निर्णय और आदेश से उद्भूत होने वाली अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई दांडिक अपीलों के साथ-साथ अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि से संबंधित 2007 के मृत्यु दंड निर्देश सं. 2 का निपटारा किया है । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए आक्षेपित आदेश द्वारा अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि को अपास्त किया गया है और इसके बजाय उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और दस वर्ष के कठोर कारावास तथा 10,000/- रुपए के जुर्माने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर छह मास का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है ।

2. संक्षेप में, अभियोजन का वृत्तांत यह है कि अपीलार्थी देवेन्द्र नाथ श्रीवास्तव का विवाह तारीख 4 मार्च, 1994 को मधु श्रीवास्तव (मृतका) के साथ हुआ था । पति-पत्नी के चार बालक थे । तारीख 12 मई, 2005 को लगभग 7.30 बजे अपराह्न में शिकायतकर्ता शैलेन्द्र कुमार श्रीवास्तव ने, जो अपीलार्थी का भतीजा है, अपीलार्थी के बालकों के रोने की आवाज सुनी और भागकर अपने चाचा (अपीलार्थी) के मकान पर गया, जहां उसने अपीलार्थी को अपनी पत्नी पर ईंट से हमला करते हुए देखा । आस-पड़ोस से अभि. सा. 6 और अन्य व्यक्तियों को आता देखकर अपीलार्थी भाग गया । अभि. सा. 6, शैलेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा एक एम्बुलेंस की व्यवस्था करने

के पश्चात् अपीलार्थी की पत्नी (मधु श्रीवास्तव) को जिला अस्पताल ले जाया गया । तथापि, डाक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया ।

3. अभि. सा. 6 द्वारा उसी दिन लगभग 9.45 बजे अपराह्न में पुलिस थाना कोतवाली शहर, गोंडा में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श ए-9) दर्ज कराई गई । उक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर 2005 का अपराध सं. 169 रजिस्ट्रीकृत किया गया । अन्वेषक अधिकारी शिकायतकर्ता से परिप्रश्न करने के पश्चात् घटनास्थल पर गया और मृतका के शव को मुहरबंद किया तथा मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श ए-1) तैयार की । अभि. सा. 7, डा. राजकुमार ने तारीख 13 मई, 2005 को शव-परीक्षा की और यह राय व्यक्त की कि मृतका की मृत्यु, मृत्यु-पूर्व की क्षतियों के कारण श्वासावरोध से हुई थी । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श ए-10) में कुल मिलाकर नौ मृत्यु-पूर्व की क्षतियां अभिलिखित की गईं । इसी बीच, अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया और उसके बताने पर अपराध करने में प्रयुक्त की गई ईंट की बरामदगी की गई । पुलिस द्वारा अपीलार्थी की रक्त-रंजित कमीज और पतलून भी कब्जे में ली गईं, जिनकी बाबत मेमो (प्रदर्श ए-13) तैयार किया गया । अन्वेषण पूर्ण होने के पश्चात् अन्वेषक अधिकारी, राजेन्द्र प्रसाद सिंह (अभि. सा. 8) द्वारा अपीलार्थी के विचारण के लिए उसके विरुद्ध एक आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया ।

4. यह प्रतीत होता है कि मामला विचारण के लिए सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया गया । विद्वान् सेशन न्यायाधीश, गोंडा ने तारीख 10 अगस्त, 2005 को अपीलार्थी-अभियुक्त देवेन्द्र नाथ श्रीवास्तव के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के बारे में आरोप विरचित किया, जिसके लिए अभियुक्त ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया । इस पर, अभियोजन पक्ष ने अभि. सा. 1 विजय कुमार चौरसिया, अभि. सा. 2 रामफेर जायसवाल, अभि. सा. 3 साधना श्रीवास्तव, अभि. सा. 4 विरेन्द्र सिंह, अभि. सा. 5 प्रीति श्रीवास्तव, अभि. सा. 6 शैलेन्द्र कुमार श्रीवास्तव (इत्तिलाकर्ता), अभि. सा. 7 डा. राजकुमार और अभि. सा. 8 भारसाधक निरीक्षक राजेन्द्र प्रसाद सिंह (अन्वेषक अधिकारी) की परीक्षा की ।

5. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त के समक्ष अभियोजन का साक्ष्य रखा गया, उसके उत्तर में उसने यह अभिवाक् किया कि घटना के समय वह अपनी माता को ओषधियां देने के लिए अपने पैतृक गांव गया हुआ था । उसके पश्चात्, प्रति. सा. 1 श्याम रंग और

प्रति. सा. 2 चन्द्रमुखी की परीक्षा की गई । विचारण न्यायालय ने अपनी प्रज्ञा से मृतका के ज्येष्ठ पुत्र आदेश कुमार श्रीवास्तव को, जो अप्राप्तवय था, न्यायालय साक्षी (न्या. सा. 1) के रूप में समन किया । तारीख 16 नवंबर, 2006 को उसका कथन अभिलिखित किया गया । उसके पश्चात्, इस अतिरिक्त साक्ष्य को भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त के समक्ष रखा गया ।

6. विचारण न्यायालय ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् यह पाया कि अभियुक्त के विरुद्ध धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध की बाबत आरोप साबित होता है और तद्नुसार उसे दोषसिद्ध किया । दंडादेश पर भी पक्षकारों को सुना गया और विचारण न्यायालय ने सिद्धदोष व्यक्ति को तारीख 18 जनवरी, 2007 के निर्णय और आदेश द्वारा मृत्यु दंडादेश दिया और दंडादेश की अभिपुष्टि के लिए अभिलेख उच्च न्यायालय को प्रस्तुत किया ।

7. विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर सिद्धदोष व्यक्ति ने उच्च न्यायालय में अपील (2007 की दांडिक अपील सं. 201) फाइल की । उसने फिर कारागार से एक अन्य अपील (2007 की दांडिक अपील सं. 237) प्रस्तुत की । इन दोनों अपीलों को सेशन न्यायालय द्वारा किए गए निर्देश के साथ संयोजित किया गया और उच्च न्यायालय द्वारा इनका तारीख 24 अगस्त, 2007 के उस सामान्य निर्णय और आदेश द्वारा एक साथ निपटारा किया गया, जो हमारे समक्ष आक्षेपित है । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि घटना मृतका और अभियुक्त, जिसने शराब पी हुई थी, के बीच हुए झगड़े के पश्चात् घटित हुई थी और अपीलार्थी द्वारा मानव वध कारित किया गया है और यह कृत्य भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग 1 के अंतर्गत आता है, न कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन । तद्नुसार, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अभिलिखित की गई दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त कर दिया और अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 के अधीन दोषसिद्धि की और उसे दस वर्ष का कठोर कारावास भोगने तथा 10,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर छह मास का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया ।

8. सिद्धदोष देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव और विपदग्रस्त की बहिन प्रीति

श्रीवास्तव ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश को चुनौती देते हुए अलग-अलग विशेष इजाजत याचिकाओं के माध्यम से इस न्यायालय में समावेदन किया । 2008 की दांडिक अपील सं. 87 सिद्धदोष व्यक्ति द्वारा फाइल की गई विशेष इजाजत याचिका से उद्भूत हुई है और 2008 की दांडिक अपील सं. 88-90 मृतका की बहिन प्रीति श्रीवास्तव द्वारा फाइल की गई विशेष इजाजत याचिकाओं से उद्भूत हुई हैं ।

9. हमने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को विस्तार पूर्वक सुना और मामले के अभिलेख का परिशीलन किया ।

10. आगे चर्चा से पूर्व, हम अभि. सा. 7, डा. राजकुमार द्वारा शव-परीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श ए-10) में अभिलिखित की गई मृत्यु-पूर्व की क्षतियों का उल्लेख करना न्यायसंगत और उचित समझते हैं । इन्हें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"(1) बाएं कान के पीछे 5 सें. मी. × 4 सें. मी. × हड्डी की गहराई तक विदीर्ण घाव । घाव में थक्केदार रक्त दिखाई दिया ।

(2) चेहरे के बाईं ओर 10 सें. मी. × 8 सें. मी. के क्षेत्र में बहु लालिमायुक्त नील ।

(3) बाएं जबड़े के ठीक नीचे और ठुड्डी से 2.5 सें. मी. बाएं × 3 सें. मी. × 1 सें. मी. × हड्डी की गहराई तक विदीर्ण घाव । घाव में थक्केदार रक्त दिखाई दिया ।

(4) ठुड्डी पर 4 सें. मी. × 3 सें. मी. के क्षेत्र में लाल नील से घिरा हुआ 1.5 सें. मी. × 0.5 सें. मी. × हड्डी की गहराई तक विदीर्ण घाव ।

(5) माथे पर दाईं तरफ दाईं भौंह से सटा 2 सें. मी. × 1 सें. मी. × मांसपेशी की गहराई तक विदीर्ण घाव । घाव में रक्त के थक्के दिखाई दिए ।

(6) बाएं कान से 7 सें. मी. नीचे गर्दन पर बाईं तरफ 6 सें. मी. × 1 सें. मी. × मांसपेशी की गहराई तक छिन्न घाव ।

(7) गर्दन पर सामने श्वासनली के आर-पार 5 सें. मी. × 3 सें. मी. का लाल नील ।

(8) दाईं हंसुली की हड्डी के साथ 13 सें. मी. × 5 सें. मी. के

क्षेत्र में खरोंच सहित लाल नील ।

(9) दाएं कंधे के जोड़ के ऊपरी सिरे पर 3 सें. मी. × 2 सें. मी. का खरोंच सहित लाल नील ।"

अभि. सा. 7, डा. राजकुमार ने यह कथन किया है कि आंतरिक परीक्षण करने पर ऊपरी और निचले दोनों जबड़ों की हड्डियां टूटी हुई पाई गईं और ऊपर और नीचे के दांतों के कुछ भाग भी टूटे हुए पाए गए थे । इस साक्षी ने कंठिका अस्थिभंग और दोनों फेफड़े अवरुद्ध पाए । ये मताभिव्यक्तियां शव-परीक्षा रिपोर्ट में भी की गई है । उक्त चिकित्सा अधिकारी द्वारा यह राय व्यक्त की गई है कि मधु श्रीवास्तव (मृतका) की मृत्यु गला घोंटने के साथ-साथ ऊपर वर्णित मृत्यु-पूर्व की क्षतियों से हुई थी ।

11. ऊपर चर्चा किए गए चिकित्सीय साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि मधु श्रीवास्तव (अपीलार्थी की पत्नी) की मृत्यु मानव वध मृत्यु से हुई है । अब हमें यह परीक्षा करनी है कि क्या अपीलार्थी ने अपनी पत्नी की मृत्यु कारित की थी, जैसाकि अभियोजन पक्ष द्वारा सुझाव दिया गया है, या नहीं ।

12. अभिलेख पर के साक्ष्य का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट है कि अभि. सा. 1 विजय कुमार चौरसिया, अभि. सा. 2, रामफेर जायसवाल, अभि. सा. 3 साधना श्रीवास्तव, अभि. सा. 4 विरेन्द्र सिंह और अभि. सा. 6 शैलेन्द्र कुमार श्रीवास्तव अभियोजन पक्ष से पक्षद्रोही हो गए थे, किंतु उनके साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने पर अभियोजन के वृत्तांत में सच्चाई की झलक पता लगाने में कोई कठिनाई है । अभि. सा. 1, विजय कुमार चौरसिया ने अपनी मुख्य परीक्षा में यद्यपि यह कथन किया कि घटना से पूर्व उसकी अपीलार्थी से कोई जान-पहचान नहीं थी, किंतु उसने प्रतिपरीक्षा में मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श ए-1) को यह कथन करते हुए साबित किया कि उसने मृत्यु समीक्षा की कार्यवाहियां देखी थीं । अभि. सा. 2, रामफेर जायसवाल ने अपनी मुख्य परीक्षा में घटना के समय अपनी मौजूदगी की बात से इनकार किया, किंतु प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने यह साबित किया कि अपराध में अभिकथित रूप से प्रयुक्त ईंट अभियुक्त देवेन्द्र नाथ श्रीवास्तव के बताने पर बरामद की गई थी । उसने बरामदगी मेमो पर अपने हस्ताक्षरों को भी साबित किया । अभि. सा. 6 शैलेन्द्र कुमार श्रीवास्तव ने यह कथन किया कि वह मृतका और अभियुक्त का भतीजा है, किंतु वह यह नहीं जानता कि उसकी चाची (मधु श्रीवास्तव) की मृत्यु कैसे हुई । इस साक्षी ने यह भी कथन किया कि अभियुक्त और मृतका के

तनावग्रस्त संबंध थे । उसने प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया कि उसने तारीख 12 मई, 2005 को घटना के ठीक पश्चात् पुलिस को लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श ए-26) दी थी । उसने यह भी कथन किया कि वह मधु श्रीवास्तव को (क्षतिग्रस्त हालत में) लगभग 8.50 बजे अपराह्न में अस्पताल ले गया था, जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया ।

13. अभि. सा. 5 प्रीति श्रीवास्तव, मृतका की बहिन ने यह कथन किया कि मृतका का विवाह अपीलार्थी देवेन्द्र नाथ श्रीवास्तव के साथ हुआ था । उसने यह भी कथन किया कि अपीलार्थी खादी ग्रामोद्योग बोर्ड में फील्ड निरीक्षक था । इस साक्षी ने यह भी प्रकट किया कि वह अपीलार्थी और उसके परिवार के मकान से लगभग 1-1.5 किलोमीटर की दूरी पर रहती है । उसने आगे यह बताया कि मृतका और अपीलार्थी के विवाह-बंधन से चार बालक पैदा हुए थे । उसने यह भी कथन किया कि अपीलार्थी शराब पीकर मृतका को यातना देता था । इस साक्षी ने मृतका द्वारा अपने पिता को अपीलार्थी द्वारा उसके साथ किए गए दुर्व्यवहार के बारे में शिकायत करते हुए लिखे गए पत्रों प्रदर्श ए-2, ए-3, ए-4 और ए-5 को साबित किया है । इन सभी पत्रों में, मृतका द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से यह वर्णन किया गया है कि अपीलार्थी एक शराबी है और शराब पीने के पश्चात् उसके साथ मारपीट करता है । अभि. सा. 5 प्रीति श्रीवास्तव ने आगे यह कथन किया कि मृतका और अपीलार्थी के बीच मुकदमेबाजी हुई थी किंतु वर्ष 2003 में पक्षकारों के बीच समझौता (प्रदर्श ए-8) होने से यह मुकदमेबाजी खत्म हो गई थी ।

14. अन्वेषक अधिकारी, अभि. सा. 8 निरीक्षक राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने यह कथन किया है कि परिप्रश्न करने के दौरान उसने अभियुक्त के बताने पर ईंट (प्रदर्श-1) बरामद की थी । इस साक्षी ने यह भी कथन किया कि अभियुक्त की रक्त-रंजित पतलून और कमीज कब्जे में लिए गए और मेमो (प्रदर्श ए-13) तैयार किया गया तथा अन्य रक्त-रंजित वस्तुओं के साथ, जिनमें घटनास्थल से एकत्रित किया गया रक्त-रंजित फर्श का टुकड़ा और मृतका के वस्त्र (प्रदर्श 2, 3 और 4) भी हैं, रासायनिक विश्लेषण के लिए भेजे गए । न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की तारीख 14 अक्तूबर, 2005 की रिपोर्ट (प्रदर्श ए-27) से यह दर्शित होता है कि अभियुक्त के रक्तरंजित वस्त्रों पर मानव रक्त लगा हुआ था । रिपोर्ट से यह भी प्रकट होता है कि सीमेंट के फर्श के टुकड़े और मृतका के वस्त्रों पर भी मानव रक्त पाया गया था ।

15. अपीलार्थी और मृतका के आठ वर्षीय ज्येष्ठ पुत्र, न्या. सा. 1 आदेश कुमार श्रीवास्तव के कथन से अभियोजन का समर्थन नहीं होता है, किंतु यह बात आसानी से समझी जा सकती है कि वह अपनी माता को खो देने के पश्चात् वह अपने पिता को नहीं खोना चाहता था । एक प्रक्रम पर उसने यह कहा कि उसकी माता ईंट पर गिर गई थी, और फिर यह बताया कि वह सीढ़ियों से गिर गई थी । अंत में, उसने यह कहा कि घटना के समय वह घर की चारदिवारी पर खेल रहा था ।

16. यद्यपि, प्रतिरक्षा साक्षियों प्रति. सा. 1 श्याम रंग और प्रति. सा. 2 चन्द्रमुखी ने यह कहने का प्रयत्न किया कि देवेन्द्र नाथ श्रीवास्तव (अपीलार्थी) घटना के दिन अपनी माता को ओषधियां देने के लिए गांव गया था, किंतु अभिलेख पर इस बात की संपुष्टि करने के लिए कुछ नहीं है कि अपीलार्थी द्वारा किसी ओषध विक्रेता से कोई ओषध खरीदी हो । यह भी स्पष्ट नहीं है कि उसकी माता को क्या रोग था और वह कब से अस्वस्थ्य थी । हमारी राय में, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने इन दोनों साक्षियों को ठीक ही अविश्वसनीय ठहराया गया ।

17. संपूर्ण साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की दलीलों पर विचार करने के पश्चात्, हम उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण से सहमत हैं कि अभिलेख पर साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि अपीलार्थी ने अपनी पत्नी की, दोनों के बीच झगड़ा होने के पश्चात्, मानव वध मृत्यु कारित की थी । अभिलेख से यह सिद्ध होता है कि अपीलार्थी एक शराबी था । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट घटना के ठीक पश्चात् किसी और ने नहीं अपितु अपीलार्थी के अपने भतीजे ने दर्ज कराई थी । अपीलार्थी द्वारा ऐसा कोई वृत्तांत नहीं दिया गया कि उसकी पत्नी की उसके घर में कैसे मानव वध मृत्यु हुई । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने गुस्से की तीव्रता में कृत्य किया था । किसी का भी यह पक्षकथन नहीं है कि अपीलार्थी की कोई रखैल थी । बल्कि अभि. सा. 5 प्रीति श्रीवास्तव के कथन से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन का वाद समझौते के निबंधनों के अनुसार विनिश्चित किया गया था और वे अपने बालकों सहित एक साथ रहने लगे थे ।

18. अपीलार्थी द्वारा किए गए कृत्य से क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध का गठन होता है या भारतीय दंड

संहिता की धारा 304 भाग 1 के अधीन दंडनीय अपराध का, हमारा यह मत है कि घटना अपीलार्थी और मृतका के बीच झगड़ा होने के पश्चात् घटी थी, जो कि योजनाबद्ध कृत्य नहीं है । यह भी सिद्ध होता है कि अपीलार्थी शराबी था । हमारी राय में, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण में कि अपीलार्थी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 के अधीन दंडनीय अपराध किया है, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

19. **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **रायवरपू पुन्नय्या और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने आपराधिक मानव वध संबंधी दंड संहिता की स्कीम को स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित विधि अधिकथित की है :–

> "दंड संहिता की स्कीम में आपराधिक मानव वध मुख्य अपराध है और हत्या उसका एक प्रकार है । सब 'हत्याएं' आपराधिक मानव वध होती हैं किंतु सब आपराधिक मानव वध हत्या नहीं होते । मोटे तौर पर आपराधिक मानव वध में से हत्या के कुछ विशेष लक्षणों को छोड़ देने पर वह हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध होता है । दंड नियत करने के प्रयोजनार्थ इस सामान्य अपराध की गंभीरता के अनुपात के अनुसार संहिता में वस्तुतः, आपराधिक मानव वध की तीन कोटियां मानी गई हैं । प्रथम वह जिसे कि प्रथम कोटि का मानव वध कहा जा सकता है । यह आपराधिक मानव वध का अत्यधिक गंभीर रूप है जो कि धारा 300 में 'हत्या' के रूप में परिभाषित है । दूसरे को 'द्वितीय कोटि का आपराधिक मानव वध' कहा जा सकता है जो कि धारा 304 के प्रथम भाग के अधीन दंडनीय है । इसके पश्चात् तीसरी कोटि का मानव वध है । वह आपराधिक मानव वध सबसे निम्न प्रकार का है और इसके लिए उपबंधित दंड भी तीनों कोटियों के लिए उपबंधित दंडों में सबसे कम है । इस कोटि का आपराधिक मानव वध धारा 304 के द्वितीय भाग के अधीन दंडनीय है ।"

20. इसी मामले के अर्थात् **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **रायवरपू पुन्नय्या और एक अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने आगे यह भी मत व्यक्त किया है :–

---

[1] [1977] 3 उम. नि. प. 1104 = (1976) 4 एस. सी. सी. 382.

"....... जब कभी किसी न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करना होता है कि क्या कोई अपराध मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए 'हत्या' है या 'हत्या' की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध तो उसके लिए इस समस्या पर तीन प्रक्रमों पर विचार करना सुविधाजनक होगा । प्रथम प्रक्रम पर विचारित किए जाने वाला प्रश्न यह होगा कि क्या अभियुक्त ने कोई ऐसा कार्य किया है जिसके द्वारा उसने किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु कारित कर दी है । अभियुक्त के कार्य और मृत्यु के बीच ऐसे आकस्मिक संबंध का सबूत इस बात पर विचार करने के लिए द्वितीय प्रक्रम की ओर ले जाता है कि क्या अभियुक्त का वह कार्य धारा 299 में यथा परिभाषित आपराधिक मानव वध की कोटि में आता है । यदि इस प्रश्न का उत्तर प्रथमदृष्ट्या सकारात्मक पाया जाता है तो दंड संहिता की धारा 300 के प्रवर्तन पर विचार करने का प्रक्रम आ जाता है । इस प्रक्रम पर न्यायालय को इस बात का अवधारण करना चाहिए कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा साबित तथ्य मामले को धारा 300 में अंतर्विष्ट हत्या की परिभाषा के चार खंडों में से किसी एक की व्याप्ति के अंतर्गत ले आते हैं । यदि इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक हो तो वह अपराध हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध होगा जो कि इस बात पर निर्भर करते हुए कि क्या क्रमशः धारा 299 का खंड (2) या खंड (3) लागू होता है, धारा 304 के प्रथम या द्वितीय भाग के अधीन दंडनीय होगा यदि यह प्रश्न सकारात्मक पाया जाता है किंतु मामला धारा 300 में प्रगणित अपवादों में किसी के अधीन आ जाता है तो अपराध तब भी हत्या की कोटि में न आने वाला मानव वध होगा जो कि दंड संहिता की धारा 304 के प्रथम भाग के अधीन दंडनीय होगा ।"

21. तथ्यों और विधि की उपरोक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए, हम उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध अभिलिखित दोषसिद्धि और दंडादेश से सहमत हैं । इसलिए ये अपीलें खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

जस.

संसद् के अधिनियम

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971

(1971 का अधिनियम संख्यांक 70)

[24 दिसम्बर, 1971]

न्यायालयों के अवमान के लिए दंडित करने के बारे में कुछ न्यायालयों की शक्तियों को परिनिश्चित और परिसीमित करने के लिए और उस सम्बन्ध में उनकी प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के बाईसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में अधिनियमित हो :—

1. **संक्षिप्त नाम और विस्तार** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 है ।

(2) इसका विस्तार सम्पूर्ण भारत पर है :

परन्तु यह जम्मू-कश्मीर राज्य को वहां तक के सिवाय लागू नहीं होगा जहां तक इस अधिनियम के उपबंधों का सम्बन्ध उच्चतम न्यायालय के अवमान से है ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "न्यायालय अवमान" से सिविल अवमान अथवा आपराधिक अवमान अभिप्रेत है ;

(ख) "सिविल अवमान" से किसी न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री, निदेश, आदेश, रिट या अन्य आदेशिका की जानबूझकर अवज्ञा करना अथवा न्यायालय से किए गए किसी वचनबन्ध को जानबूझकर भंग करना, अभिप्रेत है ;

(ग) "आपराधिक अवमान" से किसी भी ऐसी बात का (चाहे बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा, या संकेतों द्वारा या दृश्य रूपणों द्वारा या अन्यथा) प्रकाशन अथवा किसी भी अन्य ऐसे कार्य का करना अभिप्रेत है –

(i) जो किसी न्यायालय को कलंकित करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसे कलंकित करने की है अथवा जो उसके प्राधिकार को, अवनत करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसे अवनत करने की है ; अथवा

(ii) जो किसी न्यायिक कार्यवाही के सम्यक् अनुक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, या उसमें हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है ; अथवा

(iii) जो न्याय प्रशासन में किसी अन्य रीति से हस्तक्षेप करता है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालता है या जिसकी प्रवृत्ति उनमें बाधा डालने की है ;

(घ) "उच्च न्यायालय" से किसी राज्य अथवा संघ राज्यक्षेत्र के लिए उच्च न्यायालय अभिप्रेत है और किसी संघ राज्यक्षेत्र में न्यायिक आयुक्त का न्यायालय इसके अन्तर्गत है ।

3. **किसी बात के निर्दोष प्रकाशन और वितरण का अवमान न होना** – (1) कोई व्यक्ति इस आधार पर कि उसने किसी ऐसी बात को (चाहे बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या दृश्य रूपणों द्वारा या अन्यथा) प्रकाशित किया है जो प्रकाशन के समय लम्बित किसी सिविल या दाण्डिक कार्यवाही के सम्बन्ध में न्याय के अनुक्रम में हस्तक्षेप करती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें हस्तक्षेप करने की है अथवा जो उसमें बाधा डालती है या जिसकी प्रवृत्ति उसमें बाधा डालने की है, उस दशा में न्यायालय अवमान का दोषी नहीं होगा जिसमें उस समय उसके पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे कि वह कार्यवाही लम्बित थी ।

(2) इस अधिनियम में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, किसी ऐसी सिविल या दाण्डिक कार्यवाही के संबंध में, जो प्रकाशन के समय लम्बित नहीं है, किसी ऐसी बात के प्रकाशन के बारे में, जो उपधारा (1) में वर्णित है, यह नहीं समझा जाएगा कि उससे न्यायालय अवमान होता है ।

(3) कोई भी व्यक्ति इस आधार पर कि उसने ऐसा कोई प्रकाशन वितरित किया है जिसमें कोई ऐसी बात अन्तर्विष्ट है जो उपधारा (1) में वर्णित है, उस दशा में न्यायालय अवमान का दोषी नहीं होगा जिसमें वितरण के समय उसके पास यह विश्वास करने के समुचित आधार नहीं थे

कि उसमें यथापूर्वोक्त कोई बात अन्तर्विष्ट थी या उसके अन्तर्विष्ट होने की सम्भावना थी :

परन्तु यह उपधारा निम्नलिखित के विवरण के बारे में लागू न होगी –

(i) कोई ऐसा प्रकाशन जो प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1867 (1867 का 25) की धारा 3 में अन्तर्विष्ट नियमों के अनुरूप मुद्रित या प्रकाशित न होते हुए अन्यथा मुद्रित या प्रकाशित पुस्तक या कागजपत्र है ;

(ii) कोई ऐसा प्रकाशन जो उक्त अधिनियम की धारा 5 में अन्तर्विष्ट नियमों के अनुरूप प्रकाशित न होते हुए अन्यथा प्रकाशित समाचारपत्र है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए कोई न्यायिक कार्यवाही –

(क) निम्नलिखित दशाओं में लम्बित कही जाती है –

(क) सिविल कार्यवाही के मामले में जब वह वादपत्र फाइल करके या अन्यथा संस्थित की जाती है,

(ख) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898(1898 का 5) या किसी अन्य विधि के अधीन किसी दाण्डिक कार्यवाही के मामले में –

(i) जहां वह किसी अपराध के किए जाने से संबंधित है वहां जब आरोप-पत्र या चालान फाइल किया जाता है अथवा जब अपराधी के विरुद्ध न्यायालय, यथास्थिति, समन या वारंट निकालता है, और

(ii) किसी अन्य मामले में जब न्यायालय उस विषय का संज्ञान करता है जिससे कार्यवाही संबंधित है ; और

किसी सिविल या दाण्डिक कार्यवाही के मामले में तब तक लम्बित बनी रही समझी जाएगी जब तक वह सुन नहीं ली जाती और अन्तिम रूप से विनिश्चित नहीं कर दी जाती, अर्थात् उस मामले में जहां अपील या पुनरीक्षण हो सकता है, जब तक अपील या पुनरीक्षण को सुन नहीं लिया जाता और अन्तिम रूप से विनिश्चित नहीं कर दिया जाता, या जहां अपील या पुनरीक्षण न किया जाए वहां जब तक उस परिसीमा-काल का अवसान नहीं हो जाता जो ऐसी अपील या पुनरीक्षण के लिए विहित है ;

(ख) जिसे सुन लिया गया है और अन्तिम रूप से विनिश्चित कर दिया गया है, केवल इस बात के ही कारण लम्बित नहीं समझी जाएगी कि उसमें पारित डिक्री, आदेश या दण्डादेश के निष्पादन की कार्यवाही लम्बित है ।

4. **न्यायिक कार्यवाही की उचित और सही रिपोर्ट का अवमान न होना** – धारा 7 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए, कोई भी व्यक्ति किसी न्यायिक कार्यवाही या उसके किसी प्रक्रम की उचित और सही रिपोर्ट प्रकाशित करने से न्यायालय अवमान का दोषी न होगा ।

5. **न्यायिक कार्य की उचित आलोचना का अवमान न होना** – कोई भी व्यक्ति किसी मामले के, जिसे सुन लिया गया है और अन्तिम रूप से विनिश्चित कर दिया गया है, गुणागुण पर उचित टीका-टिप्पणी प्रकाशित करने से न्यायालय अवमान का दोषी न होगा ।

6. **अधीनस्थ न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों के विरुद्ध परिवाद का कब अवमान न होना** – कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे कथन के बारे में जो उसने किसी अधीनस्थ न्यायालय के पीठासीन अधिकारी की बाबत –

(क) किसी अन्य अधीनस्थ न्यायालय से, या

(ख) उच्च न्यायालय से,

जिसके अधीनस्थ वह न्यायालय है, सद्भावपूर्वक किया हो, न्यायालय अवमान का दोषी न होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "अधीनस्थ न्यायालय" से किसी उच्च न्यायालय के अधीनस्थ कोई न्यायालय अभिप्रेत है ।

7. **चैम्बर में या बन्द कमरे में कार्यवाहियों के संबंध में जानकारी के प्रकाशन का कुछ दशाओं के सिवाय अवमान न होना** – (1) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी कोई व्यक्ति चैम्बर में या बन्द कमरे में बैठे हुए न्यायालय के समक्ष किसी न्यायिक कार्यवाही की उचित और सही रिपोर्ट प्रकाशित करने से, निम्नलिखित दशाओं के सिवाय, न्यायालय अवमान का दोषी न होगा, अर्थात् –

(क) जब प्रकाशन तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति के उपबन्धों के प्रतिकूल है ;

(ख) जब न्यायालय, लोक नीति के आधारों पर या अपने में

निहित किसी शक्ति का प्रयोग करते हुए उस कार्यवाही से सम्बद्ध सभी जानकारी का या उस वर्णन की जानकारी का, जो प्रकाशित की जाती है, प्रकाशन स्पष्टतः प्रतिषिद्ध कर देता है ;

(ग) जब न्यायालय लोक व्यवस्था अथवा राज्य की सुरक्षा से सम्बन्धित कारणों से चैम्बर में या बन्द कमरे में बैठता है तब उस कार्यवाही से सम्बद्ध जानकारी का प्रकाशन ;

(घ) जब जानकारी किसी ऐसी गुप्त प्रक्रिया, खोज या आविष्कार के सम्बन्ध में है जो कार्यवाही में विवाद्यक है ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कोई भी व्यक्ति चैम्बर में या बन्द कमरे में बैठे हुए न्यायालय द्वारा दिए गए सम्पूर्ण आदेश या उसके किसी भाग का मूल पाठ या उचित और सही सारांश प्रकाशित करने से न्यायालय अवमान का दोषी न होगा जब तक कि न्यायालय ने लोक नीति के आधारों पर, या लोक व्यवस्था अथवा राज्य की सुरक्षा से संबद्ध कारणों से, या इस आधार पर कि उसमें गुप्त प्रक्रिया, खोज या आविष्कार से संबंधित जानकारी अन्तर्विष्ट है, या अपने में निहित किसी शक्ति का प्रयोग करते हुए, उसका प्रकाशन स्पष्टतः प्रतिषिद्ध नहीं कर दिया है ।

8. **अन्य प्रतिवादों पर कोई प्रभाव न होना** – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी भी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि उसमें यह विवक्षित है कि कोई अन्य ऐसा प्रतिवाद जो न्यायालय अवमान की किन्हीं कार्यवाहियों में विधिमान्य प्रतिवाद होता, केवल इस अधिनियम के उपबन्धों के कारण ही उपलभ्य नहीं रहा है ।

9. **अधिनियम द्वारा, अवमान की परिधि का बढ़ाना, विवक्षित न होना** – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी भी बात का यह अर्थ न लगाया जाएगा कि उसमें यह विवक्षित है कि कोई ऐसी अवज्ञा या ऐसा भंग, प्रकाशन या अन्य कार्य जो इस अधिनियम से अन्यथा न्यायालय अवमान के रूप में दण्डनीय न होता ऐसे दण्डनीय है ।

10. **अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के लिए दण्डित करने की उच्च न्यायालय की शक्ति** – प्रत्येक उच्च न्यायालय को अपने अधीनस्थ न्यायालयों के अवमान के बारे में वही अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार प्राप्त होंगे और वह उसी प्रक्रिया और पद्धति के अनुसार उनका प्रयोग करेगा जैसे उसे स्वयं अपने अवमान के बारे में प्राप्त है और जिसके

अनुसार वह उनका प्रयोग करता है :

परन्तु कोई भी उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालय के बारे में किए गए अभिकथित अवमान का संज्ञान नहीं करेगा जबकि वह अवमान भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) के अधीन दण्डनीय अपराध है ।

11. **अधिकारिता के बाहर किए गए अपराधों या पाए गए अपराधियों का विचारण करने की उच्च न्यायालय की शक्ति** – उच्च न्यायालय को अपने या अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय के अवमान की जांच करने और उसका विचारण करने की अधिकारिता होगी, चाहे ऐसे अवमान का उसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर किया जाना अभिकथित हो या बाहर और चाहे वह व्यक्ति जो अवमान का दोषी अभिकथित है ऐसी सीमाओं के भीतर हो या बाहर ।

12. **न्यायालय अवमान के लिए दण्ड** – (1) इस अधिनियम या किसी अन्य विधि में अभिव्यक्त रूप से जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय न्यायालय अवमान सादे कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो दो हजार रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से दण्डित किया जा सकेगा :

परन्तु न्यायालय को समाधानप्रद रूप से माफी मांगे जाने पर अभियुक्त को उन्मोचित किया जा सकेगा या अधिनिर्णीत दण्ड का परिहार किया जा सकेगा ।

स्पष्टीकरण – कोई भी माफी, जो अभियुक्त ने सद्भावपूर्वक मांगी है, केवल इस आधार पर नामंजूर नहीं की जाएगी कि वह सापेक्ष अथवा सशर्त है ।

(2) तत्समय प्रवृत किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी कोई न्यायालय चाहे अपने या अपने अधीनस्थ किसी न्यायालय के अवमान के बारे में उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट दण्ड से अधिक दण्ड अधिरोपित नहीं करेगा ।

(3) इस धारा में किसी बात के होते हुए भी, जब कोई व्यक्ति सिविल अवमान का दोषी पाया जाता है तब यदि न्यायालय यह समझता है कि जुर्माने से न्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होगा और कारावास का दण्ड आवश्यक है, तो वह उसे सादे कारावास से दण्डादिष्ट करने के बजाय यह निदेश देगा कि वह छह मास से अनधिक की इतनी अवधि के लिए, जितनी न्यायालय ठीक समझे, सिविल कारागार में निरुद्ध रखा जाए ।

(4) जहां न्यायालय से किए गए वचनबंध के बारे में न्यायालय अवमान का दोषी पाया गया व्यक्ति, कोई कम्पनी है, वहां प्रत्येक व्यक्ति जो अवमान के किए जाने के समय कम्पनी के कारबार के संचालन के लिए कम्पनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था, और साथ ही वह कम्पनी भी, अवमान के दोषी समझे जाएंगे और न्यायालय की इजाजत से, दण्ड का प्रवर्तन, प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को सिविल कारागार में निरुद्ध करके किया जा सकेगा :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दण्ड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह साबित कर देता है कि अवमान उसकी जानकारी के बिना किया गया था अथवा उसने उसका किया जाना निवारित करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(5) उपधारा (4) में किसी बात के होते हुए भी, जहां उसमें निर्दिष्ट न्यायालय अवमान किसी कम्पनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अवमान कम्पनी के किसी निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी की सम्मति अथवा मौनानुकूलता से किया गया है या उसकी किसी उपेक्षा के कारण हुआ माना जा सकता है, वहां ऐसा निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अवमान का दोषी समझा जाएगा और न्यायालय की इजाजत से, दण्ड का प्रवर्तन, उस निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी को सिविल कारागार में निरुद्ध करके किया जा सकेगा ।

स्पष्टीकरण – उपधारा (4) और (5) के प्रयोजन के लिए, –

(क) "कम्पनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और उसके अन्तर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम भी है ; और

(ख) किसी फर्म के सम्बन्ध में, "निदेशक" से, उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

[1][**13. कतिपय मामलों में अवमानों का दंडनीय न होना** – तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, –

(क) कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन न्यायालय

---

[1] 2006 के अधिनियम सं. 6 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

अवमान के लिए दंड तब तक अधिरोपित नहीं करेगा जब तक उसका यह समाधान नहीं हो जाता है कि अवमान ऐसी प्रकृति का है कि वह न्याय के सम्यक् अनुक्रम में पर्याप्त हस्तक्षेप करता है, या उसकी प्रवृत्ति पर्याप्त हस्तक्षेप करने की है ;

(ख) न्यायालय, न्यायालय अवमान के लिए किसी कार्यवाही में, किसी विधिमान्य प्रतिरक्षा के रूप में सत्य द्वारा न्यायानुमत की अनुज्ञा दे सकेगा यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि वह लोकहित में है और उक्त प्रतिरक्षा का आश्रय लेने के लिए अनुरोध सद्भाविक है।]

14. **जहां अवमान उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के सम्मुख है वहां प्रक्रिया** – जब यह अभिकथित किया जाता है या उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय को अपने अवलोकन पर यह प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति उसकी उपस्थिति में या उसके सुनते हुए किए गए अवमान का दोषी है तब वह न्यायालय ऐसे व्यक्ति को अभिरक्षा में निरुद्ध करा सकेगा और न्यायालय के उठने से पूर्व उसी दिन किसी भी समय या उसके पश्चात् यथासम्भवशीघ्र –

(क) उसे उस अवमान की लिखित जानकारी कराएगा जिसका उस पर आरोप है ;

(ख) उसे आरोप का प्रतिवाद करने का अवसर देगा ;

(ग) ऐसा साक्ष्य लेने के पश्चात् जो आवश्यक हो या जो ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया जाए और उस व्यक्ति को सुनने के पश्चात्, चाहे तत्काल या स्थगन के पश्चात्, आरोप के मामले का अवधारण करने के लिए अग्रसर होगा ; और

(घ) ऐसे व्यक्ति को दण्डित करने या उन्मोचित करने का ऐसा आदेश करेगा जो न्यायसंगत हो ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां कोई व्यक्ति जिस पर उस उपधारा के अधीन अवमान का आरोप लगाया गया है, चाहे मौखिक रूप से या लिखित रूप से, आवेदन करता है, कि उसके विरुद्ध आरोप का विचारण उस न्यायाधीश या उन न्यायाधीशों से, जिसकी या जिनकी उपस्थिति में या जिसके या जिनके सुनते हुए अपराध का किया जाना अभिकथित है, भिन्न किसी न्यायाधीश द्वारा किया जाए और न्यायालय की राय है कि ऐसा करना साध्य है और आवेदन को उचित

न्याय प्रशासन के हित में मंजूर किया जाना चाहिए तो वह उस मामले को, मामले के तथ्यों के कथन सहित मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष ऐसे निदेशों के लिए रखवाएगा जिन्हें वह उसके विचारण की बाबत जारी करना ठीक समझे ।

(3) किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, उस व्यक्ति के, जिस पर उपधारा (1) के अधीन अवमान का आरोप है, उस विचारण में जो उपधारा (2) के अधीन दिए गए निदेश के अनुसरण में उस न्यायाधीश या उन न्यायाधीशों से, जिसकी या जिनकी उपस्थिति में जिसके या जिनके सुनते हुए अपराध का किया जाना अभिकथित है, भिन्न किसी न्यायाधीश द्वारा किया जाता है, यह आवश्यक न होगा कि वह न्यायाधीश या वे न्यायाधीश जिसकी या जिनकी उपस्थिति में या जिसके या जिनके सुनते हुए अपराध का किया जाना अभिकथित है, साक्षी के रूप में उपस्थित हो या उपस्थित हों और उपधारा (2) के अधीन मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा गया कथन मामले में साक्ष्य माना जाएगा ।

(4) न्यायालय निदेश दे सकेगा कि वह व्यक्ति जिस पर इस धारा के अधीन अवमान का आरोप है आरोप का अवधारण होने तक ऐसी अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा जैसी वह न्यायालय विनिर्दिष्ट करे :

परन्तु यदि प्रतिभुओं सहित या रहित बन्धपत्र निष्पादित कर दिया जाता है जो उतनी रकम का है जितनी न्यायालय पर्याप्त समझता है और जिसमें यह शर्त है कि वह व्यक्ति जिस पर आरोप है, बन्धपत्र में वर्णित समय और स्थान पर हाजिर होगा और जब तक न्यायालय द्वारा अन्यथा निदेश नहीं दे दिया जाता ऐसे हाजिर होता रहेगा तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा :

परन्तु यह और कि यदि न्यायालय ठीक समझता है तो ऐसे व्यक्ति से जमानत लेने के बजाय उसकी यथापूर्वोक्त हाजिरी के लिए प्रतिभुओं के बिना उसके द्वारा बन्धपत्र निष्पादित किए जाने पर उसे उन्मोचित कर सकेगा ।

15. **अन्य दशाओं में आपराधिक अवमान का संज्ञान** – (1) धारा 14 में निर्दिष्ट अवमान से भिन्न आपराधिक अवमान की दशा में उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय या तो स्वप्रेरणा से या –

(क) महाधिवक्ता के, अथवा

(ख) महाधिवक्ता की लिखित सम्मति से किसी अन्य व्यक्ति के, [1][अथवा]

[1][(ग) दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र के उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में, ऐसे विधि अधिकारी के, जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, या ऐसे विधि अधिकारी की लिखित सम्मति से किसी अन्य व्यक्ति के,] समावेदन पर कार्रवाई कर सकेगा ।

(2) किसी अधीनस्थ न्यायालय के आपराधिक अवमान की दशा में उच्च न्यायालय, उस अधीनस्थ न्यायालय द्वारा किए गए निर्देश पर या महाधिवक्ता द्वारा, या किसी संघ राज्यक्षेत्र के सम्बन्ध में, ऐसे विधि अधिकारी द्वारा जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, किए गए आवेदन पर कार्रवाई कर सकेगा ।

(3) इस धारा के अधीन किए गए प्रत्येक समावेदन या निर्देश में वह अवमान विनिर्दिष्ट होगा जिसका कि वह व्यक्ति, जिस पर आरोप है, दोषी अभिकथित है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "महाधिवक्ता" पद से अभिप्रेत है –

(क) उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में, महान्यायवादी या महासालिसिटर ; तथा

(ख) उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में राज्य का या उन राज्यों में से किसी का जिनके लिए उच्च न्यायालय स्थापित किया गया है महाधिवक्ता ; तथा

(ग) न्यायिक आयुक्त के न्यायालय के सम्बन्ध में ऐसा विधि अधिकारी जिसे, केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे ।

16. **न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या न्यायिकतः कार्य करने वाले अन्य व्यक्ति द्वारा अवमान** – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबन्धों के अधीन रहते हुए कोई न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या न्यायिकतः कार्य करने वाला अन्य व्यक्ति भी अपने न्यायालय के या किसी अन्य न्यायालय के अवमान के लिए उसी रीति से दण्डनीय होगा जिससे कोई अन्य व्यक्ति होता है, और इस अधिनियम के उपबन्ध, यावत्शक्य तद्नुसार लागू होंगे ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 45 की धारा 2 द्वारा अन्तःस्थापित ।

(2) इस धारा की कोई बात किसी न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या न्यायिकतः कार्य करने वाले अन्य व्यक्ति द्वारा, किसी अधीनस्थ न्यायालय के आदेश या निर्णय के विरुद्ध उस न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या अन्य व्यक्ति के समक्ष लम्बित किसी अपील अथवा पुनरीक्षण में उस अधीनस्थ न्यायालय की बाबत की गई किन्हीं समुक्तियों या टिप्पणों को लागू नहीं होगी ।

17. **संज्ञान के पश्चात् प्रक्रिया** – (1) धारा 15 के अधीन प्रत्येक कार्यवाही की सूचना की तामील उस व्यक्ति पर, जिस पर आरोप है, वैयक्तिक रूप से की जाएगी जब तक कि न्यायालय, ऐसे कारणों से जो अभिलिखित किए जाएंगे, अथवा निदेश न दे ।

(2) सूचना के साथ निम्नलिखित होंगे –

(क) किसी समावेदन पर प्रारम्भ की गई कार्यवाही की दशा में, समावेदन की प्रतिलिपि तथा उन शपथपत्रों की भी प्रतिलिपियां, यदि कोई हों, जिन पर ऐसा समावेदन आधारित है ; तथा

(ख) किसी अधीनस्थ न्यायालय द्वारा, किए गए निर्देश पर प्रारम्भ की गई कार्यवाही की दशा में, उस निर्देश की प्रतिलिपि ।

(3) यदि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि उस व्यक्ति के, जिस पर धारा 15 के अधीन आरोप है, सूचना की तामील से बचने के लिए फरार होने या छिपे जाने की सम्भावना है तो वह उसकी उतने मूल्य या रकम की संपत्ति की, जो वह न्यायालय युक्तियुक्त समझे, कुर्की का आदेश कर सकेगा ।

(4) उपधारा (3) के अधीन प्रत्येक कुर्की सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में धन के संदाय की डिक्री के निष्पादन में सम्पत्ति की कुर्की के लिए उपबन्धित रीति से क्रियान्वित की जाएगी और यदि ऐसी कुर्की के पश्चात्, आरोपित व्यक्ति उपस्थित हो जाता है और न्यायालय को समाधानप्रद रूप से दर्शित कर देता है कि वह सूचना की तामील से बचने के लिए फरार नहीं हुआ था या छिपा नहीं था तो न्यायालय खर्चे के बारे में या अन्यथा ऐसे निबन्धनों पर, जैसे वह ठीक समझे, उसकी सम्पत्ति को कुर्की से निर्मोचित करने का आदेश देगा ।

(5) कोई व्यक्ति जिस पर धारा 15 के अधीन अवमान का आरोप है अपने प्रतिवाद के समर्थन में शपथपत्र फाइल कर सकेगा, और न्यायालय या तो फाइल किए गए शपथपत्रों पर या ऐसा अतिरिक्त साक्ष्य लेने के

पश्चात् जैसा आवश्यक हो, आरोप के विषय को अवधारित कर सकेगा और ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जैसा मामले में न्याय के लिए अपेक्षित हो ।

18. **आपराधिक अवमान के मामलों की सुनवाई न्यायपीठों द्वारा किया जाना** – (1) धारा 15 के अधीन के आपराधिक अवमान के प्रत्येक मामले की सुनवाई और अवधारण कम से कम दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) न्यायिक आयुक्त के न्यायालय को लागू न होगी ।

19. **अपीलें** – (1) अवमान के लिए दण्डित करने की अपनी अधिकारिता के प्रयोग में उच्च न्यायालय के किसी आदेश या विनिश्चय की साधिकार अपील –

(क) यदि आदेश या विनिश्चय एकल न्यायाधीश का है, तो न्यायालय के कम से कम दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ को होगी ;

(ख) यदि आदेश या विनिश्चय न्यायपीठ का है, तो उच्चतम न्यायालय को होगी :

परन्तु यदि आदेश या विनिश्चय किसी संघ राज्यक्षेत्र के किसी न्यायिक आयुक्त के न्यायालय का है तो ऐसी अपील उच्चतम न्यायालय को होगी ।

(2) किसी अपील के लम्बित रहने पर, अपील न्यायालय आदेश दे सकेगा कि –

(क) उस दण्ड या आदेश का निष्पादन, जिसके विरुद्ध अपील की गई है, निलम्बित कर दिया जाए ;

(ख) यदि अपीलार्थी परिरोध में है तो वह जमानत पर छोड़ दिया जाए ; और

(ग) अपील की सुनवाई इस बात के होते हुए भी की जाए कि अपीलार्थी ने अपने अवमान का मार्जन नहीं किया है ।

(3) यदि किसी आदेश से, जिसके विरुद्ध अपील फाइल की जा सकती है, व्यथित कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय का समाधान कर देता है कि वह अपील करने का आशय रखता है तो उच्च न्यायालय उपधारा (2) द्वारा प्रदत्त सभी शक्तियों का या उनमें से किन्हीं का प्रयोग भी कर सकेगा ।

(4) उपधारा (1) के अधीन अपील, उस आदेश की तारीख से जिसके

विरुद्ध अपील की जाती है –

(क) उच्च न्यायालय की किसी न्यायपीठ की अपील की दशा में, तीस दिन के भीतर की जाएगी ;

(ख) उच्चतम न्यायालय को अपील की दशा में, साठ दिन के भीतर की जाएगी ।

20. **अवमान के लिए कार्यवाहियां करने की परिसीमा** – कोई न्यायालय अवमान के लिए कार्यवाहियां, या तो स्वप्रेरणा पर या अन्यथा, उस तारीख से, जिसको अवमान का किया जाना अभिकथित है, एक वर्ष की अवधि के अवसान के पश्चात् प्रारम्भ नहीं करेगा ।

21. **अधिनियम का न्याय पंचायतों या अन्य ग्राम न्यायालयों को लागू न होना** – इस अधिनियम की कोई भी बात न्याय प्रशासन के लिए किसी विधि के अधीन स्थापित न्याय पंचायतों या अन्य ग्राम न्यायालयों के, चाहे वे किसी भी नाम से ज्ञात हों, अवमान को लागू नहीं होगी ।

22. **अधिनियम का अवमान से सम्बन्धित अन्य विधियों के अतिरिक्त होना, न कि उनका अल्पीकारक** – इस अधिनियम के उपबन्ध, न्यायालयों के अवमान से सम्बन्धित किसी अन्य विधि के उपबन्धों के अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अल्पीकारक ।

23. **उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की नियम बनाने की शक्ति** – यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या कोई उच्च न्यायालय किसी ऐसे विषय का उपबन्ध करने के लिए जो उसकी प्रक्रिया से सम्बन्धित हो, ऐसे नियम बना सकेगा जो इस अधिनियम के उपबन्धों से असंगत न हों ।

24. **निरसन** – न्यायालय अवमान अधिनियम, 1952 (1952 का 32) एतद्द्वारा निरसित किया जाता है ।

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	—	—	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. बी. परांजपे - 1990	40	—	—	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	—	—	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	—	—	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	—	—	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	—	—	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	—	—	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	—	—	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	—	—	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	—	—	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	—	—	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	—	—	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	—	—	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	—	—	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	—	—	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	—	290	—
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	—	60	—

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Cover III

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105